Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्विमासिक पत्रिका

132

जुलाई - अगस्त, 2007

मूल्य 25 रुपए

LM

विशेष

प्रथम स्वाधीनता-संग्राम और साहित्य

गुलज़ार, प्रतिभा राय,
ममता कालिया, रमेश उपाध्याय
की कहानियाँ

विजयदान देथा का संपूर्ण उपन्यास
मरवण

प्रकाशन का [illegible] वर्ष

CC-0. Agamnigam Digitized by eGangotri

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे नए प्रकाशन

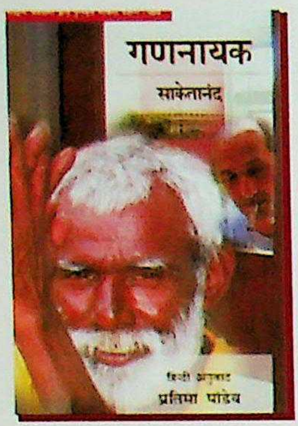

गणनायक (पुरस्कृत मैथिली कहानी-संग्रह)

ले. साकेतानंद; *हिंदी अनुवाद* : प्रतिमा पांडेय

प्रस्तुत कृति जीवन के आसपास घट रही घटनाओं को संवेदना के प्रिज़्म से गुजारकर उनके वास्तविक रंगों से उकेरकर कथाक्रम में ढाली हुई कहानियों का संग्रह है।

डिमाई ऑक्टेवो पृष्ठ 104 पेपरबैक

मूल्य 60 रुपए

शिकस्ता बुतों के दरमियान (पुरस्कृत उर्दू कहानी-संग्रह)

ले. एवं अनुवाद: सलाम बिन रज़ाक

प्रस्तुत कृति में लेखक ने आस-पास की ज़िंदगी को उसकी पूरी वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके लेखक आधुनिकतावाद से गहरे प्रभावित हैं और यह इस कृति का प्रमुख पक्ष है।

डिमाई ऑक्टेवो पृष्ठ 246 पेपरबैक

मूल्य 150 रुपए

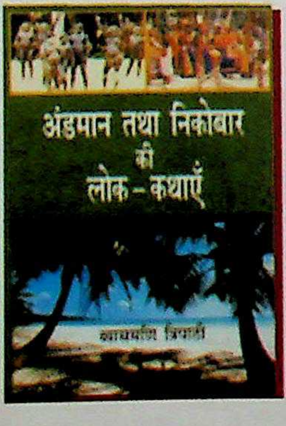

अंडमान तथा निकोबार की लोक-कथाएँ

संकलनकर्ता : डॉ व्यासमणि त्रिपाठी

प्रस्तुत कृति में संकलित कथाएँ अंडमान तथा निकोबार द्वीप-समूह के निवासियों की मनो-रचना और परंपराओं का संसार प्रस्तुत करती हैं। कुल मिलाकर 45 कथाओं का यह संग्रह अंडमान तथा निकोबार द्वीप-समूह के निवासियों की ज़िंदगी का एक भरा-पूरा चित्र रोचक शैली में प्रस्तुत करता है।

डिमाई ऑक्टेवो पृष्ठ 132 पेपरबैक

मूल्य : 80 रुपए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्विमासिक पत्रिका

वर्ष 28 अंक 132 : जुलाई-अगस्त 2007

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No. 4864
Dated 26.12.2023

संपादक मंडल

गोपी चंद नारंग
सुनील गंगोपाध्याय
ए. कृष्णमूर्ति

संपादक

अरुण प्रकाश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

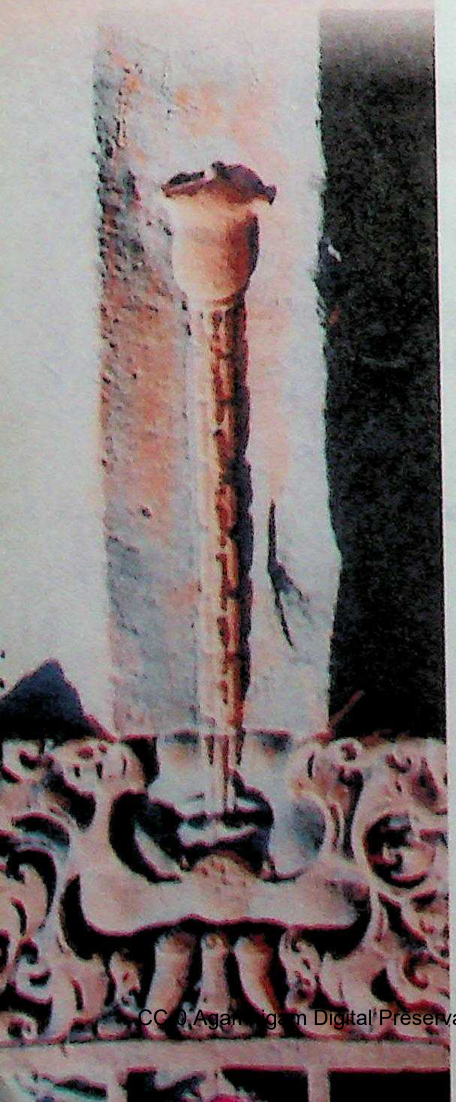

उप-संपादक : मधुमालती जैन

आवरण चित्र : बंशीलाल परमार; फ़ोटोग्राफ़र। मंदसौर में रहते हैं।

रेखांकन : पन्ने कुँवर बच्छावत; स्वशिक्षित चित्रकार। कलकत्ते में रहती हैं।

रूप-चित्रण : विज्ञान व्रत; जाने-माने कवि, चित्रकार। दिल्ली में रहते हैं।

सज्जा : दिलीप कुमार टेलर; देश-विदेश में प्रकाशनों तथा व्यापार प्रदर्शनियों के सुप्रसिद्ध डिज़ाइनर, चित्रकार, दिल्ली में रहते हैं।

द्विमासिक
समकालीन भारतीय साहित्य
वर्ष 28 अंक 132 : जुलाई-अगस्त 2007

संपादकीय कार्यालय :
रवींद्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग,
नई दिल्ली-110001
फ़ोन : 2307 3312 (सीधा नंबर)
23386626, 23386627
(पी.बी. एक्स) विस्तार 207/255
तार : साहित्यकार; फ़ैक्स : 091-11-23382428

E-mail : secy@ndb.vsnl.net.in
Visit our Website at :
http://www.sahitya-akademi.gov.in

प्रकाशक : साहित्य अकादेमी

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं साहित्य अकादेमी की स्वीकृति आवश्यक है।

प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से साहित्य अकादेमी, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

मूल्य : 25 रुपए
शुल्क-दर : एक वर्ष (6 अंक) 125 रुपए : तीन वर्ष (18 अंक) 350 रुपए

विदेश में :
हवाई डाक : एक प्रति 10 अमेरिकी डॉलर/6 ब्रिटिश पाउंड
एक वर्ष 50 डॉलर/30 पाउंड : तीन वर्ष 135 डॉलर/85 पाउंड
समुद्री डाक : एक प्रति 5 डॉलर/3 पाउंड
एक वर्ष 25 डॉलर/15 पाउंड : तीन वर्ष 70 डॉलर/44 पाउंड

शुल्क 'सचिव, साहित्य अकादेमी' के नाम पर भेजें :
(मनीऑर्डर, ड्राफ़्ट, नक़द, चैक (दिल्ली से बाहर के ग्राहक चैक से शुल्क 25 रुपए अतिरिक्त भेजें।))

वितरण : उप-सचिव (विक्रय), साहित्य अकादेमी, विक्रय विभाग, स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली-110 001
फ़ोन : 011-23364207, 23745297

SAMAKĀLĪN BHĀRATĪYA SĀHITYA:
A Bi-monthly journal of Indian literature from 24 languages, in Hindi, published by Sahitya Akademi, Rabindra Bhavan, 35 Ferozeshah Road, New Delhi-110001, India

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्विमासिक पत्रिका

...gari Digit... ,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्विमासिक पत्रिका

समकालीन भारतीय साहित्य : वर्ष 28 : अंक 132 (जुलाई-अगस्त 2007)

6 *आमुख*

प्रथम स्वाधीनता-संग्राम और साहित्य

9 **गोपी चंद नारंग :** ग़ालिब और 1857 (उर्दू)

21 **निर्मला जैन :** होने-अनहोने की दास्तान का साहित्यिक पाठ : 1857 (हिंदी)

32 **पी.सी. जोशी :** भारत किधर ? (हिंदी कविता)

37 **वेदप्रताप वैदिक :** उपनिवेशवाद, साहित्य और स्वतंत्रता अभियान

44 **पुरुषोत्तम अग्रवाल :** एक रासो—लक्ष्मीबाई का

50 **शंभुनाथ :** 1857 : उपनिवेशवाद और आज़ादी

54 *कविता*

रश्मि रमानी : चाँद का पता; पिंजरा; सूर्यास्त; गुफाएँ; ख़ुशी की पहचान; हम क्यों पूछते हैं; वापसी (सिंधी)

मीनाक्षी कैलास पंडित : अतीत; पोस्ट ऑफ़िस; ऑफ़िस (गुजराती)

कमल वोरा : पतिंगे; दीवार (गुजराती)

नानुभाई नायक : आशा; क्या होगा; वास्तविकता; जल्दी कर; अनुभव (गुजराती)

वीरेंद्रनाथ बरकटकी : मन्वंतर (असमिया)

शतवार्षिकी

68 **मधुरेश :** हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास...

80 **रंजना अरगड़े :** महादेवी की चिंतनात्मक भूमि

91 **देशराज वर्मा :** महादेवी वर्मा का गद्य-दर्शन

कहानी

95 **गुलज़ार :** सारथी; झड़ी (हिंदी)

101 **प्रतिभा राय :** कपटपासा (ओड़िया)

118 **ममता कालिया :** फिर भी प्यार (हिंदी)

125 **रमेश उपाध्याय :** रुदाला (हिंदी)

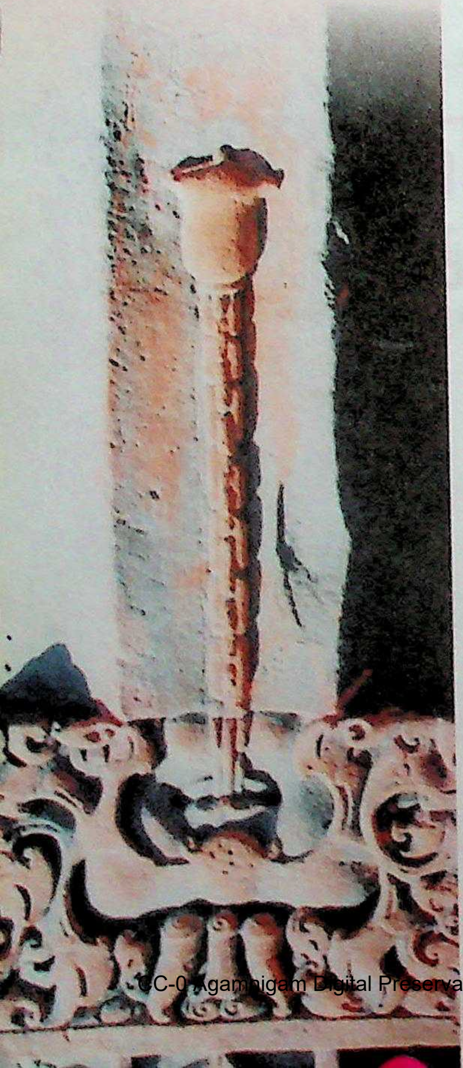

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

131 *हिंदी कविता*

अश्वघोष : महँगाई की मार; बंजर जैसी; प्यार कर; जाने कैसे चूक गए; ताबूतों में धरे हुए; हट गए तो हट गए

मृदुला प्रधान : धड़कनों की तर्जुमानी

विनोद बिहारी लाल : चेहरा

राजेंद्र निशेश : बिश्नो दाई

सत्येंद्र कुमार रघुवंशी : रस्सियाँ; एक तिल तुम्हारी आवाज़ में भी; कुँआरी लड़कियाँ; ऊँघते हुए लोग

हरीश करमचंदाणी : अच्छे आदमी की हँसी में...

पीयूष दईया : तामसी : सांतहंता; अँधेरा : जड़ों का घर

राधेश्याम तिवारी : शेष कुशल है

विजय नाहटा : दीठ की थाह; संध्या; रेत; दुपहर; अग्निपथ

निशांत : देश का नाम क्या है ?; सत्ताईस की उम्र में; अट्ठाईस की उम्र में; उनतीस की उम्र में

स्मिता झा : इमलि डिकिंसन के लिए; बहुत कुछ कहना चाहती हूँ तुमसे; चखो तो; प्रेम

राजस्थानी संपूर्ण उपन्यास

156 **विजयदान देथा :** मरवण

मूल्यांकन

206 **से.रा. यात्री :** प्रवासी भारतीयों की कुंठा

नंद भारद्वाज : मानवीय संवेदना से जोड़ती कविताएँ

महेश दर्पण : देर तक बनी रहती है...

शंभु गुप्त : पाठक का दिल जीतता कवि

विजय वर्मा : संवेदना एवं संघर्ष

राजाराम भादू : वृत्तांत का नया वितान

महेश कटारे : लोकतांत्रिक अराजकता के विरोध का साहस

कुमुद शर्मा : कवि का निजी अनुभव

अजय कुमार मिश्र : एक ओझल साझा साहित्य

235 *पाठांतर*

CC-0. Sampigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आमुख

क्रांतियाँ किताबी शैली में नहीं हुआ करतीं। उनकी समीक्षा बेशक किताबी शैली में ही की जाती हैं।

1857 को विद्रोह, ग़दर, बग़ावत, स्वाधीनता-संग्राम या क्रांति कहें, इस पर इतिहासकारों के मत अलग-अलग रहे हैं। इन मतों के पीछे उनकी ऐतिहासिक दृष्टि, वर्ग-स्वार्थ रहे हैं और किसी-किसी में तो औपनिवेशिक मानसिकता भी रही है। इससे संबंधित दस्तावेज़ और दूसरे साक्ष्य अधिकांशत: उपनिवेशवादियों ने ही लिखे, बनाए और संरक्षित किए। ज़ाहिर है इसे अपना रंग देने में वो कामयाब भी रहे। निश्चय ही इन उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करने से पहले हमें अपनी दृष्टि का ग़ैर उपनिवेशीकरण करना चाहिए। तभी इन साक्ष्यों के बीच मौजूद परस्पर विरोधी तथ्यों, मौन साक्ष्यों और इतिहास से बाहर कर दी गई आवाज़ों को सुना जा सकता है।

एक सुप्त-सी धारणा हमारे समाज के जड़ता प्रेमियों में रही है कि भारत जैसे 'धर्मप्राण' देश में क्रांति कभी हो ही नहीं सकती। यह कोई गढ़ी हुई कहानी नहीं कि 1857 के पहले 1855-56 में संथालों ने ईस्ट इंडिया कंपनी से अपने परंपरागत हथियारों—भाला, बरछी और तीर-धनुष के साथ मोर्चा लिया और उन्हें भारी नुक़सान पहुँचाया। काफ़ी बाद में ब्रिटिश सेना ने लंबी घेराबंदी के ज़रिए संथालों को पराजित किया। इस पराजय का महत्त्व केवल यही नहीं है कि यह विफल हुआ, इस पराजय का महत्त्व जड़ता को तोड़ने में है। उस माइंड सेट को ख़त्म करने में है जो यह मंजूर कर चुकी थी कि देश उपनिवेशवादियों के सामने लड़ने के लिए तनकर खड़ा नहीं हो सकता। 1857 के पीछे अनेक विफल संघर्ष हैं।

ईस्ट इंडिया कंपनी 1757 में प्लासी जीतकर व्यापारी से शासक बन गई थी। लेकिन शासक बनने से उसे राजस्व अर्जित करने के नए साधन मिल गए थे फिर भी उसका मुख्य लक्ष्य व्यापार ही था। इस संग्राम से इतना तो हुआ ही कि ईस्ट इंड़िया कंपनी का शासन समाप्त हो गया और उसकी जगह ब्रिटिश शासन आ गया। ज़मींदारी प्रथा क़ायम की गई और वसूली के नए देसी एजेंट खड़े किए गए। यदि 1857 के सूत्रधार केवल असंतुष्ट देसी रजवाड़े थे और भारतीय जनता उसमें शामिल नहीं हुई थी तो उपनिवेश-वादियों ने जनता को, किसानों को, दस्तकारों को, शोषण के तंत्र में लपेटकर नियंत्रित करने के लिए देसी एजेंटों का जाल क्यों बुना? किसानों, दस्तकारों से ईस्ट इंडिया कंपनी को क्यों डर था, किस प्रकार का डर था? उपनिवेशवादियों के द्वारा ही प्रस्तुत प्रमाणों के आधार पर सच को रचने की कोशिश करें तो निष्कर्ष यही निकलता है कि इसके सूत्रधार गिनती के असंतुष्ट रजवाड़े थे। क्या मुट्ठी भर असंतुष्ट रजवाड़ों के पास इतने साधन थे, कि वे इतने बड़े पैमाने पर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ टक्कर ले सकें?

इन रजवाड़ों ने भी सेना खड़ी कर ली। सब जानते हैं कि सेनाएँ यूँ ही नहीं खड़ी होती हैं। उसके लिए धन, साधन और जन समर्थन चाहिए। रसद तो जनता ही देगी, यातायात के साधन और जनबल भी जनता से ही प्राप्त होगा।

यह सिपाही विद्रोह था और जन-विद्रोह भी था; वह स्वाधीनता संग्राम का एक उत्प्रेरक था। यदि हम दिल्ली के हालात पर लिखे गए ब्योरों पर यक़ीन करें तो मेरठ में सिर्फ़ दो रेजीमेंट ने विद्रोह किया था। एक आम आकार की सेना की रेजीमेंट में 500 से लेकर 1100 तक सैनिक होते हैं। अधिकतम ही मानें तो दो ही विद्रोही रेजीमेंटों ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिल्ली की ओर कूच किया उसमें 2200 सैनिक रहे होंगे। पर देसी स्रोत ये बताते हैं कि दिल्ली शहर के अंदर लगभग 12000 से लेकर 15000 विद्रोहियों ने प्रवेश किया। ये हज़ारों अतिरिक्त विद्रोही कहाँ से आ गए? यह भी देसी स्रोत बताते हैं कि वे पेशेवर सैनिक नहीं थे, वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसान थे, कमेरे थे, गूजर थे, जाट थे, दस्तकार थे, हिंदू थे, मुसलमान थे। लेकिन तमाम भेद-मतभेद के बावजूद वे एकमत थे, 'फ़िरंगी को भगाओ'। उनके मन में फ़िरंगियों के द्वारा की गई लूट-खसोट, अपमान, धार्मिक हस्तक्षेप आदि का संचित परिताप था। इसी ने उन्हें वह आवेग दिया जिससे वे विद्रोही सैनिकों के साथ हो लिए।

फ़िरंगी भी इस व्यापक जन-असंतोष की मौजूदगी से परिचित हो गए थे तभी संग्राम की समाप्ति पर दमन की चक्की चलाई गई। लाखों भारतीय लूट, आगज़नी, फाँसी और गोलीबारी के शिकार हुए।

कुछ लोग इस आशंका से ग्रस्त लगते हैं कि यदि 1857 की क्रांति सफल हो जाती तो यह मुल्क सामंतवाद के दलदल में फँस जाता और सवर्ण सामंत ही सत्ता में रहते। अपनी इस आशंका के लिए वे उन्हीं तर्कों को सामने लाते जो उपनिवेशवादी प्रस्तुत करते थे। दो जमा दो चार जैसा मामला इतिहास नहीं होता।

1857 को क्रांति ही कहना चाहिए, भले ही वह थोड़ा अनियोजित भी दिखे लेकिन पराजय की जड़ता और नियतिवाद को उसने उलट पलट दिया। 1857 को याद करना अपना परिमार्जन ही करना है। इस क्रांति ने यह सिद्ध कर दिया कि अनेकता के बावजूद सहिष्णुता रह सकती है जो एकता का मूल है। इस सहिष्णुता को हमारे शंकालु अध्येता बहादुरशाह ज़फ़र के पहले शाही फ़रमान में पढ़ सकते हैं।

1857 पर एक विशेष आयोजन के अंतर्गत पाँच आलेख प्रकाशित कर रहे हैं। इस पर देशभर में हुए आयोजनों की उपलब्धि यह रही कि भ्रम टूटा कि पंजाब या दक्षिण या दलित ने इसमें शिरक़त नहीं की। साथ ही, ढेर सारा स्थानीय इतिहास उभरकर विचार करने के लिए सामने आ गया। मुक्ति के उल्लास के साथ दायित्व भी आता है। प्रो. पी.सी. जोशी की कविता इसी दायित्व का अनुस्मारक है।

तेलुगु साहित्य के महान कवि, आलोचक और साहित्य अकादेमी के महत्तर सदस्य शेषेंद्र शर्मा का 30 मई 2007 को निधन हो गया। तेलुगु साहित्य में उनका योगदान अविस्मरणीय है। उनकी स्मृति को हमारा नमन!

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और महादेवी वर्मा की जन्म-शताब्दी मनाई जा रही है। प्रख्यात आलोचक मधुरेश और रंजना अरगड़े के आलेख इसी प्रसंग में हैं। इस बार चार कथाकारों— गुलज़ार, प्रतिभा राय, ममता कालिया और रमेश उपाध्याय की कहानियाँ विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगी।

हमारे पाठकों ने पूर्व में प्रकाशित लघु उपन्यासों का हार्दिक स्वागत किया है। हमें पाठकों के फ़ोन कॉल्स, ई-मेल, चिट्ठियाँ प्राप्त होते रहे हैं। इसलिए इस बार राजस्थानी के प्रख्यात कथाकार विजयदान देथा का लघु उपन्यास *मरवण* प्रकाशित कर रहे हैं। मूल राजस्थानी में लिखे इस उपन्यास की हिंदी प्रस्तुति भी स्वयं उन्होंने हमारे लिए कृपापूर्वक तैयार की, हम उनके अत्यंत आभारी हैं।

इस अंक से हमारी पत्रिका 28वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। हमारी प्रसार-संख्या लगातार बढ़ रही है। अपने लेखकों, अनुवादकों, चित्रकारों तथा पाठकों के प्रति हम कृतज्ञ हैं।

शुभकामनाओं सहित,

—अरुण प्रकाश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

* धधके लागिस वीर बंगाल
दिल्ली के रंग होंगे लाल
माचिस रकत होले फाग
आजादी की पहिली राग

कांपिस अंगरेजी शासन
डोलिस लंदन के आसन
टूट परिस जवा हमर जवान
भागिस फिरंगी ले के प्रान

छत्तीसगढ़ भी ठोकिस ताल
अठरा सौ सत्तावन साल
गरजिस वीर नरायेन सिंह
मेंटिस गए फिरंगी चिह्न
मेंटिस सवै फिरंगी चिह्न।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

*1857 के छत्तीसगढ़ संग्रामी नारायण सिंह सोनाखान की प्रशस्ति में प्रचलित लोकगीत

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोपी चंद नारंग

ग़ालिब और 1857

मिर्ज़ा ग़ालिब 1857 के विद्रोह में शुरू से आख़िर तक दिल्ली में रहे। 11 मई 1857 से दो जुलाई 1858 तक के हालात उन्होंने अपनी फ़ारसी किताब *दस्तंबू* में लिखे हैं। हंगामे के दिनों में ग़ालिब पर जो बीती, उसका ज़िक्र *दस्तंबू* के अलावा उनके ख़तों में भी मिलता है जो अपेक्षाकृत ज़्यादा आज़ादी और बेबाकी से लिखे गए हैं। ग़ालिब की देशभक्ति या अंग्रेज़ों के प्रति उनके सच्चे जज़्बात मालूम करने के लिए सिर्फ़ *दस्तंबू* के बयानों पर नज़र रखना काफ़ी नहीं बल्कि ग़ालिब की शख़्सियत, उनके मिज़ाज और उनके ख़ास हालात को जानना भी ज़रूरी है, दूसरे वह तमाम ख़त इस बारे में बेहद महत्त्वपूर्ण हैं, जो उन्होंने अपने ख़ास-ख़ास दोस्तों को लिखे हैं और जिनमें उनके दिल का पैमाना बेताब होकर छलक गया है।

मिर्ज़ा ग़ालिब 1857 के हंगामे में परिवार सहित अपने घर बल्लीमारान में रहे। एक ख़त में लिखते हैं : ''मैं मअ् (सहित) ज़न व फ़रज़ंद हर वक़्त इस शहर में क़ुलज़ुमे ख़ूँ (ख़ून के समुंदर) का शनावर (साक्षी) हूँ। दरवाज़े से बाहर क़दम नहीं रखा, न पकड़ा गया, न निकाला गया, न क़ैद हुआ, न मारा गया।'' लेकिन दिल्ली पर अंग्रेज़ों का दोबारा आधिपत्य हो जाने के बाद ग़ालिब को एक के बाद एक बहुत-सी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। उस वक़्त वे मुहल्ला बल्लीमारान में हकीम मोहम्मद हसन ख़ाँ के मकान में रहते थे। शहर पर क़ब्ज़ा के बाद पानी वग़ैरह का सिलसिला भी बंद हो गया और दो दिन भूखे-प्यासे गुज़ारा करना पड़ा। तीसरे दिन हकीम मोहम्मद हसन ख़ाँ के ख़ानदानी मकानों की हिफ़ाज़त करने के लिए महाराजा पटियाला के भेजे हुए सिपाही आ पहुँचे और उनकी वजह से मिर्ज़ा ग़ालिब का घर तो लूट से बच गया। लेकिन जो क़ीमती सामान और गहने उनकी बेगम ने हिफ़ाज़त के ख़याल से काले मियाँ साहब के तहख़ाने में रखवाए थे, उन्हें विजयी फ़ौज ने लूट लिया। कुछ गोरे ग़ालिब के घर में भी आ दाख़िल हुए, उन्हें गिरफ़्तार करके कर्नल बर्न के सामने पेश किया जो निकट ही हाजी क़ुतुबुद्दीन सौदागर के घर में विराजमान थे। पूछताछ हुई, ज़िंदगी बाक़ी थी कि ग़ालिब बच गए।

गोपी चंद नारंग का जन्म 1931 में हुआ। इनकी लगभग 65 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पद्मश्री, पद्मभूषण, साहित्य अकादेमी पुरस्कार, उत्तर प्रदेश शासन का ग़ालिब पुरस्कार, पंजाबी भूषण पुरस्कार तथा कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हैं। संपर्क : डी-252, सर्वोदय एनक्लेव, नई दिल्ली 110017

अनु. सैयद तनवीर हुसैन का जन्म 1962 में हुआ। इनकी दो पुस्तकें तथा कई आलेख प्रकाशित हुए हैं। उर्दू अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत हैं। संपर्क : 10/370, ललिता पार्क, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092
फ़ोन : 22454107

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उधर 30 सितंबर के लगभग कुछ फ़ौजी उनके भाई मिर्ज़ा यूसुफ़ के घर में घुस गए और सब कुछ ले गए। यह तीस साल की उम्र से पागल थे। 19 अक्तूबर को मिर्ज़ा यूसुफ़ का बूढ़ा दरबान ख़बर लाया कि मिर्ज़ा यूसुफ़ पाँच दिन के लगातार बुख़ार के बाद रात को गुज़र गए। उस वक़्त न कफ़न का कपड़ा मिल सकता था, न मुर्दे को नहलाने वाला मयस्सर था और न क़ब्र खोदने वाला। ग़ालिब के पड़ोसियों ने बेबसी पर रहम खाया और पटियाला के सिपाहियों में से एक को साथ ले जाकर मिर्ज़ा यूसुफ़ को कफ़न पहनाया और क़ब्र खोदकर दफ़न किया। ग़ालिब ने अपने एक ख़त में उनकी मृत्यु और उनके बीवी-बच्चों की दुर्दशा का ज़िक्र यूँ किया है :

> ''हक़ीक़ी (सगा) मेरा एक भाई दीवाना मर गया, उसकी बेटी, उसके चार बच्चे, उसकी माँ यानी मेरी भावज जयपुर में पड़े हुए हैं। इस तीन बरस में एक रुपया उनको नहीं भेजा, भतीजी क्या कहती होगी कि मेरा भी कोई चचा है। यहाँ अग़निया (कुबेरों) और उमरा (अमीरों) के अज़दुवाज (बीवियाँ) व औलाद भीख माँगते फिरें और मैं देखूँ, बस मुसीबत की ताब लाने को जिगर चाहिए।'' (बनाम यूसुफ़ मिर्ज़ा, *उर्दू-ए-मुअल्ला,* स. (पृ.) 255)

लड़ाई के दौरान ग़ालिब के दोस्तों, अज़ीज़ों और शागिर्दों में से कई क़त्ल हुए, कई अंग्रेजों के कोपभाजन बने और कई लुटपिट कर दिल्ली से निकल गए।

मौलवी फ़ज़ले हक़ ख़ैराबादी को काले पानी की सज़ा हुई, शेफ़्ता को सात वर्ष की क़ैद का हुक्म सुनाया गया, सदरुद्दीन आजुर्दा की नौकरी समाप्त, जायदाद ज़ब्त हो गई। नवाब ज़ियाउद्दीन और नवाब अमीनुद्दीन, दिल्ली पर अंग्रेज़ों के आधिपत्य के बाद लोहारू जाने के लिए रवाना हुए, अभी महरौली तक पहुँचे थे कि लुटेरों ने लूट लिया। उधर दिल्ली में उनका घर लुट गया और तक़रीबन 20 हज़ार रुपए मूल्य का पुस्तकालय बर्बाद हो गया। (*उर्दू-ए-मुअल्ला,* 151, 153, 193 और 243) मिर्ज़ा ग़ालिब का फ़ारसी और उर्दू कलाम उनके यहाँ जमा होता था, वह भी नष्ट हो गया। मुज़फ़्फ़रुद्दीन हैदर ख़ाँ और ज़ुल्फ़िक़ारुद्दीन हैदर ख़ाँ (हुसैन मिर्ज़ा) पर इससे भी बढ़कर बीती। न केवल उनके घरों पर झाड़ू फिर गई बल्कि पर्दों और छप्परों में ऐसी आग लगी कि घर का घर फुँक गया। यूसुफ़ मिर्ज़ा को ख़त लिखते हुए इन मुसीबतों का ज़िक्र यूँ किया है :

> ''मेरा हाल सिवाय मेरे ख़ुदा और ख़ुदावंद के कोई नहीं जानता। आदमी कसरते ग़म (ग़म की अधिकता) से सौदाई (पागल) हो जाते हैं, अक़्ल जाती रहती है। अगर इस हुजूमे ग़म में मेरी क़ुवते मुत्फ़करा (सोचने की शक्ति) में फ़र्क़ आ गया हो तो क्या अजब है बल्कि इसका यक़ीन न करना ग़ज़ब है। पूछो के ग़म क्या है, ग़मे मर्ग (मौत का ग़म), ग़मे फ़िराक़ (जुदाई का ग़म), ग़मे रिज़्क़ (जीविका का ग़म)। ग़मे मर्ग में क़िला-ए-नामुराद से क़तेनज़र (नज़रंदाज़) करके अहले शहर (शहर वालों) को गिनता हूँ, मुज़फ़्फ़रुद्दौला मीर नासिरुद्दीन, मिर्ज़ा आशूर बेग मेरा भाँजा, उसका बेटा अहमद मिर्ज़ा उन्नीस बरस का बच्चा, मुस्तफ़ा ख़ाँ इब्ने आज़मुद्दौला, उसके दो बेटे इरतिज़ा ख़ाँ और मुर्तज़ा ख़ाँ, क़ाज़ी फ़ैज़ुल्लाह, क्या मैं उनको अपने अज़ीज़ों के बराबर नहीं जानता था। ऐ लो भूल गया। हकीम रज़ीउद्दीन ख़ाँ, मीर अहमद हुसैन मैकश, अल्लाह अल्लाह! इन लोगों को कहाँ से लाऊँ।'' (*उर्दू-ए-मुअल्ला,* पृ. 255)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक और ख़त में लिखते हैं :

''ये कोई न समझे कि मैं अपनी बेरौनक़ी और तबाहीके ग़म में मरता हूँ, अंग्रेज़ की क़ौम में से जो इन रू सियाह कालों के हाथ से क़त्ल हुए उसमें कोई मेरा उम्मीदगाह था और कोई मेरा शफ़ीक़ और कोई मेरा दोस्त, कोई मेरा यार और कोई मेरा शागिर्द। हिंदुस्तानियों में कुछ अज़ीज़, कुछ दोस्त, कुछ शागिर्द, कुछ माशूक़— वो सबके सब ख़ाक में मिल गए। एक अज़ीज़ का मातम कितना सख़्त होता है जो इतने अज़ीज़ों का मातमदार हो उसकी ज़िंदगी क्योंकर न दुश्वार हो। हाय इतने यार मरे कि जो अब मैं मरूँगा तो मेरा कोई रोने वाला भी न होगा।'' (बनाम तफ़्ता, *उर्दू-ए-मुअल्ला*, पृ. 91)

दस्तंबू में ग़ालिब लिखते हैं :

''मातम सख़्त है...अगर सिवाय रोने-धोने के मेरी आँखों ने कुछ भी देखा हो तो मेरी आँखों में धूल पड़े। ऐसा अँधेरा है कि सिवाय तारीकी (अँधेरे) के कुछ नज़र नहीं आता, ऐसा दर्द है कि कोई इलाज नहीं, ऐसा ज़ख़्म है कि कोई मरहम नहीं, सोचता हूँ कि मैं मर चुका हूँ।''

2

व्यक्तिगत सदमों और कुछ दूसरे कारणों से ग़ालिब 'ग़दर' को अच्छे लफ़्ज़ों में याद नहीं करते थे। *दस्तंबू* में ग़ालिब ने ग़दर की जी भरकर निंदा की है। उन्होंने ग़दर की तारीख़ 'रुस्तख़ेज़े बेजा' से निकाली थी। *दस्तंबू* में उन्होंने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ लड़ने वाले अपने हमवतनों को 'नमक हराम', 'ख़बीस व आवारा', 'बंदा हाय बे ख़ुदावंद', 'सियाह बातिन', 'बेरहम क़ातिल', 'गुमराह बाग़ी', 'सियहकार रहज़न' और 'सियाह रू जंगजू' की उपाधियों से याद किया है। मेरठ की फ़ौज का ज़िक्र करते हुए लिखा है :

''बदबख़्ती के कुछ सिरफिरे और बदले की भावना से भरे मेरठ के सिपाही शहर में घुस आए...गुस्से से भरे...अंग्रेज़ों के ख़ून के प्यासे...''

लेकिन यह तसवीर का केवल एक रूप है। सिर्फ़ इतना ही नहीं कि ग़ालिब ने *दस्तंबू* में ग़दर की मुख़ालफ़त और बाग़ियों की जी भर कर निंदा की है बल्कि अंग्रेज़ों की प्रशंसा का भी कोई अवसर हाथ से नहीं जाने दिया। ग़ालिब ने उन्हें 'हाकिमाने आदिल', 'अख़्तरे ताबिंदा', 'शेर दिल फ़ातेहीन', 'पैकरे इल्मो हिकमत' और 'ख़ुश अख़लाक़ व नेक नाम हाकिम', कहकर याद किया है।

ग़दर के बाद दिल्ली के जो हालात थे, जिस तरह जगह-जगह फाँसियाँ लगी हुई थीं और जिस तरह दिल्ली के नागरिकों के क़त्लो-ख़ून का बाज़ार गर्म था। इन हालात में ग़ालिब से बग़ावत का समर्थन या अंग्रेज़ों के विरोध की अपेक्षा तो नहीं की जा सकती लेकिन ग़ालिब ने जिस तरह बढ़-चढ़कर अंग्रेज़ों की प्रशंसा की है, वह ख़ासी अर्थपूर्ण है। आख़िर ऐसी क्या बात थी कि ग़ालिब इस दर्जा तारीफ़ पर मजबूर थे ? इस सवाल के जवाब में निम्नलिखित बातों की जानकारी दिलचस्पी से ख़ाली न होगी :

1855 में ग़ालिब ने मलिका विक्टोरिया की तारीफ़ में एक फ़ारसी क़सीदा लिखकर लॉर्ड कैनिंग की मार्फ़त लंदन भिजवाया था। इसके साथ एक निवेदन-पत्र था कि रोम और ईरान के बादशाह शायरों पर बड़ी मेहरबानियाँ करते हैं और अगर, ब्रितानिया की मलिका मुझे ख़िताब, ख़िलअत (सम्मान) और पेंशन से विभूषित करे तो बड़ी कृपा होगी। ग़ालिब को जनवरी 1857 में लंदन से जवाब मिला कि निवेदन-पत्र पर विचार-विमर्श के बाद निर्णय होगा। इस जवाब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को पाकर मिर्ज़ा ग़ालिब 'क्वीन पोएट' होने का सपना देख रहे थे कि तीन महीने बाद ग़दर हो गया।

ग़दर के दिनों में एक जासूस गौरी शंकर ने अंग्रेज़ों को ख़ुफ़िया सूचना दी कि 18 जुलाई 1857 को जब बहादुरशाह ने दरबार किया तो मिर्ज़ा ग़ालिब ने सिक्का (शेर) कहकर बादशाह को पेश किया। चुनाँचे अमन क़ायम होने के बाद जब ग़ालिब ने पेंशन और दरबार बहाल किए जाने के लिए पत्राचार शुरू किया तो उन्हें साफ़-साफ़ बताया गया कि वह ग़दर के दिनों में बाग़ियों से मेलजोल रखते थे। और इस कारण उनकी पेंशन और दरबार में उनकी जगह समाप्त कर दी गई है। अब्दुल ग़फ़ूर सुरूर को लिखते हैं :

> ''सिक्का (शेर) का वार तो मुझ पर ऐसा चला जैसे कोई छर्रा या कोई गर्राब, (तोप का गोला) किससे कहूँ, किसको गवाह लाऊँ!''

ग़ालिब पर सिक्का (शेर) का जो इल्ज़ाम लगाया जा रहा था वह यह था :

बज़र ज़द सिक्का-ए-किश्वर सितानी
सिराजुद्दीं बहादुरशाह सानी

(बादशाहत करने वाला सोने का सिक्का चलाया सिराजुद्दीन बहादुरशाह द्वितीय ने) इसके बारे में ग़ालिब का ख़याल था कि यह सिक्का ज़ौक़ ने 1827 में बहादुरशाह की तख़्तनशीनी के अवसर पर कहकर पेश किया था। इसलिए ग़ालिब दोस्तों से 1837 के अख़बार और विशेष रूप से *देहली उर्दू अख़बार* माँगते थे। यह अख़बार मोहम्मद हुसैन आज़ाद के पिता मौलवी मोहम्मद बाक़र का था जिनके ज़ौक़ से गहरे संबंध थे और ज़ौक़ के कहे हुए सिक्के का उस अख़बार में मिलना निश्चित था। ग़ालिब यूसुफ़ मिर्ज़ा को एक ख़त में लिखते हैं :

> ''वह देहली उर्दू *अख़बार* का पर्चा अगर मिल जाए तो बहुत उपयोगी मतलब हो वरना ख़ैर कुछ महल ख़ौफ़ो ख़तर नहीं। हुक्कामे सद्र ऐसी बातों पर नज़र न करेंगे। मैंने सिक्का कहा नहीं, अगर कहा तो अपनी जान और हुर्मत (इज़्ज़त) बचाने को कहा। यह गुनाह नहीं और अगर गुनाह है भी तो क्या ऐसा संगीन है कि मलिका मुअज़्ज़मा (मलिका विक्टोरिया) का इश्तहार भी इसको न मिटा सके। सुब्हान अल्लाह! गोला अंदाज़ का बारूद बनाना और तोपें लगानी तथा बैंक घर और मैगज़ीन का लूटना माफ़ हो जाए और शायर के दो मिसरे माफ़ न हों!''

यहाँ असल बयान सिर्फ़ इतना नहीं कि ''मैंने सिक्का कहा नहीं'' जैसा कि मालिकराम का ख़याल है। बल्कि इसका दूसरा हिस्सा यानी ''अगर कहा तो अपनी जान और हुर्मत बचाने को कहा'' इतना ही अहम है जितना कि पहला हिस्सा। और इसके बाद के तमाम जुमले विवशता का अंदाज़ रखते हैं जिन्हें नज़रंअदाज़ नहीं किया जा सकता। इन जुमलों से ग़ालिब के दिल का चोर साफ़ ज़ाहिर है। इसकी प्रबल संभावना है कि ग़ालिब ने सिक्का कहा था और उसे बहादुरशाह के हुज़ूर में पेश भी किया था। संयोगवश, ग़ालिब के विशेषज्ञों के प्रयासों से उस दूसरे सिक्का-ए-शेर का सुराग़ भी मिल चुका है जो वास्तव में ग़ालिब ने कहा था। इस सिक्का का ज़िक्र दरअसल अंग्रेज़ों के एक और जासूस जीवन लाल ने अपनी डायरी में किया है। उस डायरी का अंग्रेज़ी अनुवाद मेटकाफ़ ने किया था और ख़्वाजा हसन निज़ामी ने उसे एक और डायरी के साथ अंग्रेज़ी से उर्दू में अनुवाद करके *ग़दर की सुब्हो शाम* के नाम से प्रकाशित किया था। जीवन लाल ने 19 मई के दरबार का ज़िक्र करते हुए जहाँ दूसरे कई शायरों के सिक्के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नक़ल किए हैं, वहाँ ग़ालिब का सिक्का दर्ज करते हुए बजाय उनका पूरा नाम लिखने के केवल 'मिर्ज़ा नौशा' लिखना काफ़ी समझा। मेटकाफ़ संभवत: ग़ालिब के नाम के इस अंश से परिचित नहीं था। उसने अंग्रेज़ी अनुवाद में यह नाम छोड़ दिया। ख़्वाजा हसन निज़ामी ने चूँकि अंग्रेज़ी अनुवाद से अनुवाद किया था, इस तरह यह नाम उनके अनुवाद से भी ग़ायब हो गया। डॉ. ख़्वाजा अहमद फ़ारूक़ी ने जीवन लाल की हस्तलिखित डायरी लंदन में तलाश की। इसमें 'मिर्ज़ा नौशा' यानी ग़ालिब से संबंधित यह सिक्का-ए-शेर यूँ दर्ज है :

बर ज़रे आफ़ताब व नुक़र-ए-माह
सिक्का ज़द दर जहाँ बहादुर शाह

(सूरज के सोने और चाँद की चाँदनी पर अपना सिक्का अंकित किया विश्व भर में बहादुरशाह ने)

अलबत्ता गौरी शंकर ने ग़ालिब से जो सिक्का संबंधित किया था, जिसका विवरण ऊपर दिया गया है। (बज़र ज़द सिक्का-ए-किश्वर सतानी / सिराजुद्दी बहादुरशाह सानी/) वह ग़ालिब का नहीं था। मालिक राम ने *सादिक़ुल अख़बार* के हवाले से निर्णायक ढंग से साबित कर दिया है कि वह सिक्का हाफ़िज़ ग़ुलाम रसूल वीरा, इब्राहीम ज़ौक के शिष्य का कहा हुआ था और उन ही के नाम से *सादिक़ुल अख़बार* के 6 जुलाई 1857 के अंक में प्रकाशित हुआ था और यह अख़बार नेशनल आर्काइव्ज़, नई दिल्ली में सुरक्षित है।

बेशक जो सिक्का-ए-शेर ग़ालिब से संबंधित किया जा रहा था वह ग़ालिब का नहीं था, लेकिन ग़ालिब इस आरोप से छुटकारा न पा सके। क़िला की तनख़्वाह तो गई ही थी, पेंशन और दरबार के मामले में भी नुक़सान उठाना पड़ा और 'क्वीन पोएट' बनने का सपना भी अधूरा रहा। उस ज़माने में ग़ालिब की आर्थिक स्थिति बेहद ख़राब हो गई थी। *दस्तंबू* में इसका ज़िक्र करते हुए लिखा है :

"कपड़े और पहनावा बेच-बेचकर ज़िंदा रहने की कोशिश कर रहा हूँ। गोया लोग नान खाते हैं, मैं कपड़े खा के जी रहा हूँ। डर है कि जब ओढ़ना-बिछौना ख़त्म हो जाएगा, भूखा-नंगा मर जाऊँगा।"

उस वक़्त ग़ालिब की सबसे बड़ी ज़रूरत पेंशन का जारी होना था और यह अंग्रेज़ों को अपनी वफ़ादारी का यक़ीन दिलाए बग़ैर मुमकिन नहीं था। इसके लिए दिल्ली विजय के बाद ग़ालिब ने मलिका विक्टोरिया की तारीफ़ में एक फ़ारसी क़सीदा लिखा जिसमें अंग्रेज़ों को हिंदुस्तान विजय की बधाई दी गई थी। ग़ालिब ने उसे आला अफ़सरान को भिजवा दिया। जवाब मिला कि चीफ़ कमिश्नर के ज़रिए भिजवाया जाए। ग़ालिब ने ऐसा किया। इस पर जवाब मिला कि जिस ख़त में स्तुति के सिवा कुछ नहीं हैं, उसे भेजने की ज़रूरत नहीं है। यह जवाब हृदय विदारक था। इन हालात में जो काम क़सीदों से न हो सका, ग़ालिब ने उसे *दस्तंबू* से लेना चाहा। हरगोपाल तफ़्ता को, जिनकी निगरानी में *दस्तंबू* छप रही थी, ग़ालिब एक ख़त में लिखते हैं :

"इस तहरीर (दस्तंबू) को जब देखोगे तब जानोगे...एक जिल्द नवाब गवर्नर जनरल बहादुर की नज़र भेजूँगा और एक जिल्द ब-ज़रीये उनके जनाब मलिका-ए-मुअज़्ज़मा इंगलिस्तान की नज़र करूँगा। अब समझ लो कि तर्ज़े तहरीर क्या होगी!"

इस बयान से ज़ाहिर है कि *दस्तंबू* की छपाई कुछ हित साधने के लिए थी। दिल्ली पर बाग़ियों का क़ब्ज़ा चार महीने से कुछ ज़्यादा रहा। ग़ालिब ने इसका ज़िक्र केवल पाँच-छह पन्नों में किया है। अधिकतर शोधकर्ता इस बात पर सहमत हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि मिर्ज़ा ग़ालिब ने इन दिनों के हालात शुरू में विस्तार से लिखे होंगे लेकिन अंग्रेज़ों के दिल्ली विजय के बाद उनका प्रकाशन उचित न समझा होगा। *दस्तंबू* दरअसल इंगलिस्तान के सत्ता-धारियों को भेंट करने के लिए छपवाई गई थी, जिसका उद्देश्य ग़ालिब के शब्दों में यह था : "सवाली (प्रार्थी) सरकार को याद दिलाता है कि वह सरकार से प्रशंसा का तलबगार है।"

दस्तंबू में ग़ालिब ने मलिका विक्टोरिया वाला फ़ारसी क़सीदा (शुमार याफ़्त, रोज़गार याफ़्त) भी शामिल कर दिया और आख़िर में अपनी इच्छा को साफ़ शब्दों में यूँ ज़ाहिर किया :

> "काश मेरी अपनी तीनों दरख़ास्तों, यानी ख़िलअत, पेंशन और दरबार की पूर्ति हो सके, मेरी आँखें इसी उम्मीद में लगी हुई हैं।"

दस्तंबू में ग़ालिब ने बहादुरशाह ज़फ़र का जिनसे वह वज़ीफ़ा पाते थे और जिनके वह उस्ताद भी थे, सिरे से नाम ही नहीं लिया। शहज़ादों का ज़िक्र किया है, लेकिन सरसरी तौर पर। और तो और फ़ज़ले हक़ ख़ैराबादी और सदरुद्दीन आज़ुर्दा का भी; (जिन्होंने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जिहाद के फ़तवे पर दस्तख़त किए थे और जिसके प्रतिकार में फ़ज़ले हक़ ख़ैराबादी को काले पानी की सज़ा हुई थी और आज़ुर्दा की नौकरी समाप्त और जायदाद ज़ब्त कर ली गई थी) दोनों ग़ालिब के गहरे दोस्त थे, ग़ालिब ने उनका ज़िक्र भी नहीं किया और अगर किया तो सिर्फ़ हकीम अहसानुल्लाह ख़ाँ का जो अंग्रेज़ों से मिले हुए थे और जिनका नाम ग़द्दारों की सूची में सबसे ऊपर था।

दस्तंबू का यह पहलू भी दिलचस्पी से ख़ाली नहीं कि ग़ालिब ने ग़दर की सारी ज़िम्मेदारी 'नमक हराम' सिपाहियों और 'ख़बीस (धूर्त) व आवारा' फ़ौजियों पर डाली है, अगरचे वह अच्छी तरह जानते थे कि हिंदुस्तानियों ने अपनी नष्ट होती हुई सल्तनत को बचाने के लिए सिर-धड़ की बाज़ी लगा दी थी। ग़ालिब ने दिल्ली के इर्द-गिर्द के सात हुकुमरानों और लखनऊ, बरेली, मुरादाबाद, ग्वालियर और फ़र्रुख़ाबाद के मुजाहिदों का ज़िक्र ख़ासा विस्तार से किया है। लेकिन ग़दर की ज़िम्मेदारी वह शासक वर्ग या कुलीन वर्ग पर डालने के लिए कदापि तैयार नहीं थे। शायद इसलिए कि ख़ुद उनका संबंध कुलीन वर्ग से था!

अब हम इस सवाल को लेंगे कि ग़दर के बारे में ग़ालिब का असल रवैया क्या था? क्या वास्तव में वह अंग्रेज़ों की हुकूमत को हिंदुस्तान के लिए वरदान समझते थे और जिस तरह उनके हमवतनों ने मुल्क व क़ौम की आज़ादी के लिए सिर-धड़ की बाज़ी लगा दी थी, क्या वाक़ई ग़ालिब उसे अच्छी नज़र से नहीं देखते थे और उनसे उन्हें ज़रा भी सहानुभूति नहीं थी।

इस सवाल से बहस करते हुए ग़ालिब के चरित्र को भी नज़र में रखना ज़रूरी है। ग़ालिब सच्चे अर्थों में मुग़ल थे जो बक़ौल मोहम्मद इकराम : "अनुकूल हालात में मीर-ए-कारवाँ बन जाता है, लेकिन शहीद होने से घबराता है।" ग़ालिब की तबीअत का तमाम रुझान ख़याल-परस्ती नहीं बल्कि वास्तविकता की तरफ़ था। यह बात उनकी विरासत, माहौल, हालाते ज़िंदगी और उर्दू और फ़ारसी कलाम को सामने रखने से बख़ूबी स्पष्ट हो जाती है। ग़ालिब तुर्की नस्ल से थे और उनकी रगों में वही ख़ून दौड़ रहा था जो मुग़ल बादशाहों की रगों में था, इसलिए वैभव, प्रतिष्ठा और समृद्धि की इच्छा उनकी घुट्टी में पड़ी थी। यद्यपि उन्हें ये चीज़ें सहजता से नहीं मिल पाईं, लेकिन जहाँ तक बन पड़ा, उन्होंने इन्हें निभाने की कोशिश की। वह शुरू ही से रख-रखाव वाले और निष्ठावान थे। इसके लिए उन्होंने सफ़र भी किए, दुख भी सहे और मुक़द्दमे भी लड़े। उनका हृदय बड़ा था और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हसरत भर ऐश करने और अरमान निकालने की तमन्ना सारी उम्र रही। बक़ौल ख़ुद वह 'शहद की मक्खी' बनने के ख़िलाफ़ थे, 'मिस्री की मक्खी' होने की सीख दिया करते थे।

ग़ालिब की नज़र अंग्रेज़ों के हुनर, कौशल और ज्ञान पर ज़रूर थी, लेकिन इसके साथ उनकी नज़र अपने भविष्य पर भी थी। ग़ालिब की पेंशन अंग्रेज़ी सरकार का अनुदान था, बहादुरशाह और क़िले की महफ़िलों को वह बुझता हुआ चिराग़ समझते थे। उससे उन्हें कोई गहरा लगाव न था। इसके विपरीत कई अंग्रेज़ों मसलन स्टर्लिंग, मेजर जॉन कोब, सर जॉन मैकलोड, मेटकाफ़ और टॉमस से उनके घनिष्ठ संबंध थे। वह न सिर्फ़ अंग्रेज़ों के प्रशंसक थे बल्कि अंग्रेज़ी क़ानून को भी मुग़ल-व्यवस्था पर प्राथमिकता देते थे। इसलिए जब सर सैय्यद ने *आईने अकबरी* के नए संस्करण के लिए ग़ालिब की राय माँगी तो उन्होंने जो मसनवी लिखी, उसमें प्रशंसा के बजाय कटाक्ष का पहलू स्पष्ट था। इसलिए सर सैय्यद ने उसे किताब के साथ प्रकाशित नहीं किया। और ग़दर से दो साल पहले जब फ़ैसला हुआ कि बहादुरशाह के बाद शाही सिलसिला ख़त्म हो जाएगा तो ग़ालिब ने भी अपने भविष्य को अंग्रेज़ों से संबद्ध करने की कोशिशें शुरू कर दीं। इसलिए मलिका विक्टोरिया की तारीफ़ में लॉर्ड कैनिंग की मार्फ़त लंदन भिजवाया गया फ़ारसी क़सीदा इसी का नतीजा था।

ग़दर से कुछ पहले अंग्रेज़ों की ज़ालिमाना कार्रवाईयों के ख़िलाफ़ मुल्क में नफ़रत और बेचैनी की जो लहर ऊँची उठ रही थी, ऐसा नहीं कि ग़ालिब इससे बेख़बर थे। इस सिलसिले में ग़ालिब के उन ख़तों का ज़िक्र ज़रूरी है जो उन्होंने नवाब यूसुफ़ अली ख़ाँ, रामपुर के शासक, को लिखे थे और बाद में ग़ालिब के अनुरोध पर फाड़ दिए गए। *मकातीबे ग़ालिब* में 15 फ़रवरी 1857 का ख़त मौजूद है लेकिन उसके बाद ग़ालिब ने नवाब रामपुर को 8 मार्च 1857 को जो ख़त लिखा था उसके बारे में *मकातीबे ग़ालिब* के संपादक का बयान है : "फ़ाइल में इसका सिर्फ़ लिफ़ाफ़ा शामिल है और उस पर लिखा है, 'ख़त हुक्म के मुताबिक़ फाड़ दिया गया'।" अर्शी साहब ने आगे लिखा है : "ग़ालिब ने पहली अप्रैल 1857 को एक और ख़त भेजा था... फ़ाइल में उसका भी सिर्फ़ लिफ़ाफ़ा शामिल है और उसके पीछे तहरीर है, ख़त फाड़ दिया गया...।" *मकातीबे ग़ालिब* में अर्शी साहब ने नवाब रामपुर का 23 मार्च 1857 का वह ख़त भी नक़ल किया है जिसमें उन्होंने ग़ालिब को विश्वास दिलाया था कि उनके लिखने के मुताबिक़ उनके ख़त नष्ट कर दिए गए।

ज़ाहिर है कि यह पत्राचार गोपनीय थे और ग़ालिब के ऐसे तमाम ख़त उनके कहे अनुसार फाड़ दिए गए। इस अनुरोध की क्या वजह हो सकती थी? अर्शी साहब का ख़याल है, "इस हिदायत की वजह इसके सिवा और कुछ समझ में नहीं आती कि इन तहरीरों का मज़मून उस ज़माने की सियासी बेचैनी से संबंधित था।"

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने ग़ुलाम रसूल मेहर की किताब पर समीक्षा लिखते हुए इन ख़तों के बारे में लिखा है कि "दिल्ली में ग़दर से दो माह पहले पॉलिटिकल इंक़लाब और फ़ौजी बग़ावत के चर्चे शुरू हो गए थे और अजब नहीं कि ग़ालिब ने उन हालात की ओर इशारा किया हो और इसलिए सावधानी का तक़ाज़ा था कि पत्राचार नष्ट कर दिए जाएँ।"

अभी रामपुर से यह ख़तो-किताबत हो रही थी कि ग़दर की आग भड़क उठी। ग़ालिब ने बुद्धिमत्तापूर्वक हंगामे के दौरान क़िले वालों से संपर्क बनाए रखा। उनका यह बयान कि ग़दर के दिनों में उन्होंने आना-जाना स्थगित कर दिया था और दरवाज़े से बाहर क़दम नहीं रखा, सही नहीं है। जासूस जीवन लाल ने अपनी डायरी में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

13 जुलाई के दरबार का ज़िक्र करते हुए स्पष्ट रूप में लिखा है कि मिर्ज़ा ग़ालिब और मुकर्रम अली खाँ ने आगरे में अंग्रेज़ों पर विजय पाने की ख़ुशी में क़सीदे पढ़कर सुनाए। आगरे के अख़बार *आलमताब* का प्रमाण भी मौजूद है कि ग़दर के दौरान ग़ालिब क़िले में क़सीदे पढ़ते रहे और अगरचे जो सिक्का-ए-शेर ग़ालिब से संबंधित किया जा रहा था, वह उनका नहीं था, लेकिन कम-से-कम जासूस जीवन लाल की गवाही मौजूद है कि ग़ालिब ने सिक्का-ए-शेर कहा था और वह दरबार आते-जाते रहे थे। ग़दर से पहले ग़ालिब का अंग्रेज़ों का तरफ़दार रहना, ग़दर के दौरान उनका क़िलावालों से संबंध बनाए रखना और दिल्ली की फ़तह के बाद विजयी अंग्रेज़ों का साथ देना, एक और केवल एक चीज़ को ज़ाहिर करता है, वह यह कि ग़ालिब अत्यधिक सूझ-बूझ वाले इंसान थे और बदले हुए हालात का रुख़ देखकर अपने लाभ के लिए क़दम उठाना चाहते थे। यह बात भी नज़र में रहनी चाहिए कि ग़दर से कुछ ही महीने पहले ग़ालिब रियासत रामपुर से संबद्ध हुए थे। यह रियासत ग़दर में बाग़ियों के ख़िलाफ़ अंग्रेज़ों की समर्थक रही थी। इसलिए ग़ालिब को लगातार यह ख़तरा लगा हुआ था कि अगर उनके ख़िलाफ़ ज़रा-सा भी शक हो गया तो रामपुर से संबंध विच्छेद होने से उनके कई काम बंद हो जाएँगे। इसीलिए ग़दर के बाद रामपुर से पत्राचार करते हुए भी ग़ालिब ने सबसे ज़्यादा ज़ोर इसी बात पर दिया कि ग़दर में वे अलग-थलग रहे हैं और अंग्रेज़ों के शुभ चिंतक हैं और ग़दर के दौरान अपने हित के कारण उन्होंने जो रास्ता अपनाया, नवाब रामपुर के नाम 14 जनवरी 1858 के एक ख़त में इसे स्पष्ट शब्दों में यूँ स्वीकार किया है :

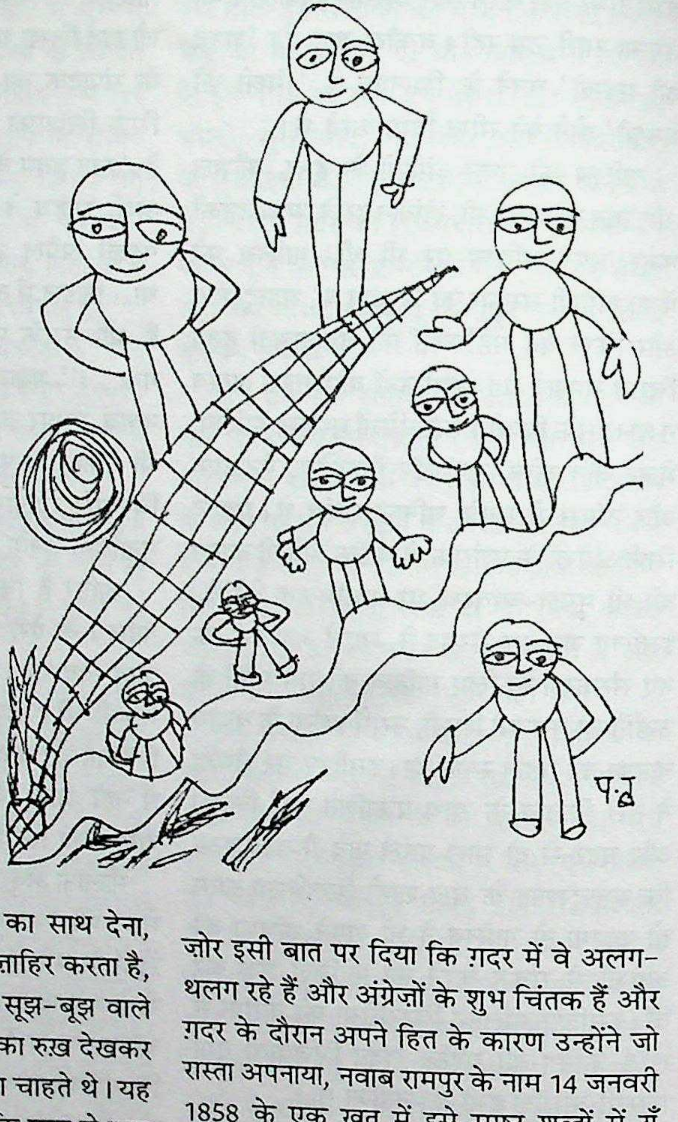

> ''हंगामे के दिनों में मैंने ख़ुद को एक तरफ़ किया और इस डर से कि अगर बिलकुल मिलना-जुलना छोड़ दूँ तो मेरा घर लुट जाएगा और जान का ख़तरा भी होगा। बस यूँ समझिए कि अंदर से बेगाना और बाहर से आशना बना रहा।''

ग़ालिब ने ग़दर को बुरे लफ़्ज़ों से इसीलिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

याद किया है कि अलावा दूसरी मुसीबतों के इसकी वजह से उनके भविष्य का नक़्शा पूरी तरह बिगड़ गया। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अपने हमवतनों, हिंदुस्तानियों या हिंदुस्तान का दर्द उनके दिल में नहीं था। दस्तंबू में एक जगह अपनी ख़ास परोक्ष लेखन शैली में लिखा है :

> ''दिल है, पत्थर या लोहा नहीं कि दुखी न हो, आँख है, ख़ाली सूराख़ नहीं कि आँसू न बहाए। मैं भी मरा हुआ हूँ कि दाग़ से जलता हूँ और हिंदुस्तान की वीरानी और बर्बादी पर मेरा दिल रोता है।''

लेकिन ग़दर और अंग्रेज़ों के ज़ुल्म से संबंधित उनके असल रवैये के लिए दस्तंबू पर नहीं, बल्कि उनके ख़तों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो राज़दारी में दोस्तों को लिखे गए हैं। इनमें किसी छुपी हुई ग़रज़मंदी या लाभ का दबाव नहीं और दिल की बात जगह-जगह बड़ी हद तक बेरोकटोक ज़बान पर आ गई है।

ग़दर से कुछ महीने पहले अवध के विलय के बारे में एक दोस्त को ख़त लिखते हुए कहते हैं : ''आप मुलाहज़ा फ़रमाएँ, हम और आप किस ज़माने में पैदा हुए ?...तबाही-ए-रियासते अवध ने बावजूद इसके कि बेगाना-ए-महज़ (असंबद्ध) हूँ, मुझको और भी दुखी कर दिया, बल्कि मैं कहता हूँ कि सख़्त नाइंसाफ़ होंगे वह अहले हिंद जो अफ़सुर्दा दिल न हुए होंगे।''

जब ग़ालिब को मालूम हुआ कि महाराजा अलवर को पूरे अधिकार के साथ सत्ता दी जा रही है तो ग़ालिब एक ख़त में व्यंगपूर्वक लिखते हैं :

> ''तमाम आलम का एक-सा आलम है। सुनते हैं कि नवंबर में महाराजा को इख़्तेयार मिलेगा मगर वह इख़्तेयार ऐसा होगा जैसा ख़ुदा ने बंदों को दिया है। सब कुछ अपने क़ब्ज़-ए-क़ुदरत में रखा, आदमी को बदनाम किया है।''

ग़दर के बाद अंग्रेज़ों ने हिंदुस्तानियों पर जो ज़ुल्म ढाए थे, ग़ालिब को इनका अहसास था। हमवतनों की बर्बादी और दिल्ली शहर की वीरानी का जो वर्णन ग़ालिब के ख़तों में मिलता है, बड़ा ही दर्दनाक है। यह सही है कि इस सिलसिले में उन्होंने दिल्ली के कुछ दूसरे शायरों की तरह कोई 'शहर आशोब' या लंबी नज़्म नहीं कही, लेकिन उनके ख़तों में दिल्ली और दिल्ली वालों की तबाही और बर्बादी का जो विस्तृत विवरण मिलता है, ग़दर का कोई भी इतिहासकार उसे नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता। दिल्ली पर अंग्रेज़ों के आधिपत्य के बाद किस की हिम्मत थी कि अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ एक लफ़्ज़ भी कह सके, फिर भी ग़ालिब के ख़तों में अंग्रेज़ों की ज़्यादतियों और सख़्तियों की तरफ़ बड़े अर्थपूर्ण और तीखे इशारे मिलते हैं। यद्यपि उन्होंने ये तमाम हालात डर-डरकर लिखे हैं फिर भी इन ख़तों में बहुत कुछ कह दिया है :

> ''यहाँ का हाल सुन लिया करते हो। अगर जीते रहे और मिलना नसीब हुआ तो कहा जाएगा, वरना क़िस्सा मुख़्तसर, क़िस्सा तमाम हुआ, लिखते हुए डरता हूँ।''

26 दिसंबर 1857 के एक ख़त में हकीम ग़ुलाम नजफ़ ख़ाँ को लिखते हैं :

> ''इंसाफ़ करो, लिखूँ तो क्या लिखूँ, क्या कुछ लिख सकता हूँ या लिखने के क़ाबिल है ?...बस इतना ही है कि अब तक तुम हम जीते हैं, ज़्यादा इससे न तुम लिखोगे, न मैं लिखूँगा।''

मीर मेहदी मजरूह को लिखते हैं :

> ''अगर ज़िंदगी है और फिर मिल बैठेंगे तो कहानी कही जाएगी।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

9 जनवरी 1858 में हकीम ग़ुलाम नजफ़ ख़ाँ को फिर लिखते हैं :

''जो दम है ग़नीमत है, उस वक़्त तक मअ् एयाल व अतफ़ाल (बीवी-बच्चों समेत) जीता हूँ, बाद घड़ी भर के क्या हो, कुछ मालूम नहीं, क़लम हाथ में लिए जी बहुत कुछ लिखने को चाहता है मगर कुछ लिख नहीं सकता। अगर मिल बैठना क़िस्मत में है तो कह लेंगे वरना *इन्ना लिल्लाहे व इन्ना अलैहे राजऊन।''* (क़ुरान की आयत)

एक और ख़त में लिखा है :

''मैं जिस शहर में हूँ, उसका नाम भी दिल्ली और मोहल्ला का नाम बल्लीमारान है, लेकिन एक दोस्त उस जनम के दोस्तों में से नहीं पाया जाता। अतिशयोक्ति न जानना, अमीर ग़रीब सब निकल गए। जो रह गए थे वह निकाले गए...घर के घर बेचिराग़ पड़े हैं।''

एक ख़त में, इन मुसीबतों को जो ग़दर में दिल्ली वालों पर बीती, एक-एक करके गिनाया है। एक लाइन अंग्रेज़ों के ज़ुल्मों के बारे में भी है लेकिन देखिए कि कितनी शिद्दत और बेबाकी से हक़ीक़त का इज़हार किया है :

''पाँच लश्कर का हमला एक के बाद एक इस शहर पर हुआ। पहला बाग़ियों का लश्कर, इसमें अहले शहर का एतबार लुटा, दूसरा लश्कर ख़ाकियों का, इसमें जान-ओ-माल, नामूस-ओ (इज़्ज़त) मकान-ओ (ज़िंदगी के लक्षण) *मकीन-ओ* (मकान में रहनेवाले) *आसमान-ओ ज़मीन-ओ आसारे हस्ती सरासर लुट गए...''*

शहर पर जीत के बाद दिल्ली में सरकार के हुक्म से जो मकानात ढाए गए, उनके संबंध में मीर मेहदी मजरूह को लिखते हैं :

''जामा मस्जिद से राजघाट दरवाज़ा तक बिला मुबालग़ा एक सहरा लक़ोदक़ (चटियल मैदान) है। ईंटों के ढेर जो पड़े हैं वह अगर उठ जाएँ तो *हूका* (सन्नाटे से भरा) मकान हो जाए।''

''क़िस्सा मुख़्तसर शहर सहरा हो गया और अब जो कुएँ जाते रहे और पानी गौहरे नायाब (दुर्लभ मोती) हो गया, तो *सहरा-ए-कर्बला* हो जाएगा। अल्लाह अल्लाह दिल्ली वाले अब तक यहाँ की ज़बान को अच्छा कहते हैं। वाह रे *हुस्ने एतक़ाद* (अच्छा एतबार) बंद-ए-ख़ुदा, उर्दू बाज़ार न रहा, उर्दू कहाँ, दिल्ली कहाँ? वल्लाह अब शहर नहीं, कैंप है, छावनी है। न क़िला, न शहर, न बाज़ार, न नहर।''

एक और ख़त में लिखा है :

''भाई क्या पूछते हो, क्या लिखूँ—दिल्ली की हस्ती कई हंगामों पर आधारित है। क़िला, चाँदनी चौक, हर रोज़ मजमा जामा मस्जिद का, हर हफ़्ता सैर जमना के पुल की, हर साल मेला फूल वालों का—ये पाँचों बातें अब नहीं; फिर कहो दिल्ली कहाँ...हाँ कोई शहर क़लम रौ-ए-हिंद में इस नाम का था।''

अलाउद्दीन अहमद ख़ाँ को लिखते हैं :

''ऐ मेरी जान! यह वह दिल्ली नहीं जिसमें तुम पैदा हुए हो, वह दिल्ली नहीं है, जिसमें तुम शाबान बेग की हवेली में मुझसे पढ़ने आते थे। वह दिल्ली नहीं है, जिसमें सात बरस की उम्र से आता जाता हूँ...एक कैंप है...माज़ूल (निलंबित) बादशाह के ज़कूर जो *बक़िया-तुस्सैफ़* (बचे हुए मर्द) हैं वह पाँच-पाँच रुपया महीना पाते हैं, *अनास* (औरतों) में से जो *पीरज़न* (बूढ़ी औरतें)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं *वह कुटनियाँ* (छल-कपट) और *जवान-ए कसबियाँ* (धंधा करके)।''

दिल्ली की तहज़ीब के मिटने और एक सल्तनत के लुप्त हो जाने का नक़्शा ग़ालिब के दिल पर गहरा था। तफ़्ता की पुस्तक *सुंबुलिस्तान* अच्छी नहीं छपी थी। उसे देखते ही बेइख़्तियार कह उठे :

''इस कॉपी की मिसाल जब तुम पर खुलती कि तुम यहाँ होते और बेगमाते क़िला को फिरते चलते देखते, सूरत माहे दो हफ़्ता (पूनम का चाँद) की सी और कपड़े मैले, पाइंचे तीर तीर, जूती टूटी।''

मौलवी अज़ीज़ुद्दीन ख़ाँ से एक ख़त में दिल्ली के उजड़ने की दास्तान यूँ बयान की है :

''साहब, दिल्ली को वैसी ही आबाद जानते हो जैसी आगे थी। क़ासिम जान की गली...बेचिराग़ हैं। हाँ आबाद है तो यह कि ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ की हवेली अस्पताल है और ज़ियाउद्दीन ख़ाँ के कमरे में डॉक्टर साहब रहते हैं और काले साहब के मकानों में एक और साहब आलीशान-ए इंगलिस्तान तशरीफ़ रखते हैं...लाल कुएँ के मुहल्ले में ख़ाक उड़ती है। आदमी का नाम नहीं।''

अब्दुल ग़फ़ूर सुरूर को लिखते हैं :

''बड़े-बड़े नामी, ख़ास बाज़ार और उर्दू बाज़ार और ख़ानम का बाज़ार कि हर एक बजाय ख़ुद एक क़सबा था, अब पता भी नहीं कि कहाँ थे। साहब अमकना और दुकानें नहीं बता सकते कि हमारा मकान कहाँ और दुकान कहाँ थी। बरसात भर मेंह नहीं बरसा। तेशा व कलंद की तुग़यानी (बसूला की धार) से मकानात गिर गए। ग़ल्ला गिराँ है, मौत अरज़ाँ है, मेवे के मोल अनाज बिकता है।''

अंग्रेज़ों ने कुछ अमीरों की हवेलियों की ईंट से ईंट बजा दी थी। ग़ालिब ने उसे एक जगह 'शहज़ोर और पील तन (पहलवान और ताक़तवर) बंदर की ज़्यादती' से युक्ति दी है। लिखते हैं :

''वाह रे बंदर! यह ज़्यादती और शहर के अंदर अंग्रेज़ों को बंदर कहना लुत्फ़ से ख़ाली नहीं!''

यह सही है कि ग़ालिब के यहाँ वतनपरस्ती का वह सियासी तसव्वुर नहीं है जो बाद में नए हालात, नई शिक्षा और पुनर्जागरण के असर से उन्नीसवीं सदी के आख़िरी ज़माने में पैदा होना शुरू हुआ। हाँ, अगर तहज़ीब और कल्चर से मोहब्बत करना, अपने हमवतनों से हमदर्दी रखना और उनके दुख को अपना दुख समझना वतन-परस्ती कहा जा सकता है तो ग़ालिब भी देश प्रेम की उस भावना से ख़ाली नहीं थे। उनके ख़तों से उनके दिल के छुपे हुए जो राज़ हम पर ज़ाहिर होते हैं, उनमें एक यह भी है कि दिल्ली और दिल्ली वालों की बर्बादी का उन्हें गहरा दुख था। ग़दर के बाद मुसलमानों पर जो अत्याचार ढाए गए थे, उसका उन्हें हार्दिक सदमा था और ऐसी शिकायतों से उनके ख़त भरे हुए हैं। जनवरी 1858 में दिल्ली में हिंदुओं के आबाद होने का हुक्म हो गया था लेकिन मुसलमानों को एक मुद्दत तक शहर में रहने की इजाज़त नहीं थी। बाद में हुक्म हुआ कि जो मुसलमान जुर्माना अदा करे, वह शहर में दाख़िल हो सकता है, देखिए, अंग्रेज़ों की इस ज़ालिमाना कार्रवाई पर ग़ालिब कैसा गहरा व्यंग्य करते हैं :

''जो मुसलमान शहर में रहना चाहे, सामर्थ भर नज़राना दे। यह निर्धारित करना हाकिम की राय पर है। रुपया दे और टिकट ले। घर बर्बाद हो जाए, आप शहर में आबाद हो जाएँ।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग़दर के बाद मुसलमानों पर मुसीबतों और दुखों के जो पहाड़ टूटे थे, ग़ालिब ने वह सब कुछ अपनी आँखों से देखा था, चुनाँचे उस क़तये में जो उन्होंने दिल्ली की तबाही से प्रभावित होकर नवाब अलाउद्दीन अलाई को बेसाख़्ता एक ख़त में लिखा था, उसमें मुसलमानों की बदहाली का ख़ासतौर पर ज़िक्र किया है :

बस के फ़अ़आले मायुरीद है आज,
हर सिलहशोर इंगलिस्ताँ का
घर से बाज़ार में निकलते हुए,
ज़हरा होता है आब इंसाँ का
चौक जिसको कहें वह मक़तल है
घर बना है नमूना ज़िंदाँ का
शहरे दिल्ली का ज़र्रा ज़र्र-ए-ख़ाक
तश्न-ए-ख़ूँ है हर मुसलमाँ का
कोई वाँ से न आ सके याँ तक
आदमी वाँ न जा सके याँ का
मैंने माना के मिल गए फिर क्या?
वही रोना तन-ओ दिल-ओ जाँ का
गाह जल कर किया किए शिकवा
सोज़िशे दाग़हाय पिन्हाँ का
गाह रोकर कहा किए बाहम
माजरा दीदाहाय गियाँ का
इस तरह के विसाल से या रब
क्या मिटें दिल से दाग़ हिजराँ का।

ग़रज़, ग़दर से संबंधित ग़ालिब का असली रवैया मालूम करने के लिए दस्तंबू से नहीं, बल्कि उनके ख़तों का अध्ययन करना चाहिए। दस्तंबू को ज़्यादा-से-ज़्यादा ग़ालिब का पूरी मेहनत से तैयार किया हुआ 'प्रार्थना पत्र' (Defence) कहा जा सकता है। लेकिन अफ़सोस है कि जिस मक़सद के लिए इस मराफ़ए (Defence) को तैयार किया गया था, वह उससे पूरा न हुआ यानी पेंशन तो नवाब रामपुर की कोशिशों से मई 1860 में जारी हो गई और दरबार का सम्मान 1863 में बहाल हो गया लेकिन 'क्वीन पोएट' बनने का ग़ालिब का सपना साकार न हो सका। यह ग़ालिब की व्यक्तिगत ज़रूरतें थीं जिनकी वजह से वह अंग्रेज़ों की ख़ुशामद पर मजबूर थे और अंग्रेज़ों के प्रभाव से नए ज्ञान और नवजागरण की जो किरणें फूट रही थीं, ग़ालिब उसका स्वागत करते थे क्योंकि इन प्रगतियों की तुलना में उन्हें मुग़लों का निज़ाम जीर्ण और चरमराया हुआ मालूम होता था और वह उनकी नज़रों के सामने रेज़ा-रेज़ा हो रहा था लेकिन इसके साथ-साथ देश और देशवालों की बर्बादी और अपनी सल्तनत और हुकूमत के जाते रहने पर उनका दिल कुढ़ता भी था और अपने हमवतनों की तबाही और विशेष रूप से दिल्ली शहर की वीरानी और बर्बादी पर उन्होंने अपने ख़तों में ख़ून के आँसू भी बहाए हैं। अंग्रेज़ों की तारीफ़ करने और देश और देशवासियों की तबाही पर दुखी होने की इन दोनों अवस्थाओं में प्रत्यक्षतः विरोधाभास है। ग़ालिब के यहाँ यह विरोधाभास निरंतर एक सूचनात्मक असमंजस में ढलता रहा है। वे चूँकि यथार्थवादी भी थे, उनका यथार्थवाद उन्हें विवश करता था कि जहाँ वह अंग्रेज़ों को नई प्रगतियों का रूप समझकर स्वीकार करें वहाँ अपने देशवासियों की तबाही और बर्बादी का शोक भी करें। यानी उन्होंने अपने युग के इन दोनों संघर्षरत वास्तविकताओं में किसी एक से भी नज़र नहीं चुराई बल्कि दोनों को उनकी पूरी ऐतिहासिक और तहज़ीबी कशमकश के साथ स्वीकार किया और बरता। उनका यह विरोधाभास उनकी पूरी शख़्सियत में मिलता है और उनकी सृजनात्मक ज़ेहन का हिस्सा है और यह किसी गहरे सागर की तह में बहने वाली मौज की तरह उनकी शायरी में जारी व सारी है।

ईमाँ मुझे रोके है जो खींचे है मुझे कुफ़्र
काबा मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्मला जैन

होने-अनहोने की दास्तान का साहित्यिक पाठ : 1857

1857 की क्रांति का आग़ाज़ अपनी आकस्मिकता और विस्फोटक रूप में किसी ज़लज़ले से कम नहीं था जिसने एकबारगी अपने समय की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी ताक़त की चूलें हिला दीं। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में इसके इतिहास और भूगोल पर इतना लिखा जा चुका है कि इसके चरित्र और प्रभाव के बारे में विवाद की गुंजाइश अब नहीं रह गई है। लिखने वालों में देशी-विदेशी इतिहासकार, बुद्धिजीवी, सरकारी अमले, जिनमें गवर्नर जनरल से लेकर नीचे तबक़े के लोग शामिल हैं, समाज-सुधारक, धार्मिक संगठनों के कार्यकर्ता, स्वयं विद्रोही जैसे तमाम लोगों की गिनती की जा सकती है। ज़ाहिर है इन बयानों में परस्पर विरोधी और अंतर्विरोधी सामग्री का अंबार है। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। सवाल यह था कि लेखकों में कौन किस पक्ष में, कहाँ खड़ा है तथा स्थिति को किस नज़रिए और उद्देश्य से देख रहा है। सरकारी रोज़नामचे, पत्र-व्यवहार, अख़बारी ख़बरें इनके अलावा हैं। इन्हीं के बीच कुछ आवाज़ें दूसरे समानधर्मा उपनिवेशों और स्वतंत्र विचारकों की भी हैं। कुल मिलाकर जो तसवीर उभरती है, उससे कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं :

1857 औपनिवेशिक साम्राज्यशाही के विरुद्ध, भारतीय जन-शक्ति का न पहला विद्रोह है न अंतिम। 1757 (प्लासी के युद्ध) और 1857 के बीच छिटपुट विरोधों की एक और परंपरा है—बंगाल में संन्यासियों और फ़क़ीरों के विद्रोह की, जिसमें किसानों के साथ आम जनता भी शामिल है। आदिवासियों का विद्रोह उसके अलावा है। बंगाल, छोटानागपुर और संथाल परगना के इलाक़े इनकी कर्मभूमि हैं। पर ऐसे स्थानीय विद्रोहों के बरक्स बाद के स्वाधीनता आंदोलन का गोमुख होने का श्रेय 1857 की क्रांति को ही दिया जाता है।

यह क्रांति न कारतूस-प्रसंग से उद्वेलित सैनिक टुकड़ियों की कारस्तानी है, न मुट्ठी भर अपदस्थ राजे-रजवाड़ों का अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए किया गया षड्यंत्र। इन दो वर्गों के अलावा इसमें

सुपरिचित आलोचक निर्मला जैन का जन्म 1931 में हुआ। इनकी लगभग 20 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आचार्य रामचंद्र पुरस्कार, सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार आदि से पुरस्कृत हैं। संपर्क : ए-20/17, डी.एल. एफ. फ़ेज-1, गुड़गाँव 122002 फ़ोन : 91-355934

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारी संख्या में भूमि-वंचित किसानों और ज़मींदारों के अलावा शहरी दस्तकार, दुकानदार, व्यापारी, धार्मिक नेता जैसे तमाम समुदायों का सहयोग है। कष्ट के कारण अलग-अलग हो सकते हैं, पर लक्ष्य पर ख़लनायक एक ही है—फ़िरंगी शासन।

यह विद्रोह किसी घटना-विशेष की तात्कालिक प्रतिक्रिया भी नहीं है। अलग-अलग तबक़ों में असंतोष लंबे समय से पल रहा था। ऐसी विडंबनापूर्ण स्थिति विश्व के राजनीतिक इतिहास में दूसरी नहीं होगी जहाँ किसी साम्राज्यवादी ताक़त ने किसी उपनिवेश की सेना का उपयोग उसी के ख़र्च पर उसी देश की जनता के ख़िलाफ़ इतनी बेरहमी से किया हो। युद्ध प्लासी या बक्सर का हो अथवा अफ़ग़ानिस्तान (1832-42) या क्रीमियन (1854-56) का। या फिर सिखों के साथ दो बार किया गया युद्ध, बड़ी संख्या में मौत के घाट भारतीय सैनिक ही उतरते थे। इस सच्चाई ने एक हद तक सैनिकों का मनोबल तो तोड़ा था, पर साथ ही इस एहसास ने उनका आत्मविश्वास भी बढ़ाया था कि अंग्रेज़ों ने काबुल से बर्मा तक अपना राज्य-विस्तार भारतीय सेनाओं के बलबूते पर ही किया था। सेना की संरचना इसका प्रमाण थी, जिसमें 3,60,000 भारतीय सैनिकों के बरक्स सिर्फ़ 40,000 ब्रिटिश सिपाही और 12,000 भारतीयों की तुलना में उनसे लगभग आधे, यानी 6,500 यूरोपीय तोपची थे। इस निर्भरता के बावजूद सेना के प्रशासनिक तंत्र में भारतीयों को बराबर नस्लभेद की अपमानजनक स्थितियों का सामना करना पड़ता था। नस्लभेद की इस नीति का निर्वाह कड़ाई से सभी क्षेत्रों में किया जाता था। किसी विभाग में किसी ऊँचे पद पर किसी हिंदू या मुसलमान भारतीय की नियुक्ति नहीं की जाती थी। विशेष रूप से मुसलमानों में इससे बहुत असंतोष था। जिस असंतोष को प्लासी के युद्ध के बाद दबा दिया गया था, वही घनीभूत हो रहा था और अंततः हिंसक रूप लेकर भड़क उठा। अंग्रेज़ों ने भारत आने के बाद इतने परस्पर भिन्न समुदायों की ऐसी शक्तिशाली एकजुटता का पहली बार सामना किया।

सरकारी संरक्षण और प्रोत्साहन के बीच ईसाई मिशनरियों की गतिविधियाँ असंतोष का एक और महत्त्वपूर्ण कारण बनीं। हिंदू और इस्लाम दोनों के धर्मों की आलोचना, उपहास और भर्त्सना करते हुए अपने धर्म के प्रचार और धर्म-परिवर्तन के प्रयासों को सभी ने अपनी धार्मिक आस्था और परंपरा पर ख़तरे के रूप में देखा। धर्म-रक्षा की चिंता हिंदू और मुसलमान—दोनों में समान रूप से व्याप्त थी। सर सैयद अहमद ने इस स्थिति पर रोशनी डालते हुए लिखा था : ''अफ़वाह यह थी कि सबसे पहले कंपनी के भारतीय कर्मचारियों का धर्म-परिवर्तन किया जाएगा और उसके बाद बड़ी संख्या में जनता का। शासकों द्वारा इस अफ़वाह का निराकरण करने पर भी शक बना रहा।'' इसका एक और आयाम था। नवजागरण की चेतना से प्रेरित राममोहन राय, दयानंद सरस्वती और ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे समाज-सुधारक जिन रूढ़ियों से मुक्ति का प्रयत्न कर रहे थे, उन पर क़ानून की मुहर लगाकर या ज़ोर-ज़बरदस्ती के सहारे उनका श्रेय लेने का प्रयास जब अंग्रेज़ों ने किया तो इसे बहुतों ने धार्मिक आस्थाओं और पारंपरिक सोच पर आक्रमण के रूप में देखा।

लंबे समय से कंपनी शासन की भू-राजस्व नीति से ज़मींदार और किसान ज़ब्ती और नीलामियों से अलग परेशान थे। सर टॉमस मुनरो ने लक्ष्य किया था कि ''भारत में जिसके हाथ में भूमि का नियंत्रण होता है, वही देश की शांति की बागडोर सँभालता है।'' टैक्स की दरों में अतार्किक वृद्धि और बेतरह वसूली की अलग कहानी थी। सार्वजनिक सड़कों पर चलने तक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर टैक्स लगाना भी नए टैक्स लगाने की अद्‌भुत तज़वीज़ों का एक उदाहरण है। 1813 तक भारत निर्यातक देश था। 1813-33 के बीच अंग्रेज़ों ने आरंभिक लूट-पाट के साथ नियोजित ढंग से भारतीय व्यापार और उद्योगों को तबाह किया। सबसे अधिक सूती कपड़े के उत्पादन को। उसके बाद अपनी औद्योगिक-क्रांति के पूरा होते-होते, ब्रिटिश बुर्जुआज़ी ने भारत को अपने उत्पाद का डंपिंग ग्राउंड बना लिया। मार्क्स ने अंग्रेज़ों की इस अर्थ-नीति पर 1853 के एक लेख में विस्तार से विचार किया है।

भारतीयों के मन में अंग्रेज़ी शासन की नीतियों के प्रति बढ़ते व्यापक असंतोष और घृणा ने संजीदा अंग्रेज़ अफ़सरों के भीतर ख़तरे का अहसास जगा दिया था। ब्रिटिश पार्लियामेंट के भीतर और बाहर यह समस्या बार-बार उठाई गई। रसेल ने बड़े स्पष्ट रूप से कहा था : ''भारतीय जनता को हमारी व्यवस्था पर कोई भरोसा नहीं है।'' सर जॉन मैल्कम भी इसी नतीजे पर पहुँचे थे कि समूचा देश इस शासन को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में देख रहा है, जिसने उसे ''तत्काल पतन और अंततः विनाश के गर्त में धकेल दिया है।''

सार रूप में—कंपनी शासन के अधीन अंग्रेज़ों ने भारत की पूरी आर्थिक व्यवस्था का विघटन किया। परंपरागत भू-व्यवस्था को उलट-पुलट कर और देश के व्यापार और उत्पादन को तहस-नहस कर उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के इन दो क्षेत्रों के बीच संबंधों में खाई पैदा कर दी। भारत की संपत्ति को वे सिलसिलेवार ढंग से अपने देश ले गए और इस पूरी प्रक्रिया में उन्होंने भारत की अर्थव्यवस्था के उत्पादन स्रोतों का भी नाश कर दिया। ज़मींदार भूमि से बेदख़ल और किसान कंगाल हो गए। एक स्वतंत्र वर्ग के रूप में भारत का व्यापारी बुर्जुआ वर्ग समाप्त हो गया और दस्तकार और शिल्पी अपने उत्पादक धंधों से वंचित हो गए। इन नए लुटेरों के हाथों भारतीय समाज का हर वर्ग पीड़ित हुआ। एक पूरी आर्थिक व्यवस्था और उसके भीतर हर समुदाय के ऐसे अभूतपूर्व विनाश का परिणाम 1857 की राष्ट्रीय क्रांति के रूप में व्यापक सामाजिक उथल-पुथल ही हो सकता था। ब्रिटिश शासकों की सर्वनाशी नीति ने ही अपने शासन के ख़िलाफ़ इस व्यापक सार्वजनिक विद्रोह को जन्म दिया था, इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं है।

अंग्रेज़ों को बढ़ते असंतोष का आभास था। मेटकाफ़ चेतावनी दे चुके थे कि किसी भी दिन भारत सहसा अंग्रेज़ी ताज के क़ब्ज़े से मुक्त हो सकता है। कर्नल स्लीमाँ ने अप्रैल 1852 में डलहौजी को ख़बरदार किया था कि स्वदेशी राज्य किसी दुस्साहसपूर्ण कार्यवाही के लिए एकजुट हो सकते हैं। अवध के ताल्लुक़ेदारों के बारे में डायरेक्टर टकर ने ख़बरदार किया था कि अधीनस्थ ताल्लुक़ेदार कभी भी विपरीत परिस्थिति में विरोधी पक्ष के साथ मिल सकते हैं। और लंदन से रुख़सत होते हुए ख़ुद लॉर्ड कैनिंग ने आशंका व्यक्त की थी कि भारत के शांत दिखाई देनेवाले आकाश में छोटा-सा बादल का टुकड़ा उमड़ सकता है। हो सकता है कि आरंभ में वह आदमी के हाथ से भी बड़ा दिखाई नहीं पड़े, पर बढ़ते-बढ़ते वह ऐसा विकराल रूप ग्रहण कर ले, जिसके फटने पर हमें तहस-नहस करने का ख़तरा पैदा हो जाए। कंपनी सरकार ने इन चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया।

देसी रियासतों के साथ संबंधों की ब्रिटिश नीति की भी इस प्रसंग में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। 1802 में मराठों की हार के बाद रजवाड़ों ने अंग्रेज़ों की शर्तों पर उनसे समझौते किए। *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून* में इस विद्रोह की शुरुआत के बाद मॉर्क्स ने पूरी वस्तुस्थिति पर बड़ी सारगर्भित टिप्पणियाँ की हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि एक राज्य के विरुद्ध दूसरे राज्य की सहायता के बहाने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्होंने सबको अपने अधीन कर लिया। एक बार अपने पाँव जमाने के बाद उन्होंने छल-बल से देशी राजाओं की कमर तोड़ दी। कंपनी से अनाप-शनाप दरों पर क़र्ज़े देकर अंततः ऐसी स्थितियाँ पैदा कर दी गईं कि उन्हें अपनी जागीरों और रियासतों से हाथ धोने पड़े। मार्क्स ने भारत में कंपनी के शासन को "एशियाई तानाशाही के ऊपर यूरोपीय तानाशाही का रोपण" कहा है।

1857 के विद्रोह का मुख्य प्रेरक कारण यही था कि उस दौर में विनाशकारी विदेशी सत्ता के रूप में अंग्रेज़ों की सही पहचान पहली बार कायम हुई थी। साम्राज्यवाद के मूल चरित्र की यह समझ धार्मिक, जातिगत और सांस्कृतिक अंतरों के बावजूद भारतीय जन-मानस की साझी पहचान थी। मेरठ से शुरू होकर, औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध घनीभूत असंतोष सारे देश में फैलता चला गया। अवध में इस संघर्ष का रूप सबसे बढ़ा-चढ़ा था, आधार सबसे व्यापक और जड़ें सबसे गहरी थीं। पर अंतर केवल परिमाण का था गुणात्मकता का नहीं। शत्रु, समस्या, भाग लेने वाले और नेतृत्व करने वाले सब वही थे या उनमें समानता थी। यहाँ तक कि विद्रोही ज़िलों में, ब्रिटिश सरकार में काम करने वाले अधिकांश भारतीय अफ़सर, विद्रोहियों के साथ हो गए थे। जो सरकार की वफ़ादारी करते रहे उनके प्रति जनता के रुख़ की जानकारी से इस विद्रोह के चरित्र को और अच्छी तरह समझा जा सकता है। अवध के विद्रोह के आधार पर देशव्यापी विद्रोह को समझने का यह अर्थ नहीं कि यह महज़ हिंदी पट्टी या मध्यदेश तक सीमित घटना थी। हैदरअली और टीपू सुलतान की भूमिकाएँ इसका प्रमाण हैं।

इस विद्रोह की एक बहुत बड़ी देन थी शासकों के प्रति शासितों की भावना में परिवर्तन। राजा अब प्रजा के लिए परंपरागत अर्थ में पिता या उनका ईश्वर नहीं रह गया था। वह न श्रद्धा का पात्र था न भय का कारण। 1857 में जब ये राजा अंग्रेज़ों के प्रति वफ़ादारी के वायदे कर रहे थे, तो सैनिक उनसे संबंध विच्छेद कर अपनी देशभक्ति प्रमाणित कर रहे थे।

औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध भारतीय सैनिकों की मानसिकता का सबसे बड़ा प्रमाण भौगोलिक सीमाओं के बाहर उनके व्यवहार में दिखाई पड़ता है। 19वीं शताब्दी का मध्य एशियाई देशों में व्यापक स्तर पर समानांतर स्वाधीनता आंदोलनों का दौर है। चीन का टेपिंग आंदोलन और दूसरा ओपियम युद्ध पर्शिया के बेबिस्ट आंदोलन और आंग्ल पर्शिया युद्ध, सीरिया और लेबनान के किसान आंदोलन और बोर्नियो का उपनिवेश-विरोधी जनांदोलन, भारतीय जनांदोलन की समानांतर घटनाएँ हैं। इनमें भारत और चीन के आंदोलन मुख्य और क्षेत्र में सबसे व्यापक थे। औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध किसी भी एशियाई देश के स्वाधीनता आंदोलन का दूरव्यापी प्रभाव दूसरे देशों पर पड़ता था। 1856-60 के बीच चीन के विरुद्ध फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी ताक़तों के द्वारा लूट की नीयत से छेड़े गए दूसरे ओपियम युद्ध में अंग्रेज़ों ने भारी संख्या में भारतीय सेना को झोंक दिया था। टेपिंग आंदोलन के भागीदार विद्रोहियों के नर-संहार के लिए जब भारतीय सैनिकों को बाध्य किया जाने लगा तो युद्ध-भूमि में बड़ी संख्या में ये सैनिक पाली बदलकर आक्रांताओं के विरुद्ध विद्रोहियों के पक्ष में शामिल हो गए। उपलब्ध ब्योरों से इस बात की पुष्टि हुई कि युद्ध भूमि में शस्त्र-समर्पण करने वालों में बड़ी संख्या उन भारतीय सैनिकों की थी, जो विद्रोहियों की ओर से फ्रांसीसी-अंग्रेज़ी सेनाओं के ख़िलाफ़ लड़ रहे थे। यह घटना 1857 के विद्रोह में भारतीय सैनिकों की भूमिका की समझ के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। विश्व के अन्य देशों के समाचार-पत्रों में भी इस घटना की रिपोर्टिंग और टिप्पणियाँ, वैश्विक स्तर पर विद्रोह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के प्रति सहानुभूति और औपनिवेशिकता के प्रति आलोचनात्मक रवैये को ज़ाहिर करती है। पूरे एशिया ने गंगा नदी के तटवर्ती इलाक़े में विद्रोह की छाया को 'स्वतंत्रता की चेतना के नए एलान' के रूप में देखा।

इतिहास के क्रम में पूर्ववर्ती छिटपुट विद्रोहों से यह विद्रोह गुण और परिमाण, दोनों में तत्त्वत: भिन्न था। इस दौरान पहली बार भारतीय सिपाहियों की रेजीमेंटों ने अपने यूरोपियन अफ़सरों को मौत के घाट उतारा। पहली बार हिंदू और मुसलमान अपने पारस्परिक विद्वेष भाव को दरकिनार कर सामान्य शासक के विरुद्ध एकजुट हुए। पहली बार जिस उपद्रव की शुरुआत हिंदुओं ने की, उसका अंत दिल्ली के तख़्त पर एक मुसलमान बादशाह की ताजपोशी से हुआ। और पहली बार विशिष्ट राज्यों ने (बंगाल, कर्नाटक, मैसूर, मराठे, सिख, सिंध) अपनी लड़ाइयाँ अलग-अलग नहीं लड़ीं, बल्कि एकजुट होकर एक सामान्य शत्रु (ब्रिटिश) के ख़िलाफ़ मोर्चा सँभाला।

अंग्रेज़ों ने नेपाल की लड़ाई हिंदुस्तानी सेना की मदद से लड़ी थी। उनसे स्थायी आर्थिक इमदाद और तराई क्षेत्र में ज़मीन के बड़े क्षेत्र की मिल्कियत के बदले नेपाल के राणा जंग बहादुर ने बदले के नाम पर अवध का दमन करने के लिए गोरखा फ़ौजें नीचे भेज दीं। सिखों के मन में मुग़लों के विरुद्ध पुरानी स्मृतियाँ घर किए थीं। उनमें से खालसा फ़ौजों के बेकार सिपाही और सिख राजाओं और सरदारों के सैनिक भी धीरे-धीरे ब्रिटिश सेना में शामिल हो गए।

मराठों के बीच से पेशवाओं के वारिस तो विद्रोहियों के साथ थे, पर दूसरे मराठा राजाओं की दक्षिण में निज़ाम और उत्तर में मुग़लों के साथ अपनी दुश्मनियाँ और लड़ाई-झगड़े थे। राजपूत राजाओं की शुरू के मुग़लों और बाद के मराठा शासन की अपनी ऐतिहासिक स्मृतियों के अलावा, वे तब अंग्रेज़ों की मुट्ठी में थे। ग्वालियर के सिंधिया के बारे में किसी ने लिखा है कि उसकी वफ़ादारी ने अंग्रेज़ों के लिए भारत को बचाया। यह बात अलग है कि कई रियासतों में सैनिकों ने अपने शासकों का साथ न देकर अंग्रेज़ों को खदेड़ दिया। ऐसे उदाहरण इंदौर, उदयपुर, कोटा, भरतपुर और करौली की सैनिक टुकड़ियों ने पेश किए। पर कुल मिलाकर इस स्थिति का भरपूर लाभ अंग्रेज़ों को मिला। जवाहरलाल नेहरू ने इस स्थिति को बड़ी सारगर्भित भाषा में बयान करते हुए लिखा : ''विद्रोह ने ब्रिटिश शासन पर अत्यधिक दबाव ज़रूर डाला, लेकिन उसका दमन भी भारतीय सहायता से ही हुआ।''

अजब दोमुँही थी सामंतों की देशभक्ति। क्रांतिकारी आंदोलन के परवान चढ़ते समय सार्वजनिक दबाव और विदेशी शासन के प्रति व्याप्त राष्ट्रीय विद्वेष में साझेदारी करते हुए उन्होंने सकारात्मक भूमिका निभाई। जब उस लहर में उतार आने लगा और क्रांतिकारी सार्वजनिक शक्तियाँ विघटित हो चलीं तो उन्होंने कायरों और विश्वासघातियों की भूमिका अख़्तियार कर ली।

ऐसे ही ऐतिहासिक क्षणों में अंग्रेज़ों के मन में यह गुमान पैदा हुआ था कि जो राष्ट्र किसी देश की क्रांति का दमन उसी के निवासियों की सहायता से करने की कूटनीतिज्ञता रखता हो, उसकी नियति विश्व-विजेता होने की है।

आनेवाले समय में इसका लाभ यह हुआ कि 1857 के अनुभव से भारतीय जनता ने यह पाठ पढ़ लिया कि किसी भी ब्रिटिश विरोधी आंदोलन का सामंत विरोधी होना ज़रूरी है। अब तक जिन्हें अपना परंपरागत नेता समझा जाता था, वे स्थानीय शासक 1857 आंदोलन के विश्वासघाती और अंग्रेज़ों के हाथ की कठपुतलियाँ समझे जाने लगे। जिन पुराने बादशाहों, शासकों, राजा-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रानियों को विद्रोहियों ने अस्थाई सफलता के बाद गद्दी पर बिठाया था, उनकी निरर्थकता बहुत जल्दी समझ में आ गई। यूँ भी सत्ता तब भी विद्रोही सैनिक नेताओं के हाथ में ही थी।

विद्रोह की अंततः नाकामी की बड़ी वजह यह भी थी कि उस समय तक शासन की राजतंत्रीय सत्ता के विकल्प के विचार से जनता ठीक-ठीक परिचित नहीं थी। यूरोप में भी स्थिति भिन्न नहीं थी। सत्रहवीं शताब्दी के इंग्लैंड में क्रामवेल के उदय और अस्त के बाद राजवंश को गद्दी सौंपने के अलावा राज्य-संचालन का कोई तरीक़ा कारगर नहीं हुआ था। यही स्थिति फ्रांस की क्रांति और नेपोलियन के पतन के बाद फ्रांस में पैदा हुई थी।

कंपनी से शासन की बागडोर रानी विक्टोरिया के हाथ में जाते ही 1858 में जनता को आश्वस्त करने के लिए जो घोषणा-पत्र जारी किया गया, उससे भी बात नहीं बनी। अवध के शहज़ादे बिरजिस ने तत्काल उस पर विश्वास न करने का आग्रह किया। पर मूल समस्या थी कि उस समय तक भी देश का राजनीतिक विचारधारात्मक नेतृत्व सामंती शासक वर्ग के हाथ में था। वे सामान्य रूप से अंग्रेज़-विरोधी थे, पर वे अपने सामंत प्रतिद्वंद्वियों से अधिक भय खाते थे। अखंड स्वतंत्र भारत की अवधारणा ने उनके भीतर जन्म ही नहीं लिया था। देश-प्रेम का अर्थ उनके लिए अपने परंपरागत शासक के अधीन अपनी मातृभूमि भर था।

कुछ विचारकों ने इसे सामंत सरदारों और उनके अनुयायियों के नेतृत्व में होने वाले ऐसे विस्फोट के रूप में देखा था, जिसे व्यापक ब्रिटिश-विरोधी भावना का संबल मिला। पर बाद में यह स्पष्ट हो गया कि इस संघर्ष के पीछे जन-साधारण की ऐसी सामाजिक शक्तियाँ सक्रिय थीं, जिन्होंने इसे नए उपादानों और विचारों से संपन्न किया। यही वजह थी कि उसके बाद भारत में परंपरागत प्रतिक्रियावादी सामंती व्यवस्था की पुनरावृत्ति संभव नहीं हुई। सेना सामंतों का अंधानुसरण करती नहीं थी और उसके विद्रोही होते ही जनता उसके साथ हो लेती थी। भूलना नहीं चाहिए कि सेना में सबसे अधिक संख्या किसानों की थी। अंततः जीत अंग्रेज़ों की हुई, सामंतों की नहीं। इस लड़ाई का अंत विदेशी साम्राज्यवाद के साथ देसी ज़मींदारी के विरुद्ध किसान विद्रोह के रूप में हुआ था। इसीलिए दमन के बाद सामंतशाही की पुनःप्रतिष्ठा संभव नहीं हो सकी। क्रांतिकारियों ने भी जब बहादुरशाह या नाना या अवध के नवाब को गद्दी पर बिठाया तो उसके पीछे भावना यही थी कि हम विदेशी शासकों की अपेक्षा हर हालत में अपने शासकों के साथ उनकी सारी कमियों और ख़ूबियों के बावजूद निबटना चाहेंगे। सत्ता तो तब भी सैनिक-समितियों के हाथ में ही थी। भारत के इतिहास की यह नई और विलक्षण परिघटना थी, जब एक बाग़ी सेना उसी मुग़ल बादशाह से अपनी शर्तें मनवा रही थी, जिसे कुछ ही समय पहले हिंदुस्तान के शहंशाहे आलम के रूप में गद्दी पर बिठाया था। अपने मुक़दमे के दौरान बहादुरशाह ने बयान दिया था कि उन्हें उन तमाम दस्तावेज़ों पर, कभी-कभी ख़ाली काग़ज़ों तक पर दस्तख़त करने पड़ते थे, जो उनके सामने शासन-संचालन समिति रखती थी।

लखनऊ के बिरजिस क़द्र वली ने एक घोषणा पत्र जारी किया था। उसमें कहा गया था कि "सब हिंदू और मुसलमान यह जानते हैं कि हर आदमी को चार चीज़ें प्यारी होती हैं। धर्म, सम्मान, ज़िंदगी और संपत्ति। ये चारों देशी शासन के अधीन सुरक्षित हैं।" अगली पीढ़ी ने जब राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की शुरुआत की तो 1857 से हिंदू-मुस्लिम एकता की महिमामयी विरासत को ग्रहण करने के साथ उसने ब्रिटिश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शासन के विरुद्ध इस संयुक्त मोर्चे की अवधारणा को अधिक जनतांत्रिक स्वरूप दिया।

यह एक ऐसी ऐतिहासिक परिघटना थी, जिससे अंग्रेज़ों ने भी सीख ग्रहण की। 1857-58 के राजकीय दस्तावेज़ों की भूमिका में फ़ॉरेस्ट ने लिखा : ''भारतीय विद्रोह ने इतिहासकारों को जो कई पाठ पढ़ाए उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह चेतावनी है कि ऐसी क्रांति होनी संभव है, जिसमें ब्राह्मण और शूद्र, हिंदू और मुसलमान हमारे विरुद्ध एकजुट हो जाएँ। यह मान लेना अब सुरक्षित नहीं है कि हमारे उपनिवेशों की शांति और स्थिरता बहुत दूर तक इस बात पर निर्भर है कि उनके निवासी अलग-अलग धर्मावलंबी हैं। यह विद्रोह हमें याद दिलाता है कि हमारे उपनिवेश ऐसे कमज़ोर धरातल पर टिके हैं, जिसे सामाजिक परिवर्तन और धार्मिक आंदोलनों की विराटाकार शक्तियाँ कभी भी उखड़ सकती हैं।''

विद्रोह का दमन करने के लिए अंग्रेज़ों ने बर्बरता और कूटनीति दोनों का सहारा लिया। देशी रजवाड़ों को बनाए रखने के पीछे भी भारत की एकता को नष्ट करने की कूटनीति काम कर रही थी। नेहरू ने सही कहा है कि ''भारतीय राजाओं ने भारत में अंग्रेज़ी सत्ता के पाँचवें स्तंभ की भूमिका निभाई।'' अंग्रेज़ जानते थे कि भारत में सत्ता क़ायम रखने के लिए भद्र लोक को मिलाए रखना ज़रूरी है। रॉबिन्स ने यह स्वीकार किया है कि ''फ़िलहाल हम उन्हें जागीरों की रिश्वत दे रहे हैं।'' विश्वासघात के मुआवज़े के बतौर अवध के दो तिहाई ताल्लुक़दारों को 'जो बीत गया सो बीत गया' के तर्क के साथ पहले से भी बेहतर शर्तों पर उनकी ज़मीनें वापिस मिल गईं। ज़मींदारों को बढ़ावा देकर किसानों को उनके रहमोकरम पर छोड़ देना 1857 के बाद अंग्रेज़ों की नीति हो गई। यही वजह थी कि आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन में किसानों ने 1857 के विश्वासघातियों और देहात में अंग्रेज़ी शासन के समर्थक अपने वर्तमान शोषक ज़मींदारों के विरुद्ध आंदोलनकारियों का साथ दिया।

भारत के प्रति शासकों की नीतियों में साफ़ परिवर्तन हो गया। सेना में अंग्रेज़ी सैनिकों का अनुपात बढ़ा दिया गया और उनका उपयोग मुख्य रूप से भीतरी सुरक्षा क़ायम रखने के लिए किया जाने लगा। भारतीय सेनाओं का संगठन और प्रशिक्षण ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए विदेशों में एशियाई और अफ़्रीकी इलाक़े जीतने के लिए किया जाने लगा। भारतीय सैनिकों के हाथ से तोपख़ाना ले लिया गया। सारे ऊँचे ओहदे अंग्रेज़ों के लिए आरक्षित हो गए। भारतीय रेजीमेंटों का पुनर्गठन इस बात को ध्यान में रखकर किया गया कि उनमें फूट डालकर शासन किया जा सके और भर्ती तथाकथित युद्धप्रिय (सामरिक) जातियों तक सीमित कर दी गई। शासन की बागडोर ताज के हाथ में आने के बाद विक्टोरिया के घोषणा पत्र की पोल खुलने में भी लंबा समय नहीं लगा। नस्लवादी बर्ताव के विरुद्ध आश्वासन देने के बावजूद व्यवहार में सिविल सर्विस में भारतीयों की संख्या नाममात्र की रह गई। यह भेदभाव और भी तमाम उच्चपदीय नौकरियों में साफ़ दिखाई पड़ने लगा।

पर अंततः ब्रिटिश शासन को इसका लाभ नहीं मिला। 1857 में सैनिकों की भूमिका की स्मृति का लोप न भारतीय जनता के मन से हुआ न भारतीय सैनिकों के मन से। जैसे-जैसे भारत में स्वाधीनता आंदोलन ने प्रगति की, उसका असर पुनर्गठन के बावजूद भारतीय सेना पर पड़ा। नतीजतन 1930 के राष्ट्रीय संघर्ष में गढ़वाली सैनिकों ने पेशावर में प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। विश्वयुद्ध के बाद के राष्ट्रीय उभार में भारतीय सेना और वायुसेना में 'विद्रोहों' का जो सिलसिला शुरू हुआ उसके चलते 18 फ़रवरी 1946 को रॉयल इंडियन नेवी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के विद्रोह के अगले ही दिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भारत की स्वतंत्रता के बारे में बातचीत के लिए कैबिनेट मिशन की रवानगी की घोषणा कर दी।

जाने से पहले अंग्रेज़ी शासन दो भयंकर कारगुज़ारियाँ करने में सफल हो गया। मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन-क्षेत्रों की घोषणा करके उन्होंने दो राष्ट्रीयताओं के उस विष बुझे सिद्धांत की शुरुआत की, जिसकी अंतिम परिणति देश के विभाजन और सांप्रदायिक विद्वेष के प्रसार में हुई। दूसरा लक्ष्य-ब्रिटिश अधिपतियों ने अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा मध्यवर्ग तैयार करके साधा, ताकि उन्हें प्रशासन के निचले स्तर के ज़रूरी कामों के लिए सस्ता, कुशल और राष्ट्रीय भावना से विरहित भारतीय संवर्ग सुलभ हो सके। उनकी इसी साज़िश के कारण ''शिक्षित देशी समाज ने सिपाही विद्रोह में कोई हिस्सा नहीं लिया; इस व्यवहार के विरुद्ध आरोपों के बावजूद उन्होंने खुले दिल से विद्रोह की निंदा की और उस पूरे संकट-काल में ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी वफ़ादारी प्रकट करते रहे।''

यह बात अलग है कि ऐसा सर्वत्र नहीं हुआ। बंगाल और बिहार के किसानों के साथ बुद्धिजीवियों ने एकजुट होकर नील-विद्रोह के दौरान पूरे बंगाल में उथल-पुथल मचा दी। सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने आई.सी.एस. में आयु कम करने के विरुद्ध अखिल भारतीय आंदोलन चलाया और भारतीय राष्ट्रीय-आंदोलन के पितामह दादाभाई नौरोजी ने लिखा कि ''हिंदू मुसलमान और पारसी सब एक ही सवाल पूछ रहे हैं कि ब्रिटिश शासन वरदान है या अभिशाप... यह न अब किसी से छिपा है, न यह ऐसी स्थिति है; जो उन शासकों पर प्रकट न हो, जो इसे देखना चाहते हैं।''

1857 की घटनाओं से ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने अपने भारतीय साम्राज्य को बनाए रखने और समेकित करने का सबक़ सीखा और भारतीयों ने एक नए राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की तैयारी का। पर दमन की बर्बरता ने कुछ समय के लिए ऐसे दहशतज़दा माहौल की रचना कर दी, जिसके कारण प्रकट विरोध दबकर स्थगित हो गया। सबसे बड़ी गाज विशेषकर मुस्लिम समाज तथा दिल्ली और अवध की जनता पर गिरी। उन दिनों पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय नागर समाज में शायद ही कोई विरोधी आवाज़ सुनाई पड़ी हो। साहित्य और पत्रकारिता, अभिव्यक्ति के दोनों प्रमुख माध्यमों में पर्याप्त सक्रियता के बावजूद जो भाव-रसायन तैयार हुआ था, उसे 'राजभक्ति बनाम देशभक्ति' या 'परंपरा बनाम आधुनिकता' जैसे किसी सरलीकृत खाँचे में ढालकर नहीं समझा जा सकता था। गोकि शासकों ने भारतीय समाज को नृतत्त्वशास्त्रीय योजना के तहत जाति, नस्ल आधारित खाँचों में ठोस रूप देकर उन पर लेबल चस्पाँ कर दिए थे। पुरुषों में बँगाली उन्हें स्त्रैण, सिख योद्धा और मुसलमान विद्रोही क़ौम और इनके अलावा कुछ लोग ठग और अपराधिक जातियों के दिखाई पड़ते थे। बौद्धिकों का मामला इस तरह के वर्गीकरण के बाहर था। उनके भीतर एक तरफ़ आत्महीनता की आग और दूसरी तरफ़ आत्म-भाव को पाने की अकुलाहट पल रही थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने नवजागरण का उत्स भले ही 1857 के विद्रोह में और दूसरा-तीसरा चरण क्रमशः भारतेंदु और द्विवेदी-युग में माना हो, पर इसमें शंका की गुंजाइश कम है कि भारतेंदु के समय से इस लड़ाई को 'मध्यवर्गीय लेखकों ने' संस्कृति के मैदान में 'स्वत्व-बोध' की लड़ाई का रूप दे दिया। संघर्ष का वर्गीय चरित्र बदला गया तो हथियार बदलने स्वाभाविक थे। शब्दों ने आग उगलने के बजाय 'अर्ज़ियों' और 'मेमोरैंडम' की शक्ल अख़्तियार कर ली। भारतेंदु के शब्दों में 'स्पीचों के गोले', 'कमिटी की फ़ौज' और 'एजुकेशन की सेना' काम में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का साहित्य स्वत्व-चिंता के विरोधी संस्करणों का दस्तावेज़ है।

जहाँ तक 1857 का सवाल है, उसे अंजाम देने वालों के वृहदाख्यान का कोई अता-पता साहित्य से नहीं मिलता। आर्थिक लूटपाट और शोषण का ज़िक्र बाद के अधिकांश कवियों में ज़रूर मिलता है। तत्कालीन कवियों में यज्ञदत तिवारी और मकरंद लांछन जैसे कुछ अल्पज्ञात कवियों की रचनाओं के उदाहरण हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने उद्धृत किए हैं। स्वयं भारतेंदु ने 1857 का सीधा उल्लेख संभवत: केवल दो पंक्तियों में किया है :

कठिन सिपाही-द्रोह-अनल जो जल-बल नासी।
जिन भय सिर न हिलाय सकत कहुँ भारतवासी॥'

इन पंक्तियों से, भारतीय मानस में व्याप्त उस भय का अंदाज़ा लगाया जा सकता है, जिसके कारण सिर हिलाना ही नहीं, दो टूक बात कहना भी असंभव-सा हो गया था। भारतेंदु युग के सभी प्रमुख कवियों—प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, बालमुकुंद गुप्त, प्रेमघन, श्रीधर पाठक में समय की राजनीतिक-सामाजिक घटनाओं के प्रति उत्कंठित निरख-परख के बावजूद 1857 के बारे में असुविधाजनक चुप्पी नज़र आती है। साम्राज्यशाही के इस आतंक का भारतेंदु ने कुछ ऐसे बखान किया है :

प्रबल प्रताप भारतेश्वरी तिहारैं क्रोध,
ज्वाल काल आगे मोम रोम रूस फूस है।

प्रताप नारायण मिश्र ने सीधे 1857 की घटनाओं को *ब्रैडला स्वागत* (1889 ई.) में विषय बनाया :

सन सत्तावन मांहि जबहिं कछु सेना बिगरी।
तब राजा दिशि ही रही सुदृढ़ ह्वै परजा सिगरी॥
ठौर ठौर निज घर लुटवाए अरु फुँकवाए।
प्रान खोय बहु ब्रिटिश वर्ग के प्रान बचाए॥

इससे कुछ मिलती-जुलती पंक्तियाँ प्रेमघन की हैं :

देसी मूढ़ सिपाह कछुक लै कुटिल प्रजा संग।
कियो अमित उत्पात, रच्यो निज नासन को ढंग॥
बढ्यो देस में दुख, बनि गई प्रजा अति कातर।
फेर्‌यो तब तुम दया दीठ भारत के ऊपर॥

सामान्य जन की भावना का प्रतिनिधित्व करने वाले गीतों में वीरतापूर्ण आत्मबलिदान और अदम्य राष्ट्रभक्ति के जज़्बे की उन्मुक्त अभिव्यक्ति की गई है। इनके नायक बाबू कुँवरसिंह, रानी लक्ष्मीबाई और राना बेनी माधो सिंह जैसे चरित्र हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रसिद्ध रचना 'ख़ूब लड़ी मर्दानी वो तो झाँसी वाली रानी थी' का एक लोकगीतपरक संस्करण पहले से प्रचलित था :

खूब लड़ी मरदानी, अरे जांसी वाली रानी।
बुरजन बुरजन तोपै लगाई दई,
गोला चलाए अस्मानी॥

राजाओं, ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों के आश्रित कवियों का स्वर आश्रयदाता के पक्ष के अनुसार तय होता था। अपने-अपने आश्रयदाताओं की पक्षधरता के अनुरूप विद्रोह के समकालीन कवि विद्रोह का उल्लेख करते दिखाई पड़ते हैं। नवजात मध्यम वर्ग के अधिकांश स्वतंत्र कवियों ने या तो विद्रोह की निंदा की या चुप्पी साध ली।

1857 के विद्रोह के दमन के बाद के हिंदी साहित्य की सही समझ के लिए 8 नवंबर 1858 के महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र की दो बातों पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा। एक तो देश की प्रजा को 'अपना धर्म मानने की आज़ादी' और दूसरी 'क़ानून के समक्ष बराबरी और सुरक्षा' का आश्वासन। पहली घोषणा का संबंध भारत के अलग-अलग धर्म समुदायों को राष्ट्र के रूप में मान्यता देने से था और दूसरी का अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न्यायप्रियता की धाक जमाने से। राज का यह रवैया साहित्य की चेतना को निर्धारित करने में बहुत प्रभावी साबित हुआ।

मध्यवर्ग के उदय के तीन मूल भौतिक आधार थे—शिक्षा, प्रशासन और संचार। एक बार यह मान लेने के बाद कि ये तीनों अंग्रेज़ी राज की देन हैं, शासन के प्रति कृतज्ञता-बोध पनपना सहज था। इसके अलावा पश्चिमी विद्वानों ने अपने अध्ययनों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का बिंब एक अतार्किक पिछड़ी, यौन विकृतियों से संपन्न बेईमान संस्कृति के रूप में निर्मित किया था। जिस स्थिति से मुक्ति के लिए अंग्रेज़ी शासन जैसी बुद्धिवादी शक्ति के हस्तक्षेप की अनिवार्यता पर बल दिया गया। स्त्री-पुरुष संबंधों और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को पैमाना मानकर पूरा बल उसके जीवन में सुधार के कार्यक्रमों पर टिक गया। पर इन सुधार प्रस्तावों के केंद्र में जो स्त्री छवि उभरती है, वह उस आर्य कुल ललना की है, जिसके आदर्श सीता, सावित्री, गार्गी, अनुसूया ही हो सकती थीं।

रचनाकारों का ध्यान राजनीतिक संघर्ष से हटकर अपने-अपने धर्म की परिधि में 'स्व' की तलाश में लग गया। राजनीतिक हस्तक्षेप की ओर से बेफ़िक्री इस हद तक थी कि 'भारत वीरत्व' (1871) 'भारत शिक्षा' (1875) और 'विजयिनी-विजय-पताका' (1882) जैसी कविताएँ रचकर भारतेंदु ने अंग्रेज़ी राज्य का गुणगान किया, 'रूल ब्रिटानिया' का नारा लगाया। ये वही भारतेंदु थे, जो 'भारत दुर्दशा' नाटक में यह कहकर रो चुके थे :

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

उनके अनुसार अब 'ब्रिटिश सुशासित भूमि मैं आनंद उमगे जात।' प्रेमधन ने भी महारानी का जयकारा करते हुए लिखा :

धन्य तिहारो राज, अरी मेरी महरानी!
सिंह अजा संग पियत जहाँ एकहिं थल पानी।

गोकि एक घाट पर पानी पीने के मिथक को अंग्रेज़ बहुत पहले वहाबी आंदोलन के दमन के अवसर पर तोड़ चुके थे। वहाबी आंदोलन का दमन इतनी क्रूरता से किया गया था कि 1860 में एक भी वहाबी का अस्तित्व नहीं रह गया था। आर्थिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से अंग्रेज़ी राज में सबसे अधिक नुक़सान मुसलमानों को हुआ था। दिल्ली में तथाकथित बलवाइयों पर जो क़हर बरपा हुआ, उसके शिकार भारी संख्या में मुसलमान ही हुए थे। आख़िर सल्तनत की बागडोर भी तो अंततः उन्हीं के हाथों से छिनने वाली थी। यह आकस्मिक नहीं है कि 1857 के दौरान और उसके ठीक बाद उस समय के हालातों पर उर्दू में कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ सामने आईं। इनमें ख़ुद मिर्ज़ा ग़ालिब के *ख़ुतूते ग़ालिब* और दस्तंबू शीर्षक से फ़ारसी में विद्रोह के दौरान लिखी एक डायरी के अलावा सर सैय्यद अहमद ख़ाँ ने *रिसाल-ए अस्बाह-ए बग़ावत-ए हिंद, तारीख़-ए सरकशी-ए बिजनौर* की रचना की। जहीर देहलवी ने *दास्तान-ए ग़दर* लिखा। *फ़ुगान-ए देहली* शीर्षक से लगभग चालीस शायरों की रचनाओं का एक संग्रह 1861 में प्रकाशित हुआ, जिसमें दिल्ली की बर्बादी और लूट को विषय बनाया गया है।

बहरहाल, दमन के बाद और समय के साथ, भारतेंदु और सर सैयद दोनों अंग्रेज़ी शासन की न्यायशीलता के धीर विश्वासी दिखाई पड़ने लगे। हिंदू और मुस्लिम दो समुदायों के रूप में एक ही समस्या से जूझने लगे नए शासन तंत्र के अंतर्गत अपने समुदाय की बेहतरी कैसे हो? पाश्चात्य सभ्यता को अपनाकर या अपनी पारंपरिक धार्मिक विशुद्धता बनाए रखकर। ऐसा नहीं है कि ये लेखक देश की दुरवस्था से अनजान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे। बालमुकुंद गुप्त की कुछ व्यंग्य प्रधान कविताओं में, 'शिव शंभु के चिट्ठे' में और भारतेंदु की 'मुकरियों' में इसकी अभिव्यक्ति भी मिलती है। पर मुसलमानों के राज्य की तुलना हैज़े से और अंग्रेज़ी राज की क्षयी से करने भर से रोग का निदान नहीं हो जाता। वस्तुतः शासन के विरुद्ध किसी प्रकार के क्रांतिकारी साधन का उपयोग करके सरकार से खुल्लमखुल्ला मोर्चा लेने का न हौसला और साहस बचा था न क्रांति का विचार कोई ठोस आकार ले सका था। वे अवसर मिलने पर राजनीतिक दृष्टि से जनता की भलाई की माँगें सरकार के सामने पेश करते थे, पर पूरी विनम्रता से लगभग विनती के स्वर में। माँगें प्रायः आर्थिक आधार लिए होती थीं या ज़्यादा-से-ज़्यादा सम्राट की छत्रछाया में औपनिवेशिक प्रतिनिधि होने की इच्छा का इज़हार किया जाता था।

साहित्य में क्रांति के विचार का नैरेटिव पूरे परिदृश्य में पूरी तरह अनुपस्थित है। भारत में क्रांति के विचार का सबसे पहला प्रचार संभवतः बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने 1880-85 के बीच लिखे अपने निबंध 'साम्यवाद' में किया था। विद्रोह की थीम पर हिंदी में पहला उपन्यास *गदर* 1930 में ऋषभ चरण जैन ने लिखा, जो तत्काल ज़ब्त कर लिया गया। उसके बाद वृंदावनलाल वर्मा का लोकप्रिय उपन्यास *झाँसी की रानी* 1946 में सामने आया। उसके 10 वर्ष बाद 1956 में प्रताप नारायण श्रीवास्तव का *बेकसी का मज़ार* प्रकाशित हुआ। इसके काफ़ी समय बाद 1991 में कमलाकांत त्रिपाठी ने 1857 की घटनाओं को आधार बनाकर *पाहीघर* लिखा। इसकी प्रेरणा अपनी सरकारी नौकरी के दौरान कुछ दुर्लभ दस्तावेज़ और रिकॉर्ड हाथ लग जाने से हुई, ऐसा इसके रचनाकार का दावा है। ज़ाहिर है इस सामग्री का उपयोग अपने ढंग से करने की छूट लेखक ने ली है। इसी क्रम में 1998 में राजीव सक्सेना ने एक उपन्यास *रमैनी* लिखा, जिसे लिखने की प्रेरणा उन्हें अयोध्या के बाबरी-मस्जिद विवाद से मिली। ग़रज़ यह कि 1857 के विद्रोह ने साहित्य की विषयवस्तु के रूप में घटना से क्रमशः प्रस्थान-बिंदु की भूमिका का दर्जा ग्रहण कर लिया। उसे देखने वाली दृष्टियाँ तो भिन्न थीं ही, उसकी प्रेरणा के स्रोत भी समय के साथ अलग होते गए। विचार-धारात्मक अंतरों ने बहुलतावादी पाठों की संभावनाएँ पैदा कीं। प्रामाणिकता के दावे गौण होते-होते लगभग निरर्थक या कम-से-कम अप्रासंगिक होते गए। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में इस विद्रोह के दलित-पाठ के प्रयास किए जा चुके हैं, अब स्त्री विमर्शवादी पाठ की प्रतीक्षा है।

जुंबिश हो एक पर की तो पर टूट जाएँ दस
रह जाए दिल-की-दिल में न किस तरह हवस
क्या ताइरे-आसीर वह परवाज़ कर सके
जिसमें न इतना दम हो कि आवाज़ कर सके।

—बहादुरशाह ज़फ़र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पी.सी. जोशी

भारत किधर?

I

दुनिया का इतिहास, सुनी किसने न कहानी
पश्चिम का अभ्युदय, पूर्व की पतन कहानी।
भारत हुआ ग़ुलाम, अरे क्या कर्म का लेखा?
भारत के माथे पर क्यों कलंक की रेखा?
मुट्ठी भर अंग्रेज़ों ने यह देश पुरातन
लूटा, रौंदा हुआ विफल जब सन सत्तावन।
लक्ष्मी हारी और ताँतिया, ज़फ़र प्रवासित
दर्दनाक त्रासदी देश की गौरव कुंठित
लंबी चली ग़ुलामी जब इतिहास रुक गया
स्वाभिमान क्षत हुआ, विचित्र अवसाद भर गया।
पर पलटा इतिहास, समय ने करवट बदली
उदित पूर्व में हुई प्रात की किरण सुनहली।
लिए राम मोहन का मंत्र पुनः भारत में
राष्ट्र जागरण के स्वर गूँजे थे भारत में।
भाषा, धर्म, विभेद भुलाकर भारत जागा
जात-पात और ऊँच-नीच तज भारत जागा।
जगे विवेकानंद अंधविश्वास मिटाने
अकर्मण्य को कर्मयोग का पाठ पढ़ाने।
मुख में मंत्र मातरम् बंदे लेकर जागा
लोकमान्य, गांधी, सुभाष का भारत जागा।
जगा मदन मोहन का सर सैय्यद का भारत
शिक्षा संस्कृति का ध्वज लेकर जागा भारत।
जागा जवाहर, सरोजनी का भारत जागा
गुरु नरायन, भीमराव का भारत जागा।
कवि रवींद्र, इक़बाल, गुप्त का भारत जागा
शुभ्रमण्य का, प्रेमचंद का भारत जागा।
सुनी ग़दर बाबाओं की थी अमर कहानी
प्रीतिलता कल्पना दत्त की अमर कहानी
जागृत दलित वीर बहुजन की अमर कहानी

समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री और संस्कृति के प्रख्यात चिंतक हैं पी.सी.जोशी। संपर्क : 109, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
फ़ोन : 25262709

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

II

पलटा अब इतिहास अरे फिर जागा भारत
यह किसान मज़दूरों, भद्रजनों का भारत।
चंपारन, डाँडी, बारडोली में सत्याग्रह
गाँव-गाँव और नगर-नगर फैला सत्याग्रह
देंगे नहीं लगान टैक्स; बोली तब जनता
नहीं विदेशी शिक्षा, कपड़ा; बोली जनता
मंत्र स्वदेशी भाषा वेश विचार स्वदेशी
आया गांधी युग चलती अब हवा स्वदेशी
पूर्णस्वराज घोषणा गूँजी रावी तट पर
युवक जवाहर लाल मंच पर रावी तट पर
जन समुद्र ललकार उठा तब एक कंठ से
तजो ग़ुलामी गूँज उठी आवाज़ हिंद से।
कानपुर, काकोरी और मेरठ के बाग़ी
जलियाँवाला के शहीद चटगाँव के बाग़ी
बाग़ी सारा देश हो गया, घर घर बाग़ी
बाग़ी औरत मर्द अरे सैनिक भी बाग़ी
पलटा अब इतिहास अरे अब भारत जागा
आज़ादी के दीवानों का भारत जागा
'दिल्ली चलो' ग़ुलामी के अवशेष मिटाएँ
गूँज उठी 'जय हिंद' घोष से सभी दिशाएँ।

III

स्वागत पंद्रह अगस्त राष्ट्र ध्वज है फहराया
लाल क़िले पर आज मुक्ति ध्वज है लहराया
सच है स्वप्न अहिंसा के हो सके न पूरे
राष्ट्रपिता की हत्या रहे आदर्श अधूरे
भड़क उठा गृहदाह आग नफ़रत की फैली
देश विभाजित हुआ रक्त से धरती मैली
अस्त हुआ पर सूरज पश्चिम की प्रभुता का
उदय हुआ सूरज अब पूरब की प्रभुता का।
भारत है स्वाधीन न वह अब उपनिवेश है
अब न यहाँ साम्राजी प्रभुता का प्रवेश है
भारत गुट निरपेक्ष शक्ति बन उदित हुआ है
वह पूरब का लोकतंत्र बन उदित हुआ है
मैत्री का संदेश शांति का अग्रदूत बन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

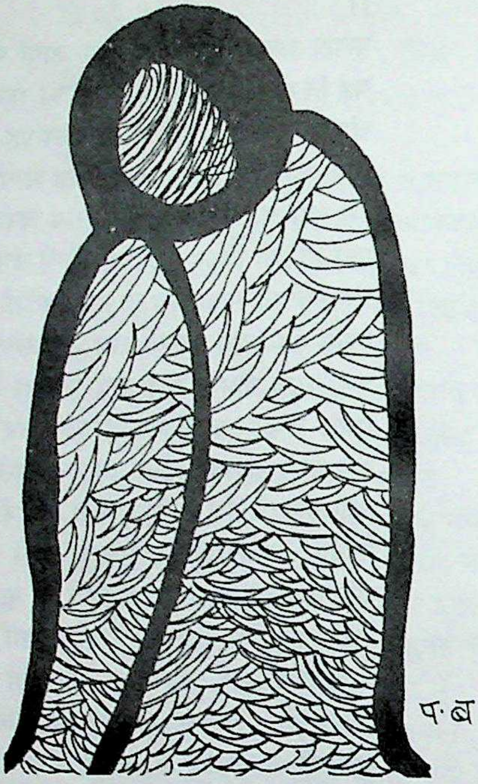

विश्व बंधुता के दर्शन का अग्रदूत बन
विश्व मंच पर भारत का अवतरण मुबारक
ओ युवजन संतान तुम्हीं स्वतंत्र भारत की
स्मृति भारत की नव जागृति की तुम्हें मुबारक!

IV

बीते पाँच दशक अब राष्ट्र वयस्क हुआ है
हम क्या थे, क्या हैं, क्या होंगे प्रश्न उठा है
सच है अब भारत की गुज़री काल निशा है
उसका अब रोशन भविष्य है नई दिशा है।
पर किस पथ के पथिक आज हम किधर चले हैं?
वही लक्ष्य क्या नव भारत का जिधर चले हैं?
संविधान कहता है तुम चलो प्रगति के पथ पर
रहो अडिग लेकिन तुम सदा सुमति के पथ पर।
किस के लिए प्रगति, रे अर्थ सुमति का क्या है?
सदा सामने भारत के यह प्रश्न रहा है।
बनो आत्मनिर्भर कहता यह संविधान है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहो धर्मनिरपेक्ष बताता संविधान है
बढ़ो न्याय पथ पर कहता यह संविधान है
तजो अंधविश्वास बताता संविधान है
लिए ज्ञान-विज्ञान बताता संविधान है
थमे न मुक्ति संग्राम बताता संविधान है
मुक्त कोटिजन जो अभिशप्त रहे शोषण से
मुक्त करो शिशु जो अभिशप्त अकाल मरण से
मुक्त क्षुधा से रोग व्याधि से निर्धनता से
जीवन हो आलोकित बहुजन का समता से।

V

संविधान में औ' विधान में भेद प्रकट है
कथनी-करनी बीच भेद अब हुआ विकट है
आज बड़ा गंभीर बना मूल्यों का संकट
आज बड़ा गंभीर बना चरित्र का संकट।
बढ़ो, आधुनिक बनो आज नारा बुलंद है
पुनरुत्थानी बनो आज नारा बुलंद है
आज बाबरी मस्जिद लेकर वाद उठा है
आज राम जन्म स्थल को ले विवाद उठा है
आज चिता पर सतियों के हैं मंदिर बनते
हिंसा की लपटों में आज दलित जन जलते
अल्प संख्यकों, नारी जन की घोर त्रासदी
कैसे जिएँ भय अभाव में घोर त्रासदी।
शासक भूल गए न्याय समता की वाणी
बहुजन के हित की भाषा जानी पहचानी
आँखों के आँसू दुखियों के नज़र न आते
स्वार्थ सिद्धि में शासक आज हुए मदमाते।
पुरुष प्रधान समाज न आदर नारी का है
कन्या जन्म अरे आज अभिशाप बना है
हिंसा के शिकार हो रहे हिंदुस्तानी
कितने असुरक्षित स्वदेश में हिंदुस्तानी

VI

क्या हम केवल हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई
क्या हम केवल जाति धर्म के ही अनुयायी
भूल गए हम आज कि हम सब हिंदुस्तानी
भूल गए 'जय हिंद' ध्वजा जानी पहचानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अरे राममोहन का बोलो यही देश है ?
अरे यही क्या गांधी, नेहरू का स्वदेश है ?
यही कबीर, नानक, मीरा की जन्म भूमि है ?
संत फ़क़ीरों की क्या यह ही पुण्य भूमि है ?
ध्वस्त पड़ी है आज विरासत गांधी युग की
कहाँ मान्यता और परंपरा नेहरू युग की।
घृणा असहिष्णुता का ही रे सब ओर राज है
सेवा नहीं भोगे अरे युग धर्म आज है।
मृतप्राय सी आज भावना है स्वदेश की
प्रबल आज मानसिक दासता फिर विदेश की।
नारकीय हो रहा निम्न जनों का जीवन
भोग विलास समर्पित नवधनाढ्य का जीवन
क्षुधाग्रस्त वे ही जो करें अन्न उत्पादन
अर्द्धनग्न वही जो करें वस्त्र उत्पादन।
हैं गृहहीन करें जो निर्मित पंच सितारे
हैं निर्धन ख़ुद करें सृजन जो वैभव सारे।
है विकास पर पेय जल वंचित कोटि कोटि जन
है विकास पर रहे निरक्षर कोटि कोटि जन।
यह विकास कैसा श्रम करते नन्हे बालक
और रेंगते कीड़ों से ये नन्हे बालक।

VII

बीते पाँच दशक अब भी उद्देश्य अधूरे
बीते पाँच दशक पर अब भी स्वप्न अधूरे।
ओ युवजन अधिकारी तुम्हीं आज भारत के
यह कल की भूलों का भारत तुम्हें समर्पण।
तुम्हें पोंछने शोषित पीड़ित जन के आँसू
गांधी के सपनों का भारत तुम्हें समर्पण।
वादे अभी अपूर्ण तुम्हें मीलों चलना है
नेहरू के सपनों का भारत तुम्हें समर्पण।
आज़ादी आई पर न्याय न समता आई
जन जन की पीड़ा का भारत तुम्हें समर्पण।
जो आक्रोश क्षोभ को बदले सृजन शक्ति में
जन मन मंथन का नव भारत तुम्हें समर्पण।
ओ युवजन! फिर बनो मुक्ति के अग्रदूत तुम
नई लहर का कल का भारत तुम्हें समर्पण।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वेदप्रताप वैदिक

उपनिवेशवाद, साहित्य और स्वतंत्रता अभियान

सबसे पहले तो मुझे इसी पर आपत्ति है कि 1857 की घटनाओं को हम 'ग़दर', 'बग़ावत', 'विद्रोह', 'विप्लव', 'सिपाही-युद्ध', 'ख़ूनी-गड़बड़' या 'ख़ून-ख़राबा' आदि कहें। 1857 को मैं स्वाधीनता संग्राम कहता हूँ। उसके चार मोटे-मोटे कारण हैं। एक तो मज़हब, दूसरा जात और तीसरा वर्ग—भारतीय समाज को बाँटनेवाले इन तीनों कारणों का 1857 में अतिक्रमण हो गया था। चौथा यह संग्राम केवल मेरठ, दिल्ली, कानपुर और झाँसी तक सीमित नहीं था। इसकी लहरें पेशावर से कर्नाटक तक और कच्छ से कछार तक पहुँच गई थीं। इस संग्राम ने सारे भारत को जगाया। इसी संग्राम ने पहली बार आम लोगों में अखिल भारतीयता का भाव पैदा किया। उन्हें जात, मज़हब और वर्ग के बंधनों से ऊपर उठाया। राष्ट्र की जो सनातन चेतना शताब्दियों से हमारी परंपरा में जीवित थी, उसे 1857 ने प्राणवंत बनाया।

यहाँ मैं आपको 1857 के कुरुक्षेत्र में नहीं ले जा रहा हूँ। मैं आपको यह भी नहीं बताने जा रहा हूँ कि एक मुस्लिम बादशाह को किस तरह देश के समस्त हिंदुओं और अनेक राजा-महाराजाओं ने भारत का सम्राट घोषित किया था और देश के मुसलमानों ने रानी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे जैसे हिंदु योद्धाओं को मुज़ाहिद की उपाधि से नवाज़ा था। भारत के अमीर और ग़रीब, स्त्री और पुरुष, द्विज और शूद्र, किसान और जवान, ग्रामीण और शहरी—सबने मिलकर अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध बिगुल बजा दिया था। 1857 कोई मामूली विद्रोह नहीं था। यह संग्राम अंग्रेज़ का तख़्ता नहीं पलट पाया, यह ठीक है लेकिन इसने ही उसके तख़्ता-पलट की मज़बूत नींव रख दी थी। क्या किसी संग्राम को ग़दर और संघर्ष को ग़द्दारी इसीलिए कह देंगे कि वह तख़्ता-पलट नहीं कर सका? क्या हम किसी घटना पर ऐसे नाम जड़ देने के लिए स्वतंत्र हैं, जो उसे हमेशा के लिए बदनाम कर दे? भारत के लोगों ने कौन-सी ग़द्दारी की? क्या उन्होंने अंग्रेज़-भक्ति की कोई शपथ ली थी, जिसे 1857 में भंग कर दिया? नाम ग़लत रख देने से क्या काम भी ग़लत हो जाता है?

चर्चित पत्रकार वेदप्रताप वैदिक का जन्म 1944 में हुआ। इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार, पुरुषोत्तम दास टंडन पुरस्कार, हिंदी अकादमी आदि से पुरस्कृत हैं। संपर्क: ए-19, प्रेस एनक्लेव, नई दिल्ली 110017
मो. 9891711947

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1857 के संग्राम को ये ग़लत-सलत नाम अंग्रेज़ों ने ही दिए थे। जिन अंग्रेज़ अफ़सरों ने 1857 की घटनाओं को अपनी आँखों से देखा था या जो उनके भुक्तभोगी थे, उन्होंने अपना विवरण अपने ऊँचे अफ़सरों को भेजते समय इन शब्दों का प्रयोग किया था। लंदन के अख़बारों की नज़र में भी 1857 केवल ग़दर था। ब्रिटिश सरकार की नज़र में वह ग़दर और ग़द्दारी, दोनों था। अंग्रेज़ इतिहासकारों ने भी अपनी पुस्तकों के जो शीर्षक दिए, उनमें भी इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है। 1857 पर सबसे पहले लिखी गई जॉन काये की पुस्तक का शीर्षक था : *ए हिस्टरी ऑफ़ द सिपॉय वार इन इंडिया 1857-8*। जॉन काये के आकस्मिक निधन के बाद जॉर्ज मालेसन ने उसी पुस्तक के जो अगले खंड प्रकाशित किए, उनका नाम रख दिया, *हिस्टरी ऑफ़ द इंडियन म्यूटिनी*। काये ने जिसे युद्ध कहा था, उसे मालेसन ने म्यूटिनी बना दिया। यही शब्द म्यूटिलेट होता हुआ भारतीय इतिहासकारों की क़लम से भी चिपक गया। चाहे डॉ. रमेशचंद्र मजूमदार हों, डॉ. शशिभूषण चौधरी हों या डॉ. सुरेंद्रनाथ सेन हों, लगभग सभी भारतीय इतिहासकारों ने 1857 को भारत का स्वाधीनता-संग्राम कहने में कुछ-न-कुछ संकोच दिखाया है।

अंग्रेज़ों के प्रयाण के बाद भारत में से राजनैतिक उपनिवेशवाद का अंत तो हो गया, लेकिन बौद्धिक उपनिवेशवाद दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा है। 1857 की औपनिवेशिकता के अनेक निंदनीय अंश आज भी हमारी चेतना और व्यवहार के अभिन्न अंग बने हुए हैं। कुछ विलायती और कुछ भारतीय स्रोतों के आधार पर लिखी गई ताज़ातरीन किताब द *लास्ट मुग़ल* में भी विलियम डेलरिंपल ने अनेक गंभीर भूलें छोड़ दी हैं। उनके विश्लेषण और निष्कर्षों पर भी काये और मालेसन के भूत मँडराते हुए दिखाई पड़ते हैं।

अंग्रेज़ी भाषा के स्रोतों की मजबूरी तो कार्ल मार्क्स और विनायक दामोदर सावरकर के सामने भी थी लेकिन ये दो महापुरुष ऐसे हुए, जिन्हें औपनिवेशिक मनोवृत्ति जकड़ नहीं सकी। एक सज्जन जर्मन थे और दूसरे भारतीय! दोनों में से अंग्रेज़ कोई नहीं था और यह भी कह दूँ कि दोनों में से कोई भी बाक़ायदा इतिहासकार भी नहीं था। दोनों ही मंत्र-द्रष्टा थे। मार्क्स ने तो 1857 की घटनाओं पर उसी समय लिखा। *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून* में छपे अपने लेखों में मार्क्स ने ठोस आँकड़ों और तथ्यों के आधार पर सिद्ध किया कि अंग्रेज़ी अत्याचारों के कारण संपूर्ण भारत बारूद के ढेर पर बैठा हुआ था। मार्क्स ने साफ़-साफ़ लिखा कि 1857 भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम था। यही शीर्षक अपने सवा छह सौ पृष्ठों के ग्रंथ का विनायक दामोदर सावरकर ने दिया था।

1857 के ठीक 50 साल बाद और अब से ठीक एक सौ साल पहले 1907 में 24 वर्षीय सावरकर ने *1857 च्या स्वातंत्र्य समरांचा इतिहास* नामक ग्रंथ मराठी में लिखा। यह अमर ग्रंथ छपने के पहले ही प्रतिबंधित हो गया। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद यूरोप में छपा। यह ग्रंथ ग़दर पार्टी, आज़ाद हिंद फ़ौज और सशस्त्र क्रांतिकारियों की भगवद्गीता बन गया। मार्क्स और सावरकर की इस जुगलबंदी में एक और नाम जोड़ा जा सकता है। वह है—अर्नेस्ट जोंस का! जोंस एक लंदनवासी अंग्रेज़ था। लेखक और कवि! वह भी इतिहासकार नहीं था। यह अर्नेस्ट जोंस ही था कि जिसने ब्रिटिश साम्राज्य को शीर्षासन करवा दिया था। उसी ने लिखा था : "यह सत्य है कि ब्रिटिश साम्राज्य पर कभी सूर्य अस्त नहीं होता, लेकिन यह भी सत्य है कि उसके साम्राज्य में ख़ून की नदियाँ कभी नहीं सूखतीं। यदि आप मार्क्स, जोंस और सावरकर—इन तीनों की कृतियाँ पढ़ें तो आप द्रवित हुए बिना नहीं रहेंगे। इनकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचनाएँ इतिहास का इतिहास हैं और साहित्य का साहित्य हैं। वे इतिहास और साहित्य का अद्‌भुत समन्वय हैं। इसी प्रकार मिर्ज़ा असदुल्लाह ख़ाँ ग़ालिब की *दस्तंबू* (डायरी) और विष्णु भट्ट गोडशे का *माझा प्रवास* (यात्रा-संस्मरण) 1857 का आँखों देखा हाल उपस्थित करते हैं। उर्दू और मराठी की इन कृतियों में रजनीकांत गुप्ता कृत बाद की एक बाङ्ला कृति *सिपाही युद्धेर इतिहास* (1876) को भी जोड़ा जा सकता है। सावरकर को इस कृति से काफ़ी प्रेरणा मिली थी। समकालीन कृतियों में सर सैय्यद अहमद ख़ाँ की *अस्बाह-ए बग़ावत-ए हिंद* भी है लेकिन उसमें एक राजभक्त की चिकनी-चुपड़ी बातों के अलावा क्या है?

इसमें शक नहीं कि पिछले पचास वर्षों में अनेक इतिहासकारों ने उन्हीं अंग्रेज़ी स्रोतों को दुबारा खँगाला है और उनमें नए भारतीय स्रोतों को भी जोड़ा है। एरिक स्टोक्स, रजत राय, ताप्ती राय, गौतम चक्रवर्ती जैसे इतिहासकारों और पी.सी. जोशी जैसे विद्वानों ने 1857 की नई व्याख्याएँ की हैं। हिंदी और बाङ्ला की अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने इधर लोक-साहित्य के आधार पर 1857 के इतिहास को नए आयाम प्रदान किए हैं। इन नए अनुसंधानों ने मार्क्स, जोंस, सावरकर, ग़ालिब, गोडशे और गुप्ता की परंपरा को आगे बढ़ाया है। यह काम कुछ हद तक पं. सुंदरलाल और डॉ. रामविलास शर्मा पहले ही कर चुके थे। 1857 के भारतीय स्वाधीनता संग्राम से संबंधित लाखों पृष्ठों की सामग्री अब भी अछूती ही पड़ी है। उर्दू, फ़ारसी और हिंदी में ही नहीं, पंजाबी, बलूच, बाङ्ला, मराठी, गुजराती, ओड़िया, तेलुगु, कन्नड, तमिल, असमिया आदि भाषाओं में अब भी अनेक पंचायतों के बही-दस्तरे और तत्कालीन पत्र-व्यवहार, मुनादियाँ, किंवदंतियाँ, क़िस्से-कहानियाँ, कविताएँ, डायरियाँ, यात्रा-वृत्तांत आदि खोजे जा सकते हैं। अब तक स्थानीय बोलियों में भी बहुत कम अनुसंधान हुआ है। लोककथाएँ, लोकगीत, लोककलाएँ और लोकपरंपराएँ हमारे स्वाधीनता संग्राम की महान और प्रामाणिक स्रोत बन सकती हैं। शिष्ट साहित्य में हमें 1857 का दृष्टा-भाव जहाँ-तहाँ मिलता है, लेकिन लोक-साहित्य में हमें सृष्टा-भाव मिलेगा। लोक-साहित्य की रचना प्रायः उन लोगों ने की है, जिन्होंने सीधे स्वातंत्र्य-समर में खाँड़ा खड़काया है या जो सीधे स्वतंत्रता-सेनानियों से जुड़े रहे हैं। अभी सिर्फ़ डेढ़ सौ साल ही बीते हैं। इसके पहले कि हमारे प्रथम स्वाधीनता संग्राम के मूल सूचना-स्रोत बिलकुल ही सूख जाएँ, हमारे विश्वविद्यालयों, अकादमियों, शोध-संस्थानों और सरकारों को उनके दोहन के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए। जैसा उत्साह 1857 में डिजरैली और ब्रिटिश संसद ने जॉन काये के लिए और 1957 में मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद ने डॉ. सुरेंद्रनाथ सेन के लिए दिखाया था, आज वैसा ही उत्साह सैकड़ों शोधार्थियों के लिए उक्त संस्थाओं की ओर से दिखाया जाना चाहिए। यदि 1857 पर व्यापक और गहन शोध-कार्य हों तो जो नक़्श उभरेगा, वह भारत के लिए ही नहीं, उन सब राष्ट्रों के लिए भी लाभप्रद होगा, जो आज भी विदेशी वर्चस्व या सैन्य हस्तक्षेप से उत्पीड़ित हैं। वह अत्याचारी और अत्याचारग्रस्त, दोनों तरह के राष्ट्रों को सही दिशा दिखाएगा। अंतरराष्ट्रीय राजनीति के विद्यार्थी होने के नाते मैं अकसर सोचता हूँ कि यदि 1857 का विशद और सांगोपांग विश्लेषण दुनिया के सामने रहा होता तो शायद सोवियत संघ वह ग़लती नहीं करता जो उसने अफ़ग़ानिस्तान में की थी और जो आजकल अमेरिका इराक़ में कर रहा है।

यह खोज साहित्य और इतिहास के रिश्तों में भी नई चमक भर देगी। इतिहास-लेखन के सीधे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्रोत जब हाथ नहीं लगते तो पता चलता है कि स्वयं साहित्य इतिहास का कितना महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इतिहास और साहित्य की जुगलबंदी से कौन परिचित नहीं है? कभी इतिहास आगे चलता है तो कभी साहित्य! दोनों के हमक़दम होने के तो असंख्य उदाहरण हैं। 1857 का ज़माना उर्दू और फ़ारसी का ज़माना था। उस दौर के साहित्य में 1857 की अनुगूँज जमकर हुई थी। उस समय *पयामे-आज़ादी* और *दिल्ली उर्दू अख़बार* आम लोगों के दर्द के दर्पण बनकर उभरे। अतहर अब्बास रिज़वी के ग्रंथों से साहित्य और संग्राम की जुगलबंदी का एक आश्चर्यजनक नक़्शा हमारे सामने उभरता है।

1857 के समय हिंदी का तथाकथित शिष्ट साहित्य शैशवावस्था में था। भारतेंदु युग का कोई भी साहित्यकार वयस्कता भी प्राप्त नहीं कर सका था। स्वयं भारतेंदु 1857 में सात साल के थे। भारतेंदु युग के साहित्यकारों ने स्वयं भारतेंदु की तरह 'भारत दुर्दशा' का वर्णन करने में कोई कोताही नहीं की, लेकिन 1857 के बाद बने अत्यंत कठोर क़ानूनों के कारण न तो वे 1857 का महिमा-मंडन कर सके और न ही जनोत्थान का स्पष्ट आह्वान कर सके। उनकी मजबूरियाँ भी वही थीं, जो ग़ालिब और सर सैय्यद अहमद की थीं। अंग्रेज़ की कृपाकांक्षा और विरोध, ये दोनों तलवारें एक म्यान में कैसे रह सकती थीं? इसके बावजूद हिंदी के गद्य और पद्य में अनेक मर्मस्पर्शी उदाहरण मिलते हैं। साहित्य के राजपथ पर जैसे दृश्य दिखाई पड़ते हैं, उससे अधिक रोमांचक दृश्य उसके गली-कूचों में देखने को मिल जाते हैं। हिंदी साहित्य के स्रोतों से यह भी पता चलता है कि 1857 का कारण केवल गाय और सूअर की चर्बी के कारतूस नहीं थे और वह केवल दीन और धर्म का मामला भी नहीं था। यह मामला 1757 में हुए प्लासी के युद्ध से लेकर 1857 तक—यानी पूरे सौ साल के सर्वांगीण शोषण का मामला था। अंग्रेज़ों के विरुद्ध बग़ावत की बत्ती 10 मई के बहुत पहले से सुलग रही थी। इसका प्रमाण महाकवि भूषण की ये पंक्तियाँ हैं :

करनाट हबस फिरंग हूँ विलायत
बलख रूम अरितिय छतिया दलति है
पेसकसें भेजति विलायत पुर्तगाल
सुनि के सहमि जात कर्नाटक थली है।
गोंडवानों तिलंगानों फ़िरंगानों करनाट
रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुरपति
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति हैं।

पद्माकर तो प्रेम और श्रृंगार के कवि थे लेकिन ज़रा देखिए कि फिरंगियों के विरुद्ध वे भी कैसे दहाड़ रहे थे। उन्होंने दौलतराव सिंधिया को अंग्रेज़ों से लड़ने के लिए ललकारा :

मीनागढ़ बंबई सुमंद मंदराज, बंग,
बंदर को बंद करि बंदर बसावेगो।
कहे पद्माकर कसकि काश्मीर हूँ को,
पिंजरसों घेरि के कलिंजर छुड़ावेगो॥
बांका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौ,
साजि दल झपटि फिरंगनि दबावैगो।
दिल्ली दहपट्टि पटना हुँ को झपट्टि करि,
कबहुंक लता कलकत्ता को उड़ावैगो॥

ज़ाहिर है कि हिंदी की यह आक्रामक मुद्रा उर्दू या फ़ारसी में दिखाई नहीं देती लेकिन उनकी मर्मांतक बेबसी को होंठों पर लाने में हिंदी भी पीछे नहीं है। ग्वाल कवि अपने वर्षा वर्णन में भारत के 'भूपति उमंगी कामदेव जोरजंगी' राजाओं के सामने मुजरा करनेवाले 'पावस फ़िरंगी' अंग्रेज़ों का ज़िक्र करते हैं। इन्हीं चरणचाटू अंग्रेज़ों के राज से तंग आकर कवि घासीराम क्या कहते हैं :

छाड़ कै फिरंगन को राज में सुधर्म काज,
जहाँ होत पुण्य आज चलो वह देश को।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाबा दीनदयाल गिरि लिखते हैं :

पराधीनता दुख महा सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषै कनक पींजरे दीन॥

यह ठीक है कि दिल्ली और उसके आस-पास 1857 के समय की खड़ी बोली के उल्लेखनीय उदाहरण कम ही मिलते हैं, जैसे कि नफ़ीस उर्दू में मिलते हैं, लेकिन राजस्थान, बिहार, मालवा आदि क्षेत्रों के साहित्य में स्वातंत्र्य की तलवार वैसी ही झनझना रही थी, जैसी कि वह मेरठ, कानपुर और दिल्ली की बस्तियों में लपलपा रही थी। महान स्वातंत्र्य-योद्धा कुँवरसिंह की प्रशस्ति में लिखी रामकवि का यह कवित्त देखिए :

जैसे मृगराज गजराजन के झुँडन पै
प्रबल प्रचंड सुंड खंडत उदंड है।
जैसे बाजि लपकि लपेट के लवान दल
मलमल डारत प्रचारत विहंड है॥
कहें रामकवि जैसे गरुड़ गरव गहि
अहि-कुल दंडि दंडि मेटत घमंड है।
तैसे ही कुँवरसिंह कीरति अमर मंडि फौज
फिरंगानी की करी सुखंड खंड है॥

कुँवरसिंह के उत्तराधिकारी अमरसिंह के बारे में शिव कविराय ने लिखा है :

कसि के तुरंग तंग चढ़्यौ जब जंग पर
अंग अंग आनंद उमंग रंग भरिगौ
सनमुख समर विलोकि रनधीर धीर (वीर)
फौज फिरंगाने की समेटि सोक तरिगौ
कहे शिव कवि डाँटि डाँट कपतानन कूँ
काटि काटि काकड़ी कुम्हैड़ो सौ निकरिगौ
हाथ मोचि हाकिम कहत साह लंदन सों
हाय-हाय आफत अमरसिंह करिगौ।

इसी तरह के अनेक लोमहर्षक उदाहरण डॉ. भगवानदास माहौर ने अपने विलक्षण शोध-ग्रंथ '1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव' में दिए हैं। 1857 के समय दर्जनों राजस्थानी कवियों ने भारतीय राजाओं को अंग्रेज़ों के विरुद्ध खड्गहस्त होने के लिए प्रेरित किया। प्रसिद्ध कवि मीसण सूरजमल ने लिखा :

सीह न बाजौ ठाकुराँ, दीन गुजारौ दीह।
हाथल पाड़े हाथियाँ, सो भड़ बाजै सीह॥

(ओ राजाओं, अब तुम्हें शेर कहलाने का अधिकार नहीं रहा। अब तुम विदेशियों की दया पर दिन गुज़ार रहे हो। शेर तो वह कहलाता है जो थप्पड़ मारकर हाथी को भी ढेर कर देता है।)

राजस्थान का डिंगल-साहित्य और मालवा के लोकगीत ऐसी ही तेज़-तर्रार बातों से भरे पड़े हैं। बैंसवाड़ी, मालवी, ब्रजभाषा और पंजाबी आदि बोलियाँ अपनी मिठास के लिए जानी जाती हैं लेकिन स्वातंत्र्य-समर के दौरान आप उन्हें तेज़ाब उगलते हुए पाएँगे। 1857 से संबंधित ऐसी असंख्य रचनाओं को पढ़ने और सुनने का मौक़ा मुझे मिला है। उन्हें आज यहाँ दोहराना असंभव है, लेकिन मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि समस्त भारतीय भाषाओं और बोलियों में उपलब्ध 1857 के संदर्भों को एकत्रित करने का व्यापक अभियान चलाया जाए तो मुझे विश्वास है कि इतिहासकारों को नई दिशा मिलेगी। वे शायद इस अकाट्य निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे कि 1857 का स्वातंत्र्य-संग्राम केवल बहादुरशाह, तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई और अवध के नवाबों जैसे सामंतों के निजी स्वार्थों की लड़ाई नहीं था बल्कि संपूर्ण भारत की राष्ट्रीय आकांक्षा का विस्फोट था। हमारे इतिहासकारों और भावी भारत के निर्माताओं को यह पता चलेगा कि 1857 का स्वातंत्र्य-संग्राम हमारे लिए कौन-सी कार्य सूची छोड़ गया है? शोषणमुक्त समाज, असांप्रदायिक राजनीति और जातिभेद रहित भारत की उद्भावना करने वाला 1857 आज भी हमारे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए प्रेरणा का प्रबल स्रोत है। अपनी जातीय स्मृति को सुरक्षित रखने और उसे अपने भविष्य का प्रकाश-स्तंभ बनाने में साहित्य अद्वितीय भूमिका निभा सकता है।

अब तक हुए अनुसंधानों से तो लगता है कि 1857 ने लगभग 50 साल तक हिंदी साहित्य को सहमाए रखा। भूषण, पद्माकर, रामकवि, कवि शिवराय, सूरजमल जैसी वाणी अगले लगभग पाँच दशकों तक सुनने को ही नहीं मिली। यहाँ भारतेंदु की :

कठिन सिपाही द्रोह अनल जा जनबल नासी।
जिन भय सिर न उठाय सकत कहू भारतवासी॥

या 'ब्रिटिश सुशासित भूमि में आनंद उमगे गात' जैसी रचनाओं और प्रेमधन, प्रताप नारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक जैसे अन्य साहित्यकारों की रचनाओं की मीमांसा करना मुझे ज़रूरी नहीं लगता। हिंदी के अनेक प्रसिद्ध समालोचकों ने यह काम पहले ही भली-भाँति कर रखा है। यहाँ केवल दो साहित्यकारों का उल्लेख करना ज़रूरी है। एक पं. बालकृष्ण भट्ट, जो भारतेंदु से सात साल बड़े थे और दूसरे बालमुकुंद गुप्त, जो भारतेंदु से 15 साल छोटे थे। इन दोनों साहित्यकारों ने अपना तेवर वही रखा, जो 1857 का था। उनकी रचनाओं में वही निर्भय निनाद सुनाई पड़ता है, जो उनसे पहले अर्नेस्ट जोंस और उनके बाद सावरकर की रचनाओं में था। 1882 के बालकृष्ण भट्ट ने लिखा : ''हमारा कथन है कि राजभक्ति और प्रजा का हित दोनों का साथ कैसे निभ सकता है? जैसे हँसना और गाल फुलाना, बहुरी चबाना और शहनाई बजाना एक संग नहीं हो सकता, ऐसे यह भी असंभव है।'' राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद और सर सय्यद अहमद खाँ जैसे लोगों पर कटाक्ष करते हुए भट्ट जी लिखते हैं : ''बनारस, अलीगढ़ आदि स्थानों में दो-एक ऐसे महापुरुष कुलबोरन उपज खड़े हुए हैं जो स्वार्थ लंपटता के आगे देश के हित पर कुल्हाड़ा चला रहे हैं।'' उन्हें चेतावनी देते हुए भट्ट जी कहते हैं कि वे 'राजभक्ति और प्रजाहित' में से किसी एक को चुनें। ऐसी ही निर्ममता बालमुकुंद गुप्त ने अपनी कविताओं और लेखों में दिखाई है। गुप्त जी ने अपने 'शिवशंभु के चिट्ठे' में लॉर्ड कर्जन की जैसी धुनाई की है, वैसी धुनाई स्वतंत्र भारत के साहित्यकार और पत्रकार भी अपने समसामयिक शासकों की नहीं कर पाते। क्या आपातकाल में किसी ने बालमुकुंद गुप्त—जैसे लेख लिखने की हिम्मत दिखाई?

बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुंद गुप्त जैसे साहित्यकारों को किसी सरकारी वज़ीफ़े या पेंशन या सम्मान या ओहदे की हाजत नहीं थी। उनके दिलों में 1857 के संग्राम की लपटें धू-धू करके जल रही थीं। बालमुकुंद गुप्त ने लॉर्ड कर्जन पर प्रहार करते हुए (11 अप्रैल 1903) लिखा : ''आप जब से भारत पधारे हैं, माई लॉर्ड बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कुछ करने योग्य काम किया है, ख़ाली अपना ख़याल ही पूरा किया है या यहाँ की प्रजा के लिए कुछ कर्तव्य पालन किया।... आप बार-बार अपने दो अति तुमतराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मेमोरियल हॉल और दूसरा दिल्ली दरबार। पर ज़रा सोचिए तो यह दोनों काम शो हुए या ड्यूटी?'' गुप्त जी ने 21 अक्तूबर 1905 को लिखा : ''भारतवासियों के जी में यह बात जम गई कि अंग्रेज़ों से भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना-गाना वृथा है। दुबले की वह नहीं सुनते।'' गुप्त जी ने अपनी कविताओं में सशस्त्र क्रांति का भी आह्वान किया। भट्ट जी और गुप्त जी, दोनों को ही सरकार और पत्र-मालिकों का कोपभाजन बनना पड़ा। अख़बार बंद करने पड़े, नौकरियाँ छोड़नी पड़ीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुंद गुप्त को आप अगर केवल पत्रकार मानें और साहित्यकार न मानें तो और बात है लेकिन हिंदी पत्रकारिता के बिना हिंदी साहित्य की हैसियत ही क्या रह जाती है ? हिंदी साहित्य ही क्यों, हिंदी पत्रकारिता के इतिहास के बिना क्या भारत की स्वाधीनता का इतिहास लिखा जा सकता है ? स्वाधीनता-पूर्व के वर्षों में हम ऐसे कितने साहित्यकार देखते हैं, जो पत्रकार न रहे हों ? यह भेद आजकल के साहित्यकारों और पत्रकारों पर कुछ हद तक लागू किया जा सकता है, लेकिन स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में लोग पत्रकार, साहित्यकार और स्वाधीनता सेनानी—इन तीनों की भूमिका एक साथ निभाते थे। इस दृष्टि से हिंदी पत्रकारिता का इतिहास अत्यंत गौरवशाली है। भट्ट जी के 'हिंदी प्रदीप' और गुप्त जी के 'भारतमित्र' और 'हिंदी बंगवासी' के काफ़ी पहले से हिंदी पत्रकारिता ने स्वाधीनता की रणभेरी बजा दी थी। हिंदी का पहला पत्र 30 मई 1826 को निकला। कलकत्ता से प्रकाशित इस पत्र का प्रारंभ पं. जुगलकिशोर शुक्ल ने 'हिंदुस्तानियों के हित' के लिए किया था। डेढ़ साल के पहले ही वह बंद हो गया। 1854 में हिंदी का पहला दैनिक *समाचार सुधावर्षण* अंग्रेज़ सरकार की नाक के नीचे यानी कलकत्ते से ही निकला। इस पत्र के संपादक श्यामसुंदर सेन ने लगातार जन-असंतोष की ख़बरें खुलकर छापीं। 1857 की सशस्त्र मुठभेड़ों की ख़बर छापने में भी इस अख़बार ने कोई कोताही नहीं की।

मेरठ की घटनाओं के बाद ठीक 16वें दिन 26 मई 1857 के *समाचार सुधावर्षण* ने लिखा : ''साम्राज्य में जब संकट पड़ा जब गवर्नर ने अनेक वायदे किए, लेकिन विद्रोही सेना का उन वायदों पर कोई विश्वास नहीं। वे युद्ध को समाप्त करने के पक्ष में नहीं। सच्ची बात तो यह है कि युद्ध में दम आ रहा है और अनेक क्षेत्रों की जनता सेना में मिल रही है।'' यहाँ इस अख़बार ने 1857 को बग़ावत नहीं, युद्ध कहा है और वह भी जनता का युद्ध! जून 1857 के अंकों की ख़बरों और टिप्पणियों से सरकार इतनी भयभीत हो गई कि उसने संपादक श्यामसुंदर सेन को अदालत में घसीट लिया। सेन बरी हुए और देश में चल रहे लोकयुद्ध की ख़बरें बराबर छापते रहे। उनकी ख़बरों से पता चलता है कि स्वातंत्र्य-संग्राम डेढ़-दो साल तक चलता रहा, न कि लॉर्ड केनिंग के अनुसार : ''1 जुलाई 1958 को 'ग़दर' समाप्त घोषित हो गया।'' *समाचार सुधावर्षण* की तरह 1859 में इंदौर से शुरू हुआ *मालवा समाचार* भी जन-संघर्ष की ख़बरें छापता रहा।

1857 के स्वाधीनता संग्राम के समय, उसके पहले और बाद में हिंदी पत्रकारिता की जो भूमिका रही, उस पर *हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम* के प्रथम खंड से मोटी-मोटी जानकारी तो मिलती है लेकिन अब से 31 साल पहले जब मैंने इस ग्रंथ की योजना बनाई तो मेरे सामने लक्ष्य 1857 नहीं था। अब ज़रूरी है कि 1857 की दृष्टि से ही हिंदी की पुरानी पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ा जाए और उन पर व्यवस्थित शोध किया जाए। मुझे पूरा विश्वास है कि यह शोध इतिहासकारों के लिए जानकारी का नया ख़ज़ाना खोल देगी।

1857 को साहित्य में वही स्थान मिलना चाहिए, जो रामायण और महाभारत के प्रसंगों को मिला है। 1857 का कथानक रामायण और महाभारत के कथानकों से किसी तरह कम नहीं है। उसके पात्र, उनका अंतर्द्वंद्व और उनके उतार-चढ़ाव किसी भी महान् और अमर साहित्यिक कृति का विषय हो सकते हैं। 1857 पर लिखी गई कोई भी महान् कृति भारतीय इतिहास का विलक्षण स्रोत बन सकती है और भारत के भविष्य को तय करने में अग्रणी भूमिका निभा सकती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुरुषोत्तम अग्रवाल

एक रासो - लक्ष्मीबाई का

1857 की घटनाओं को कई नज़रियों से देखा गया है। इन घटनाओं के समकालीन टिप्पणीकार कार्ल मार्क्स की दृष्टि में केवल 'सिपाही विद्रोह' न होकर वह "एक राष्ट्रीय विद्रोह की घटनाएँ थीं और सिपाही इस राष्ट्रीय विद्रोह के औज़ार थे।" यह बात कार्ल मार्क्स ने 28 जुलाई 1857 को लिखी थी। (मार्क्स, एंगेल्स, 'दी फ़र्स्ट इंडियन वार ऑफ़ इंडिपेंडेंस 1857-59', मास्को, 1975, पृ. 44) सावरकर ने 1857 की अर्द्धशताब्दी पर लिखी अपनी पुस्तक का शीर्षक ही रखा— *1857-दी इंडियन वार ऑफ़ इंडिपेंडेंस*।

लेकिन यह रोचक है कि 1922 में प्रकाशित *इंडिया इन ट्रांजिशन* के मार्क्सवादी लेखक एम.एन. राय का 1857 विषयक मूल्यांकन मार्क्स के मूल्यांकन से एकदम विपरीत था, उनके अनुसार यह विद्रोह "सामाजिक प्रतिक्रिया की प्रचंड भावना से उत्पन्न हुआ था। यह विद्रोह असल में अंग्रेज़ी सरकार के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि उस सरकार द्वारा लाए गए प्रगतिशील सामाजिक-राजनैतिक विचारों के विरुद्ध था।" (स्निग्धा सेन द्वारा उद्धृत, 'दी हिस्टीरियोग्राफ़ी ऑफ़ दी इंडियन रिवोल्ट ऑफ़ 1857', कोलकाता 1992, पृ. 201)

यह भी रोचक है कि 1857 के डेढ़ सौ साल पूरे होने पर हिंदी के कुछ वामपंथी लेखक 1857 के मूल्यांकन के बारे में कार्ल मार्क्स की तुलना में एम.एन. रॉय के अधिक निकट हैं। सच तो यह है कि पिछले कुछ महीनों में प्रकाशित अनेक विद्वतापूर्ण निबंध एम.एन. रॉय के उपरोक्त कथन का भाष्य हैं। ख़ैर!

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन ने अपने विकास और विस्तार में 1857 के नायकों और नायिकाओं से प्रेरणा ली, यह सच है। स्वाभाविक ही था कि उस विद्रोह के शताब्दी वर्ष के अवसर पर स्वाधीन भारत की सरकार ने 1857 के विद्रोह का उपयुक्त रूप से वस्तुनिष्ठ इतिहास प्रकाशित करने का निश्चय किया। 1957 में प्रकाशित ग्रंथ *अठारह सौ सत्तावन* के आमुख में तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना आज़ाद ने कोट किया : "यों तो 1857 के बारे में सैकड़ों किताबें लिखी गई हैं, लेकिन मुझे लगता है कि 1857 का

सुपरिचित आलोचक पुरुषोत्तम अग्रवाल का जन्म 1955 में हुआ। इनकी आलोचना की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। संपर्क : 168-ए, उत्तराखंड, जे.एन.यू., नई दिल्ली 110067
फ़ोन : 26164908

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वस्तुनिष्ठ इतिहास लिखा जाना अभी बाक़ी है। अब तक लिखी गई किताबों में से लगभग सभी ब्रिटिश नज़रिए से लिखी गई हैं।''

और, 'ब्रिटिश नज़रिए' के बरक्स 'भारतीय नज़रिए' से लिखी गई इस पुस्तक *1857* के लेखक सुरेंद्रनाथ सेन का निष्कर्ष यह था : ''धर्म के नाम पर आरंभ हुआ विद्रोह स्वाधीनता संग्राम में बदल गया, इसमें संदेह नहीं कि विद्रोही विदेशी शासन के स्थान पर पुरानी व्यवस्था को वापस करना चाहते थे, जिसका प्रतिनिधि दिल्ली का बादशाह था।'' लेकिन इस स्वाधीनता संग्राम में विद्रोही यदि सफल हो जाते तो? इतिहासकार का दो टूक निष्कर्ष है, ''वे समय का प्रवाह पलट देते। नए सुधारों को समाप्त कर देते।...वे प्रतिक्रांति चाहते थे।'' (सुरेंद्रनाथ सेन, 1857, दिल्ली, 1957, पृ. 411 और 412-3)

यह तो हुई स्वाधीन भारत के 'नज़रिए' से 1857 को देखने की बात। पाकिस्तान के 'नज़रिए' से भारत में ब्रिटिश राज का रिव्यू कर रहे एस.एम. बर्क और सलीम अल-दीन क़ुरैशी का निष्कर्ष भी ऐसा ही है, ''बीसवीं सदी के कुछ भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा 1857 को स्वाधीनता संग्राम कहना सिवाय बेहूदगी के कुछ नहीं है। अगर यह सचमुच स्वाधीनता संग्राम होता तो क्या अंग्रेज़ भारत में टिक पाते?'' ('ब्रिटिश राज इन इंडिया : ए हिस्टॉरिकल रिव्यू', कराची, 1995)

यानी स्वाधीनता संग्राम वही हो सकता है जो सफल हो! असफलता प्रमाणित करती है कि 1857 राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम या विद्रोह नहीं था। 1857 के मूल्यांकन संबंधी बहस में हिस्सा लेने की अपनी कोई इच्छा फ़िलहाल नहीं है। केवल इतना रेखांकित करें कि 'नज़रिया' चाहे 'ब्रिटिश' हो चाहे 'भारतीय' या 'पाकिस्तानी', निष्कर्ष लगभग एक से हैं। कारण यह है कि नज़रियों के फ़र्क़ के बावजूद इतिहास लेखन के उपकरण, सरोकार और स्रोत भी एक से हैं। इन निष्कर्षों पर बात फिर कभी, फ़िलहाल सवाल यह है कि 1857 के समकालीन स्रोत क्या कोई और भी हो सकते हैं? आधुनिक राष्ट्रवाद के 'नैरेटिव' में आने के पहले क्या भारतीय लोकचित्त 1857 को याद करता ही नहीं था? परखता ही नहीं था?

भारतीय लोकचित्त में यदि 1857 की कोई जगह न होती, यदि कुँवर सिंह और लक्ष्मीबाई के लिए लोक स्मृति में कोई स्थान न होता तो मध्यवर्ग द्वारा गढ़े गए राष्ट्रीय आत्मवृत्तांत की कल्पना में 1857 को जगह ही क्यों मिलती? यह एक तथ्य है कि जब आधुनिक भारतीय मध्यवर्ग 1857 की स्मृतियों से अपना दामन बचा रहा था, तब भी लोकचित्त 1857 को याद रखे हुए था। जब सर सैयद अहमद बग़ावत का सबब यह बता रहे थे कि कंपनी सरकार ने 'दो शत्रु नस्लों—हिंदू और मुसलमान की साझा पलटनें बनाकर उनके बीच एकता पनपाने की बेवक़ूफ़ी की' (देखें बर्क और क़ुरैशी, पृ. 46), जब भारतेंदु मंडल के लेखक 1857 के बलवे का कलंक प्रतिष्ठित हिंदू मुसलमान पर लगाने को बुद्धिहीनता का प्रमाण बता रहे थे, तब क्या व्यापक लोकचित्त भी 1857 को कलंक की तरह याद कर रहा था?

सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रसिद्ध कविता 'झाँसी की रानी' बीसवीं सदी के दूसरे दशक में लिखी गई। तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम अपना पूर्वाभास 1857 में देख रहा था। बुंदेलखंड का प्रसिद्ध लोकगीत 'झाँसी की रानी' कविता में प्रतिध्वनित हो रहा था। *सिगरे सिपहियन को पेड़ा जलेबी, आप चबाई गुड़ धानी रे / ख़ूब लड़ी मरदानी वो तो झाँसी वाली रानी रे।* सुभद्रा जी की कविता है : *बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी / ख़ूब लड़ी मरदानी वो तो झाँसी वाली रानी थी।*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुंदेले हरबोलों के ये बोल उस समय गूँज रहे थे, जिस समय हिंदी साहित्य का आधुनिक काल आरंभ हो रहा था—लेकिन इस आधुनिक काल का साहित्यिक कैनन 1857 की स्मृतियों से कतरा रहा था। इस समय भी और इस समय का इतिहास लिखते समय भी यह मान लिया गया था कि 1857 हिंदी क्षेत्र के लोक गीतों तक ही सीमित रह गया था। कारण चाहे भय हो, चाहे 1857 का सैद्धांतिक नकार—लेकिन हिंदी साहित्य के भारतेंदु युग में 1857 की गूँजती हुई अनुपस्थिति ऐतिहासिक सच्चाई है।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में, स्वाभाविक रूप से, 1857 की एक नायिका रानी लक्ष्मीबाई का कोई उल्लेख नहीं है। रासो लिखने का सिलसिला, ऐसा मान लिया गया कि सदियों पहले वीरगाथाकाल के साथ समाप्त हो गया। उसके बाद कोई रासो लिखा गया तो वह उल्लेखनीय कैसे हो सकता है? रासो का संबंध लक्ष्मीबाई से हो तो वह हिंदी साहित्य के कैनन के अनुकूल कैसे हो सकता है?

शायद इसीलिए...हिंदी साहित्य के इतिहास के ग्रंथों में न तो कल्यान सिंह कुड़रा क़ानूनगो का कोई जिक्र है और न उनके लक्ष्मीबाई रासो का। नहीं यह उतना अनुपलब्ध भी नहीं था। जो प्रति मेरे पास है, उसका प्रकाशन वर्ष 1953 है, लेकिन इस रासो की रचना 1869 से पहले हुई थी। 1857 के केवल बारह वर्ष के भीतर भीतर!

प्रकाशित प्रति में दी गई पुष्पिका इस प्रकार है : ''इति झाँसी कौ राइसौ बाई की लराई कौ संपूरन। मिती भादो बदी 4 गुररू संवत् 1926 मुकाम दलीप नगर लिख्याँस प्रधान जुगलकिशोर कुड़रा पोथी मजकूर की घरू।''

स्पष्ट है कि जुगलकिशोर कुड़रा की यह घरू पोथी संवत् 1926 (1869) में तैयार की गई। ये रासोकार कल्यान सिंह के ख़ानदान से थे—और तत्कालीन दतिया रियासत में 'वकील' के पद पर थे। इस रासो का प्रकाशन सहयोगी प्रकाशन मंदिर, दतिया से 1953 में हुआ। प्रकाशन सूचना के अनुसार 'संग्रहकर्ता' हैं श्री शिवचरण दीक्षित और संपादक हैं हरिमोहनलाल श्रीवास्तव। अपने वक्तव्य में श्रीवास्तव जी कहते हैं : ''वर्णन की निष्पक्षता भी सिद्ध है, क्योंकि झाँसी के रायसौ के रचयिता कल्यान कवि झाँसी दरबार के आश्रित न थे। उनके विषय में जितना थोड़ा ज्ञात हो सका है उसके अनुसार वे दलीपनगर (दतिया) के कायस्थ थे और कानीगो (क़ानूनगो) के पद पर आसीन थे। एक विशिष्ट साहस का परिचय देते हुए शुद्ध देश प्रेम की भावना से प्रेरित होकर इस कवि ने वीरांगना लक्ष्मीबाई को श्रद्धांजलि भेंट की है। दतिया के महाराज विजय बहादुर की अंग्रेज़ भक्ति इतिहास से सिद्ध है। ऐसे नरेश के राज्य में बसकर महारानी लक्ष्मीबाई के रायसौ का निर्माण करना कवि की निर्भीकता और उसके बड़े प्रभाव का ज्वलंत प्रमाण है।''

उपरोक्त को पढ़ते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि कम-से-कम बुंदेलखंड में विद्रोह न तो उच्च वर्गों तक सीमित था न उच्च जातियों तक। देवा, जालौन और कुनार तहसीलों के तहसीलदारों ने अगस्त-सितंबर 1858 में इन तहसीलों के गाँवों के 'बाग़ियों' और 'वफ़ादारों' की सूचियाँ तैयार की थीं। इनके अनुसार बाग़ियों में कुरमी, काछी, सेंगर, चमार और बनिया जातियों के बहुतायत लोग शामिल थे। अधिकतम गाँवों के बारे में तहसीलदारों का रिमार्क है : ''सभी ने या ज़्यादातर ने बाग़ियों का सशस्त्र रूप से साथ दिया।'' (ताप्ती रॉय, 'दी पॉलिटिक्स ऑफ़ अ पॉपुलर अपराइजिंग : बुंदेलखंड इन 1857'—(परिशिष्ट) दिल्ली, 1994, पृ. 250-4)

बहुत-से लोगों को लगता है कि ''1857 में नैतिकता का सवाल ही नहीं था, ज़्यादतियाँ दोनों तरफ़ से हुईं।'' बात ठीक ही है, लेकिन लोकतंत्र में सवाल युद्ध के दौरान की नैतिकता का ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं, 'राजा और प्रजा'; कंपनी सरकार और देशी राजाओं के बीच नैतिकता का भी था। कल्यान सिंह क़ानूनगो जैसे रासोकार हों, या लोकगीतों के अनाम रचयिता—वे 1857 को जिस 'नज़रिए' से देख रहे थे, वह आधुनिक राष्ट्रवाद का नज़रिया हो न हो, स्वाभाविक देश प्रेम का नज़रिया अवश्य था। रासो के आरंभ में ही कल्यान सिंह कहते हैं :

छल बल सों झाँसी लई, गंगाधर की नार
ताकौ अब आगे कहत भलीभाँति व्योहार।

रासो होने के नाते स्वाभाविक ही है कि कवि का बल युद्ध वर्णन और लक्ष्मीबाई के पराक्रम पर है। असल में, रासो लक्ष्मीबाई के दो युद्धों का वर्णन करता है। ओरछा के दीवान नत्थे खाँ के विरुद्ध युद्ध में उन्हें जीत मिली और अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध की कथा हम जानते ही हैं। यह और बात है कि जीत से कहीं अधिक मार्मिक काव्यक्षण था—पराजय का क्षण। और उस आसन्न पराजय के सामने लक्ष्मीबाई की निराशा जितनी स्वाभाविक है, उतनी ही मार्मिक है निराशा के कर्तव्य के प्रति उनकी निष्ठा! पराजय होनी है और पराजय का अर्थ है—पराधीनता या मृत्यु। कल्यान सिंह उस मार्मिक पल को शब्दों में रचते हैं, जब लक्ष्मीबाई आख़िरी लड़ाई के लिए चलते समय अपना चुनाव करती हैं। कल्यान सिंह की लक्ष्मीबाई को इस समय द्रौपदी याद आती है, और द्रौपदी को कष्ट से उबारने वाले कृष्ण के साथ-साथ रघुवीर याद आते हैं :

छोड़ तन आसा माल पुलक निरासा कर
वासा के विलासा त्याग मन में विचारिए।
करियो त्यारी अस्त्र बाँधौ रन झारी
चलबे की अब त्यारी को तुरंगहू समारिए॥
जैसे महाकष्ट तैं उबारी पंडु नारी प्रभु
मोए अधिकारी जान अरज उर धारिए॥
धन कौ न छोभ तन कौ न लोभ मो कि
ए हो रघुवीर मेरी लाज न बिगारिए॥

लक्ष्मीबाई परास्त हुईं। लेकिन जहाँ तक 'लाज न बिगारते' का सवाल है; जहाँ तक उनके स्वदेश-प्रेम, पराक्रम और मानवीय गुणों को 'सँभारने' का सवाल है; उनके प्रभु भी कसौटी पर खरे उतरे और बुंदेलखंड के लोग भी। वे चाहे अनाम हरबोले गायक हों, चाहे ग्वालियर के रामानंदी साधु गंगादास हों और चाहे दतिया के कायस्थ कुलोद्भव कवि कल्यान सिंह।

1857 की स्मृति के इन स्रोतों पर थोड़ा व्यवस्थित ध्यान दिया जाए तो शायद विभिन्न 'नज़रियों' से किए गए अध्ययनों की हैरतअंगेज़, दिलचस्प समानता से आगे जाकर हम 1857 का नया, अधिक विश्वसनीय पाठ गढ़ सकें—और शायद भारत के सामाजिक इतिहास और उसमें ब्रिटिश हस्तक्षेप के परिणामों का भी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संग्राम के लोक-स्वर

छोटानागपुरक हाल

छोटानागपुरक हाल, अठारह सौ सत्तावन साल
खलू मुंडा, कोल्ह, बउरावल ए सजनी
गंवागांह मंत्र टिकावल, ए सजनी।
ढाल, धनुस, तीर असि धरी बनी वीर
मत बाँधी दल अधिकावल ए सजनी
गंवागाड मंत्र टिकावल, ए सजनी।
सजन हतकारी भटल प्रबल अरि
गृह परे अनल लगावल ए सजनी
गंवागांइ मंत्र टिकावल।
सुनहु लरका खंड कहे ब्रजुप्रचंड
नागपुरी छंद गीत गावल ए सजनी
गंवागांइ मंत्र टिकावल।

(1857 में मुंडा और कोल जनजातियों की वीरता का बखान करती लोक-कवि बटेश्वर की रचना।)

खूब लड़ी मरदानी

खूब लड़ी मरदानी, अरे झाँसीवाली रानी
बुरजन-बुरजन तोपें लगाई दईं
गोला चलाए अस्मानी
अरे झाँसीवाली रानी, खूब लड़ी मरदानी।
सगरे सिपहियों को पेड़ा जलेबी
आपने चबाई गुड़-धानी
अरे झाँसीवाली रानी, खूब लड़ी मरदानी।
छोड़ मोर्चा लश्कर को भागी
ढुंढेहूँ मिलै नहीं पानी
अरे झाँसीवाली रानी, खूब लड़ी मरदानी।

(बुंदेलखंड में प्रचलित लोक रचना जिससे सुभद्रा कुमारी चौहान की रचना 'झाँसी की रानी' प्रेरित थी।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैनूँ सुपना आया

सुत्ती-सुत्ती नूँ भैणां वे मैनूँ सुपना आया
बैठड़ी अनमोल गोरी सीस गुंदाया
कत्तदी-कत्तदी भैणां नी मेरी चुंहदी हंलवीं
भैणा मैनूँ देहो बधाइयाँ जानी दिल्ली मलनी
कत्तदी-कत्तदी भैणां नी चूँहदी घुट्टी
भैणां मैनूँ देहो बधाइयाँ राँझे दिल्ली लूटी।

(पंजाबी लोकगीत का भावार्थ है : मेरे राँझे ने 1857 में दिल्ली लूट ली।)

राजन में राजा महाराजा बेनीमाधव

चंडिका के चेले वैस लड़त हैं अकेले फौजें
आया लीन घेर गोला खूब ही बजायौ है
मारे जनरैला और कंडेलान को कैद कीन्हों
मारे कपतान गोरा भेंट ही चढ़ायों है
राजन में राजा महाराजा बेनीमाधव बक्ष
लड़ी है लड़ाई अंग्रेज चढ़ि आयो है
कहत 'कवि ज्वालाराय' राजन को काम कीन्हो
बिना अन्न पानी गोला खूब ही चढ़ायो है।

(1857 के संग्राम में बेगम हजरत महल के विश्वस्त सहयोगी योद्धा राजा बेनीमाधव की प्रशस्ति में रचित कवि ज्वाला राय की रचना।)

पाप भरी नदिया उमड़ी

अंग्रेज़ का ज़ुल्म अपार भयो जब, पाप भरी नदिया उमड़ी
उठ तोड़ ग़ुलामी के बंधन को चहुँ ओर यही ललकार मची
कोनो विधि राज विदेशी मिटै, जनता नित मारण देख रही
सन् लाग अठारह सौ सत्तावन, वीरों की तेग झनकार उठी
सन् सत्तावन जेहि दिन लगा, करवट बदले देश हमार
वीर सिपाही भारत वाले, म्यान से खींच लेहिन तलवार
काली पलटन बाग़ी हुईगे, रज में उठी भरहरा खाय
उठे सिपाही भारत वाले, जान की बाज़ी दिहिन लगाय
करब ग़ुलामी न गोरवन की चाहे, तन धज्जी-धज्जी उड़ि जाय।

(आल्हा छंद में बुंदेली की लोक रचना।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शंभुनाथ

1857 : उपनिवेशवाद और आज़ादी

1857 भारत के राष्ट्रीय इतिहास की एक बड़ी घटना है। इसकी व्याख्या पहले भी कई तरह से की गई थी और आज भी की जा रही है। 1857 आज भी ज़ेरे बहस है। हम जानते हैं कि अतीत की जीवन शक्तियाँ हर जाति को अनुप्राणित करती रहती हैं। इसी तरह अतीत के प्रेत भी आसानी से पीछा नहीं छोड़ते। इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है, यदि आज 1857 के संदर्भ में पुनः इस तरह के निष्कर्ष निकाले जाते हैं कि यह विद्रोह सफल हो जाता तो भारत पिछड़ जाता, आधुनिकीकरण के रास्ते पर आगे बढ़ नहीं पाता, नई शिक्षा का विकास नहीं होता और देश कूपमंडूक रह जाता।

साम्राज्यवाद से प्रभावित सभी इतिहासकारों और 1857 के व्याख्याताओं ने इसे सिर्फ़ अंग्रेज़ सरकार और विद्रोही सैनिकों के बीच संघर्ष के रूप में देखा। उन्होंने बताना चाहा कि सिपाही विद्रोह के दौरान सत्ता से बेदख़ल किए गए बादशाहों–ताल्लुक़दारों, कुछ अपराधी जातियों और बदमाशों ने ही वस्तुतः अपने तुच्छ निजी स्वार्थ पूरे करने के लिए हिंसा की। 1857 के ऐसे व्याख्याताओं को यह मानने से एतराज़ था कि आम जनता के मन में भी किसी तरह का कोई आक्रोश था। एक अन्य कोटि के 1857 के व्याख्याता तो हिंदुत्ववादी हैं, जिन्होंने गांधी के अहिंसात्मक सत्याग्रह आंदोलन को कभी स्वीकार नहीं किया। इसी तरह भारतीय नवजागरण और 1857 भी उनके दिमाग़ में बेगानी घटनाएँ हैं। उनकी दृष्टि में 1857 सफल हो जाता तो भारत पुनः मुसलमानों के हाथ में चला जाता। 1857 पर लांछन का यहीं अंत नहीं होता। फुले 1857 की लड़ाई में हिंदी क्षेत्र के दलितों की भागीदारी लक्षित नहीं कर पाए थे। उनकी और आज के कुछ दलित चिंतकों की राय है कि 1857 सफल हो जाता तो भारत ब्राह्मणों के हाथ में चला जाता, धार्मिक सत्ता मज़बूत होती और अंग्रेज़ों के राज में दलितों को शिक्षा, सुरक्षा और आधुनिक विकास के जो अवसर मिले थे, वे छिन जाते।

अंग्रेज़ों के 1757 से 1857 तक के नस्ली भेदभाव, लूट और अत्याचारों से भरे शासन के कच्चे चिट्ठे जब सर्वविदित हों और

सुपरिचित आलोचक शंभुनाथ की आलोचना की कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। संपर्क : निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, संस्थान मार्ग, आगरा 282005

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जब यह बिलकुल स्पष्ट हो चुका हो कि भारत में न्याय, आज़ादी और सभ्यता के नाम पर उन सौ वर्षों में अंग्रेज़ एशियाई उपमहाद्वीप में ही नहीं, दुनिया के ग़ुलाम बनाए गए तमाम देशों में क्या कर रहे थे, तब भी हमारे देश में आज भी ऐसे सुशिक्षित बुद्धिजीवियों की कमी नहीं है, जो मानते हैं कि अंग्रेज़ी राज में 'सुशासन' था। अंग्रेज़ों का सुगठित और सुव्यवस्थित प्रशासन न होता तो 'भारत जैसे लद्धड़, निकम्मे, भविष्यहीन समाज को सामंती चंगुल से निकाल पाना असंभव था। ये बातें नई नहीं हैं और पहले भी कही जाती थीं। पता नहीं ऐसे अनोखे चिंतकों की दृष्टि में भारत आज वैश्वीकरण और प्रौद्योगिक क्रांतियों के युग में, 1857 के डेढ़ सौ साल बाद, सामंती चंगुल से निकल चुका है या नहीं।

कहना न होगा कि 1857 की साम्राज्यवाद से प्रभावित और हिंदुत्ववाद से प्रभावित व्याख्याओं में कोई मूलभूत फ़र्क़ नहीं है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने *अंधेरनगरी* में काफ़ी पहले इस विडंबनापूर्ण स्थिति पर टिप्पणी कर दी थी : ''हिंदू चूरन इसका नाम विलायत पूरन इसका काम।'' इसका उलटा भी उतना ही सच है, साम्राज्यवाद अपनी दीर्घ उपस्थिति के लिए हिंदुत्ववाद और ऐसी ही दूसरी कट्टरताओं और भेदभावों को उकसाता है। किसी भी समाज में साम्राज्यवाद और कट्टरवाद की जुड़वाँ उपस्थिति आर्थिक-सांस्कृतिक महाविनाश ही लाती है। यह जितना पहले समझने की ज़रूरत थी, उतना ही आज भी समझने की ज़रूरत है। इस दृष्टि से 1857 एक आलोक स्तंभ ही नहीं, एक प्रस्थान बिंदु भी है।

1857 से पहले भी देश में अंग्रेज़ी राज के ख़िलाफ़ किसानों और मज़दूरों के विद्रोह हो चुके थे, जिन्होंने 1857 की पृष्ठभूमि बनाई। मुश्किल यह है कि यदि 1857 का विद्रोह सफल हो जाता के रट्टू तोता इस पृष्ठभूमि पर कभी ग़ौर नहीं करते और उपनिवेशवाद को 'जस्टीफ़ाई' करने के लिए एक 'निगेटिव हाइपोथिसिस' ही बार-बार दुहराते हैं। इसी तरह 1857 के पहले ही 'सेक्युलर' या धर्मनिरपेक्ष चिंतन कट्टरवाद को झकझोर चुका था। राममोहन राय के नेतृत्व में आया नवजागरण जितना धर्म आधारित था उतना ही भारतीय अर्थ में धर्मनिरपेक्ष था—वह नवजागरण भारत के सिर्फ़ हिंदुओं के लिए नहीं था। उस ज़माने में जितने धार्मिक विमर्श चल रहे थे और सुधार कार्य हो रहे थे, उनमें तार्किकता के अलावा एक खुलापन भी था, समावेशिकता भी थी। शिक्षित लोग देश की जातीय समस्याओं पर बहस कर रहे थे। 1857 से पहले हिंदी-फ़ारसी-बाङ्ला-अंग्रेज़ी चतुर्भाषी या हिंदी-उर्दू और हिंदी-बाङ्ला द्विभाषी अख़बार निकलने शुरू हो गए थे। इस प्रकार अंग्रेज़ी राज और कट्टरतावाद दोनों से संघर्ष अस्तित्व में थे। मुश्किल सिर्फ़ यह थी कि जो समुदाय अंग्रेज़ी राज से विद्रोह कर रहे थे, वे अभी कट्टरतावाद विरोधी नहीं थे और आधुनिकता की अवधारणाओं से जुड़ नहीं पाए थे और जो वर्ग या तबक़े धीरे-धीरे कट्टरवाद या कूपमंडूकता से विद्रोह करके आधुनिकता की अवधारणाओं से जुड़ रहे थे, वे अंग्रेज़ी शिक्षा के क़र्ज़ और अंग्रेज़ी राज के सम्मोहन से इतने दबे थे कि वे 1857 के विद्रोह के राष्ट्रीय सार को न समझ सकते थे और न उसमें भगत सिंह जैसा कुछ बनकर हिस्सा ले सकते थे।

निश्चय ही 1857 की व्याख्या करते समय हमें अंग्रेज़ी राज से संग्राम छेड़नेवाले विद्रोहियों की राष्ट्रीय बेचैनी और संग्राम के हाशिए पर रह गए शिक्षित लोगों की बुद्धिवादी मुश्किलों—दोनों को और दोनों की जटिताओं को समझना होगा।

1857 के दौर में शिक्षित व्यक्ति दुविधा की स्थिति में थे। उनके सामने प्रश्न था—स्वतंत्रता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहिए या आधुनिकता? आज जिस तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों और वैश्वीकरण को आशाभरी नज़रों से देखा जा रहा है, उन्नीसवीं सदी के नई शिक्षा हासिल किए हुए नौजवानों ने भी अंग्रेज़ी राज, रेल-तार का जाल बिछानेवाली विदेशी कंपनियों को आशाभरी नज़रों से देखा था। एक अद्भुत आकर्षण और भय से भरी हुई दुनिया, जैसे आज हमारे जीवन संसार में घुसी चली आ रही है, उन्नीसवीं सदी में भी एक नई दुनिया ने चढ़ाई की थी। दुविधा की जैसी घड़ी आज है, तब भी थी।

इसलिए 1857 में अंग्रेज़ी राज से जो टकरा रहे थे, वे अनपढ़ किसान या इनके घरों के सिपाही थे। बंगाल और कुछ हद तक महराष्ट्र के शिक्षित-संपन्न भारतवासी जब धार्मिक स्थलों पर प्रार्थना कर रहे थे कि उस लड़ाई में अंग्रेज़ों की जीत हो जाए, उस समय किसान चाहते थे कि अंग्रेज़ों को देश से खदेड़ दिया जाए। इस देश की किसान जनता के मन में बादशाह और ताल्लुक़ेदारों से ज़्यादा असंतोष और आक्रोश था। यह असंतोष और आक्रोश काफ़ी पुराना था—इस तथ्य को भुलाकर 1857 पर कोई सार्थक चर्चा नहीं हो सकती। 1857 का महत्त्व यह है कि इसने काफ़ी खोलकर स्पष्ट कर दिया कि भारतीय समाज में 'उदासीनता' नहीं है, इसमें पर्याप्त प्रतिरोधात्मकता है। भारत एक संरक्षणशील देश है और पूरी दुनिया इसका आँगन है—यह ग्रहणशील है, पर यह प्रतिरोध भी करता है।

आज के दिनों में किसान और आदिवासी या विकास की वजह से विस्थापन झेलते लोग जब अपने खेत, ज़मीन और अस्मिता के लिए लड़ रहे होते हैं, एक बार और लगता होगा कि ये विकास को रोक रहे हैं, भारत को पिछड़ा रखना चाहते हैं। इनकी असफल लड़ाइयाँ और वैश्वीकरण की दिग्विजय कुछ-कुछ 1857 के दिनों को ताज़ा कर सकती हैं। आज पुनः लग सकता है कि किसानों के आंदोलन या अस्मिता की लड़ाइयाँ उदारीकरण की प्रक्रिया को उलटनेवाली हैं। हालाँकि 1857 की एक बड़ी भूमिका यह है कि इसने उस मध्य वर्ग के पूरे परिप्रेक्ष्य को बदलने में एक बड़ी भूमिका अदा की। 1857 के विद्रोह को जिस निर्मम और अमानुषिक ढंग से कुचला गया, हज़ारों बेगुनाहों को पेड़ों पर फाँसी दी गई—इसकी प्रतिक्रिया ब्रिटिश संसद और दुनिया के अख़बारों में ही नहीं, मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के मन पर भी हुई। 1857 के ब्रिटिश अन्यायों और अत्याचारों को देखकर शिक्षित-संपन्न मध्यवर्ग का भी नज़रिया बदलने लगा। स्वाधीनता चाहिए या आधुनिकता? अब इस प्रश्न के सामने खड़े होकर साफ़-साफ़ कहने लगे—हमें दोनों चाहिए। अंग्रेज़ों के 'सभ्यता के मिशन' की पोल अंततः खुल गई।

कहना न होगा कि इसी प्रकार विकास की नई वर्तमान पद्धतियों और नई टेक्नोलॉजी से भी मुक्ति की नई परिभाषाएँ निकलेंगी। आज बहुत कुछ जो अंधाधुंध, अनियंत्रित और एकध्रुवीय है, वह संदेह से देखा जाएगा। बौद्धिक क़िलेबंदी टूटेगी, सामुदायिक इंटरैक्शन बढ़ेगा और बड़े देशों के डिक्टेट से बाहर आकर एक नया संसार बनेगा, जिसमें विकास और यथार्थवाद परस्पर शत्रु नहीं होंगे।

इस बिंदु पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए कि क्या 1857 के विद्रोह में सिर्फ़ सामंतवाद भरा हुआ था और यह महज़ एक धार्मिक विद्रोह था। 1857 के विद्रोहियों के पास क्या नए विचार नहीं थे, वे प्रतिभागी थे? मुझे लगता है कि औपनिवेशिक संसाधनों द्वारा बने दस्तावेज़ और लोकगीतों-लोककथाओं के साक्ष्य—दोनों में 1857 के समान चित्र नहीं हैं। 1857 को केंद्र में रखकर किंवदंतियों, लोकगीत और लोक साहित्य ज़्यादा रचे गए, भद्रवर्गीय साहित्य कम रचा गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी में 1889 में रचा गया बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' के नाटक *भारत सौभाग्य* में 1857 के विद्रोह को साम्राज्यवाद से प्रभावित नज़रिए से ही देखा गया है। प्रेमघन ने अपने इस नाटक में ब्रिटिश राज्य को देश में शांति और सुव्यवस्था स्थापित करनेवाले पात्र के रूप में दिखाया गया है और यह कहा गया है कि सैकड़ों वर्षों के दमन के बाद देश ने अब कैसी राहत की साँस ली है। इस नाटक में बहादुरशाह ज़फ़र और नाना साहब को अंग्रेज़ों द्वारा दंड दिए जाने का समर्थन है, बल्कि नाना साहब को आर्य जाति का कलंक कहा गया है। स्मरणीय है कि यह नाटक राष्ट्रीय कांग्रेस की इलाहाबाद में आयोजित चौथी महासभा (1889) में प्रतिनिधियों के सामने मंचित करने के उद्देश्य से लिखा गया था और महासभा के अध्यक्ष को समर्पित था।

निस्संदेह *भारत सौभाग्य* से पहले भारतेंदु का प्रहसन *अंधेरनगरी* (1884) आया था और उसमें अंग्रेज़ी राज के प्रति एक भिन्न नज़रिया था : ''चूरन साहेब लोग जो खाता सारा हिंद हज़म कर जाता।'' यह उपनिवेशवाद की एक तीखी बौद्धिक पहचान है। भारतेंदु यह भी कहते हैं : ''चूरन हाकिम साब जो खाते। सब पर दूना टिक्स लगाते।'' भारतेंदु ब्रिटिश राजभक्ति प्रदर्शित करते हुए भी भारत में अंग्रेज़ी राज को कभी 'सुशासन' नहीं कहते हैं। उपनिवेशवाद और पश्चिम एक-दूसरे के पर्याय नहीं हैं। उपनिवेशवाद वस्तुतः पश्चिम का एक वीभत्स चेहरा है और भारतेंदु इसकी भरपूर पहचान करके अंग्रेज़ी राज को देखने के मध्यवर्गीय परिप्रेक्ष्य में काफ़ी परिवर्तन लाते हैं। वे निस्संदेह दुविधा से मुक्त नहीं थे, पर उनके मिज़ाज में एक संक्रमण घटित हो रहा था। वे 1857 के असर में ही बलिया वाले भाषण में हिंदू-मुसलमान 'सब एक-दूसरे का हाथ पकड़ो' का संदेश देते हैं। वे अन्यत्र यह सवाल पूछते हैं : ''कब लौ दुख सहिहौ सबै रहिहो बने ग़ुलाम ?'' उन्होंने 1857 पर सिर्फ़ दो पंक्तियाँ लिखीं, जो काफ़ी यथार्थपरक हैं। वे लिखते हैं : ''कठिन सिपाही द्रोह अनल जो जन बल नासी। जिन अब सिर न उठाय सकत कहुँ भारतवासी।'' सिपाहियों के भयंकर विद्रोह की आग बुझाने के लिए अंग्रेज़ों ने इतना भयंकर दमन किया कि उनके भय से भारतवासी फिर विद्रोह करने का साहस नहीं कर पा रहे थे। इस तरह उन्नीसवीं सदी में 1857 के संदर्भ में भारतेंदु और प्रेमघन ये दो अलग-अलग व्याख्याएँ देते हैं और अलग-अलग आकांक्षाएँ व्यक्त करते हैं। एक पर स्पष्ट रूप से राष्ट्रवाद का असर है, दूसरे पर उपनिवेशवाद का। लेकिन लोक साहित्य के संसार में ऐसी एक भी रचना नहीं है, जिसमें कुछ इस तरह की बात हो कि 1857 के विद्रोह में यदि सफलता मिल जाती तो भारत पिछड़ जाता। फिर भी इससे सिर्फ़ इतना ही निष्कर्ष निकालना चाहिए कि 1857 में भारत के लोक समाज और पढ़े-लिखे शिष्ट समाज के बीच एक अल्पकालिक दीवार खड़ी हुई थी, जो इस विद्रोह के असर से टूट गई। यह अलग बात है कि आज पुनः यह दीवार खड़ी हो रही है और दीवार खड़ी करनेवाले वैश्वीकरण के संदर्भ में अंग्रेज़ी राज के सुशासन के गीत गाने लगे हैं। इसमें संदेह नहीं कि जो विचारक 1857 के संग्राम के विरोध में आज भी बौद्धिक क़िले बनाने में लगे हैं, वे एकध्रुवीय वैश्वीकरण के जयजयकार में लगे हुए लोग हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिंधी कविता

रश्मि रमानी

चाँद का पता

डूबते सूर्य के रंगों से
नहा रहा है आसमान
पहाड़ चकित है
और, पाम के पेड़ मुग्ध
साँझ के सौंदर्य का जादू
उतर आया है
एक लड़की की आँखों में

निर्जन समुद्रतट पर खड़ी एक ख़ामोश लड़की
अपलक निहार रही है सूर्यास्त को
समंदर की खारी हवाएँ
खेल रही हैं लड़की के बालों से
लड़की की लटों को चूमकर
हवा में घुल गया है संगीत
पर, बेतरतीब घास के बीच
स्तब्ध है, पतली-सी एक पगडंडी
घने जंगल में रखी जाती
पगडंडी को देखते
भयभीत है वह लड़की
ऐसी ही एक पगडंडी पर चलते
वह खो गई थी घने जंगल में
अजीब सफ़र था वह
पर, चाँद मिल गया था अचानक
सफ़र की नीरसता को कम करने वाले
ख़ुशमिज़ाज अजनबी की तरह

चाँद के साथ पहुँची थी लड़की वहाँ
जहाँ कुँआरी धरती थी।
कुँआरी धरती के होंठों के कंपन को
महसूस किया था लड़की ने अपने होंठों में
और, उतर आया था एक अहसास
उसकी भीतरी तहों में

सिंधी कवयित्री रश्मि रमानी का जन्म 1960 में हुआ। कविता, अनुवाद, आलोचना की आठ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं कई अन्य संस्थाओं से पुरस्कृत हैं। संपर्क : 83, सर्वोदय नगर, इंदौर 452001 (म.प्र.)
फ़ोन : 0731-2477363

अनु. स्वयं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लड़की के भीतर बन गई है
एक सूनी पगडंडी
जो, खो जाती है घने जंगल में
पर, जंगल में अब कुँआरी धरती नहीं
एक उजाड़ बन गया है।

उजाड़ में फूल खिलने की आस लिए
लड़की खोजती है बहुत कुछ
पलटती है अतीत की किताब के पन्ने
ढूँढ़ती है उस पन्ने को
जिस पर कहीं लिखा था
चाँद का पता।

पिंजरा

गर्मी की दोपहरें
भले ही ख़ुश्क होती हों
पर
सुबहें मुलायम होती हैं।

इन मुलायम सुबहों में
एक लड़की ताकती है आसमान
और सोचने लगती है अपने बारे में
यों तो काफ़ी कुछ है उसके पास
बढ़िया घर, अच्छा पति,
पति की शानदार नौकरी,
प्यारे-प्यारे बच्चे,
और भी बहुत कुछ

पर,
भीतर-ही-भीतर
बार-बार सालता है कुछ
ख़ुश्क दोपहर की ख़ुश्की को,
भीतर की मुलायमियत में जज़्ब कर,
अचानक
देख लेती है वह
तोते का पिंजरा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सोचती है पल भर कुछ
फिर
भरती है एक ठंडी साँस
और
लग जाती है अपने काम में
ख़ामोश चुपचाप।

सूर्यास्त

पाम के पेड़ों ने
सहला दिए सूरज के गाल
अपने होंठों में प्यार की तपिश महसूस करता
सुर्ख़ सूरज ढलक गया
असंख्य पेड़ों की विशाल, आत्मीय बाँहों में

सूर्यास्त को देखना
एक वास्तविकता है
पर, इसे शब्द देना एक खेल
आसमान का वैभव
सूर्य के साम्राज्य में
पारदर्शी है बेहद और तरल
बहता चला आता है
आत्मा की गहराइयों में

अपने भीतर पहचानते हैं हम तमाम चीज़ों को
बस, नहीं जानते हैं
कब बंद होती हैं आँखें
और कब शुरू होने लगते हैं सपने।

गुफाएँ

गुफाओं में
उजास नहीं होता
नहीं होती हैं वे
सुरंगों की तरह
कि, दूसरे सिरे पर
उजाले की आस हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ख़ुशी की पहचान

एक ख़ूबसूरत शाम
बदल गई चमकीली रात में
डूबते सूर्य के साथ
पता नहीं कहाँ खो गए
सारे सुहाने रंग।

मुझे मिल गई है
एक छोटी-सी ख़ुशी
इस पर कहीं अपना नाम तो लिख दो
आने वाले उदास दिनों में
जब गड्ड-मड्ड हो जाएँगी
तमाम चीज़ें
बेतरतीबियों में सिमट जाएगी ज़िंदगी
और मैं याद करूँगी
बीते दिनों की गुमशुदा ख़ुशियों को

तब शायद कभी
कहीं किसी तह में दबी
वह छोटी-सी ख़ुशी
अचानक मिल जाएगी
और साथ ही
उसकी पहचान भी।

हम क्यों पूछते हैं

नहीं है ज़रूरत कुछ भी सीखने की
नहीं है ज़रूरत कुछ भी बोलने की
हो जाना चाहिए हमें
प्रकृति की तरह
उदार और सरल,
आसमान की तरह
मुक्त और साधारण।

बिना कुछ सीखे
बीज बन जाते हैं,
विशाल पेड़,
बिना निर्देशों के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बहती हैं नदियाँ
बिना किसी से कुछ पूछे
हवाएँ चलती हैं अपने रास्ते
नहीं पूछता है सूर्य किसी से कुछ
कि
किसको कितनी धूप चाहिए?
फिर
हम क्यों पूछते हैं बहुत कुछ
क्यों नहीं सो पाते पूरी नींद
करते रहते हैं दिखावा
अतल जल से निकालते हैं ख़ाली सीपियाँ

ख़ाली सीपियों के हृदय की तरह सूने
हमारे हृदय
और
चमकीले सफ़ेद आवरण
ऊँचे स्वरों में होते
निरर्थक शब्द।

वापसी

पतझड़-से सूने जीवन में
आज फिर तुम
बसंत की तरह लौट आई हो
एक अर्सा बीत गया
हमें मिले
पर, तुम आज भी
वैसी ही आत्मीय हो

रेत पर हमारे पैरों के निशान
अतीत की यादों की तरह
उभर आए हैं

अपनी धुन में डूबी तुम
पता नहीं क्या सोच रही हो
पर मैं,
तुम्हारी वापसी के बारे में
सोच रहा हूँ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुजराती कविता

मीनाक्षी कैलास पंडित

अतीत

कॉलेज में गुज़ारे अपने उन वर्षों को
मैंने पिघला दिया है अपने लहू में।
अचानक कॉलेज की एक पुस्तक हाथ में
आ जाने पर खोल देती हूँ तो उसमें छिपे
पतिंगे उड़-उड़कर
ले जाते हैं मुझे बीत चुके कल की भव्यता में।
मैं एक पतिंगे को पकड़कर पूछती हूँ—
कॉलेज की लॉबी में खड़े स्तंभ
अभी तक भी खड़े हुए दूसरों को सहारा देते हैं क्या?
और उस लंबे-चौड़े मैदान में
उगी हुई नन्ही-नन्ही हरी घास
अभी भी पहले की तरह बातें करके
बैठाकर रखती है क्या?
और एक-दूसरे की ख़बर, एक-दूसरे को

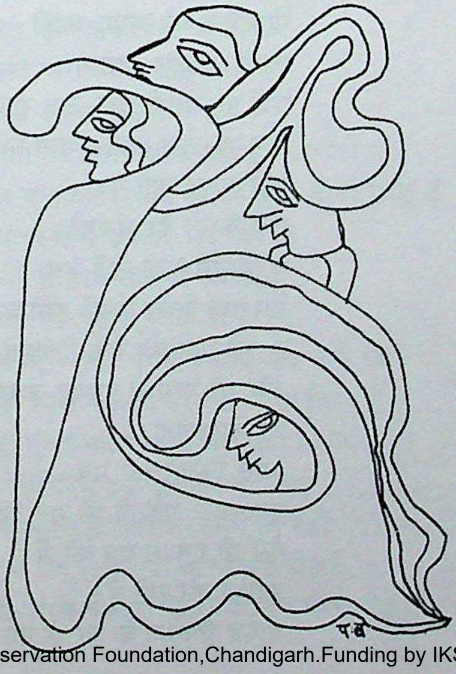

गुजराती कवयित्री मीनाक्षी कैलास पंडित का जन्म 1964 में हुआ। संपर्क : 25, सिकंदरी बिल्डिंग, 148, सेनापति बापट मार्ग, माटुंग रोड (वेस्ट), मुंबई 400016

अनु. जेठमल मारू गुजराती हिंदी में परस्पर अनुवाद करते हैं। संपर्क : 2 अ-2, पवनपुरी, बीकानेर 334003 (राज.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देता वह गोरखा रिटायर हो जाएगा
तब 'कोई' को खोजने 'कोई' कहाँ जाएगा?

मेरे क्लास-रूम की खिड़की से भाग चुका
समय अब
टेबल-कुर्सी पर बैठ
आख़िरी तारीख़ का इंतज़ार करता
ट्रेन में लटककर घर जाता है।

मैं अब सिग्नल को क्रॉस करती-करती
यकायक हँस पड़ूँ तो मानना कि
एक पतिंगे ने मुझे गुदगुदी की होगी।

पोस्ट ऑफ़िस

पोस्ट ऑफ़िस में इन्वेस्टिगेटर इंस्पेक्टर की
राह देखती-देखती थक चुकी मैं
शुष्क मन से निहार रही थी
वहाँ की चहल-पहल
छत पर घूमते घरघराहट करते पंखे
मद्धिम-मद्धिम लाइटें
पोस्टमैनों की आवा-जाही
लोगों का शोर-शराबा
पत्रों पर लगती ठक-ठक मुहर-छापों की आवाज़
रोज़-ब-रोज़ आते हज़ारों पत्र
और बाहर जाते पत्र
पत्रों के ही ढेर में रहते
ये पोस्टमैन जी चाहे तब
प्रेम-पत्र लिख सकते होंगे वाक़ई?
तू मुझे एक पत्र रोज़ लिखता
और मेरे पास से इसका जवाब
भी लिखवाता।
हमारे कितने सारे पत्र
पुनः-पुनः पढ़ें तो भी मन नहीं भरता
ऐसे ही एकाध पत्र की मैं
प्रतीक्षा कर रही हूँ।
शायद भगवान के घर से पत्र आए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और पोस्टमैन दरवाज़ा खटखटाकर कहे :
'लैटर'!
और मैं दौड़कर वह पत्र लेकर पढ़ूँ
तुझे इसका जवाब लिखूँ।
पर पत्र किस पते पर पोस्ट करूँ?
यह सोच ही रही थी तभी
इन्वेस्टिगेटर इंस्पेक्टर आया और
मैं उलझ गई तुम्हारे
डेथ सर्टिफ़िकेट के वेरीफ़िकेशन में।

ऑफ़िस

ऑफ़िस में बैठकर, खिड़की के बाहर होती
रिमझिम-रिमझिम बरसात को निरखती मैं
पहुँच जाती हूँ मेघ धनुष को पाने।
सरकारी ऑफ़िस के निस्तेज वातावरण में,
टाइपिंग की टिक-टिक आवाज़ में,
हेड-क्लर्क के रौब में
और फ़ाइलों के ढेर के बीच
सिर छिपाकर काम करते होने का दिखावा
करते मेरे सहकर्मियों के बीच
चलते पारस्परिक जोक्स में—
सबसे अलग पड़ती मैं
लगता कि ऑफ़िस के सारे ही काग़ज़ों की
नाव बनाकर बरसात के बहाव में तैरती छोड़ दूँ
और पानी में छपाक-छई कर रहे
बच्चों के साथ तरंग में आकर
आजा री बरसात...गाने लगूँ।
साथ-ही-साथ भगवान से प्रार्थना करूँ कि
इतनी सारी घनघोर बरसात बरसा कि
सारी मुंबई नगरी जल-जलाकार हो जाए
दो-चार दिन तक ट्रेन बंद हो जाए
फिर ऑफ़िस जाने का काम ही नहीं
घर में बंद रहकर टी.वी. देखते-देखते
गरम-गरम पकौड़ों के साथ चाय पीते-पीते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बरसात को मन भर भोग लूँ।
मैं इस स्वप्ननगरी में विहर रही थी
तभी पियॉन ने आकर मुझे
तंद्रा से जगाया—साहेब बोलावत आहे
और मैंने रिपोर्ट तैयार नहीं की
इसके बहाने खोजती चलने लगी
साहब के केबिन की ओर...

कमल वोरा

पतिंगे

रंग-बिरंगे पतिंगों का एक समूह
डाल पर फूल लगे हों इस तरह
कमरे की दीवार पर बैठा है
धूप में चमकती पाँखें
दीवार से फूटी हो यों
दीवार उड़ूँ-उड़ूँ होती है
पतिंगे पकड़ने के लिए
मैं आहिस्ता से हाथ लंबाता हूँ
हाथ लंबाते ही
पतिंगे उड़ जाते हैं
और हाथ
उड़ते हुए पतिंगों के पीछे
लंबा, और लंबा होता जाता है
आड़े आती दीवार को बेधकर भी
हाथ
पतिंगों के पीछे दौड़ता है
त्वचा, नसें, लहू तनते हैं
पर
पाँखों में हवा का जोश भरकर
उड़ते पतिंगे
अचानक ग़ायब हो जाते हैं
कटी पतंग की डोर की तरह
हाथ वापिस लौटता है
हाथ की ओर।

गुजराती कवि कमल वोरा की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। संपर्क : फ़्लैट-6, प्राची, विक्रांत के सामने, 90 फ़िट रोड, घाटकोपर (पूर्व), मुंबई 400079

अनु. जेठमल मारू

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दीवार

दीवार के कान होते हैं
दीवार के
मुँह
भी होता है
हाथ पैर छाती त्वचा
नसें भी
नसों में धक-धक बहता
लहू भी
और श्वासोच्छ्वास भी

काला स्याह अँधेरा
फैलता है
किसी
बुझती अँगीठी की तरह
दीवार
लोप हो जाती है

कई-कई बार
इस दीवार के
आर-पार
देखा जा सकता है

ज़मीं पर पड़ी
एक पाँख उठाने के लिए
दीवार
टेढ़ी झुकती है

पुरजोश हवा
दौड़ी
दीवार ने
हाथ फटकारे
हाथ टूट गए

कान लगाकर सुनता हूँ
इन दीवारों में
असंख्य पक्षियों की
पाँखों की फड़फड़ाहट
सुनाई देती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नानुभाई नायक

आशा

सूर्य के गोले को भेदकर
यदि मैं उसके गर्भ तक पहुँच सकूँ
तो...तो शायद
उसकी श्वेत किरणों के रूप में उतरकर
इस पृथ्वी को मैं उजाल सकूँ

और आकाश में घूमते
हज़ारों ब्रह्मांडों में से एकाध को भी
यदि मैं छू सकूँ
तो...तो शायद वहाँ की संस्कृति को
मैं नए सिरे से इस पृथ्वी पर उगा सकूँ

पर यदि
सूर्य के गोले को भेदने जाते
मैं स्वयं ही जलकर राख हो गया
तो...तो फिर
इस जगत के विषय में
बहुत कम आशा रहेगी।

क्या होगा

काफ़ी समय बाद
भगवान अब मरण शैय्या पर पड़े हैं
वाक़ई मरने को पड़े हैं

पर अपनी मृत्यु के बाद
दुनिया का क्या होगा उसकी चिंता में
उनकी आत्मा तड़फड़ाती है

करोड़ों साल तक
एक चक्र चलाई हुई अनगिनत लीलाओं का
अपनी मृत्यु के बाद क्या होगा
इस विचार से
उनके प्राण छूटते नहीं

सचमुच भगवान मर ही जाएँगे
तो फिर इस दुनिया का क्या होगा ?

गुजराती कवि नानुभाई नायक की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। संपर्क : साहित्य संगम, बावा सीदी, पंचोलीवाड़ी के सामने, गोपीपुरा, सूरत 395001

अनु. जेठमल मारू

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वास्तविकता

यदि सभी लोग
शादी की शहनाई से
मरने के मरसिये सुन सकते होते
तो...तो फिर
भगवान बुद्ध को अवतार लेने की
ज़रूरत ही क्यों पड़ती ?

यदि सभी लोग
ख़ुद क्या करते हैं यह समझते होते
तो...तो फिर
यीसु ख़्रीस्त का क्रॉस कौन बनाता ?

यदि सभी लोग
सच्चा न्याय करते होते
तो...तो फिर
सोक्रेटिस को ज़हर कौन देता ?

अगर सभी लोग
सच बोलना ही सीखते होते
तो...तो फिर
गांधी को गोली कौन मारता ?

जल्दी कर

कौए झुंड बनाकर
कोयल के कंठ से गाने लगे हैं

भोर तक
जागता रहा उल्लू
मुर्ग़े की जगह कुकड़ूकूँ बोल रहा है

घड़ी के बदले
दीवारें ख़ुद ही टिक-टिक करती हैं

और आदमी की जगह पर
घर ख़ुद साँस ले रहा है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उधर वह श्मशान
ख़ुद की चिता तैयार करता है

इसलिए भई मरे हुए आदमी!
श्मशान ख़ुद ही सुलग उठे
उससे पहले
जल्दी उठ और दौड़कर
चिता पर चढ़ जा।

अनुभव

मेरा वश चले...
तो उस खिली हुई फूल-कली में
मैं समूचा घुस जाऊँ
और ढलती साँझ को
वह मुँद जाए तब
भीतर बैठा-बैठा
माँ के गर्भ में था तब
मैं कैसा था उसका अनुभव करूँ

मेरा वश चले...
तो इन सारी नहरों के पानी में
मैं बूँद-बूँद रम जाऊँ
जिससे मेरे जन्म से पहले
पिता के लहू के रूप में मैं था
तब कैसा था उसका अनुभव करूँ

मेरा वश चले...
तो इस निस्सीम आकाश में
मैं मिल जाऊँ
जिससे ईश्वर ने मुझे बनाया उससे पहले
मैं कैसा था उसका अनुभव करूँ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

असमिया कविता

वीरेंद्रनाथ बरकटकी

मन्वंतर

स्मृति की गुफाओं में कितने आदिम मानव बिलखते हैं
जीवन का मन्वंतर सोचकर
यायावरी इतिहास में ये लोग खो जाते हैं
हज़ारों युग की कहानी रचकर
सिंधु की मोहना टूटती रहती हैं
गंगा में ज्वार उठते हैं
नील में वर्षा उतरती है पृथ्वी डूबोकर
पत्थरों के सीने से शैलखंड उतर आते हैं
मनुष्य की प्रीत ढूँढ़कर
भयभीत हौवा रोती है और कितनी निर्वस्त्र नारियाँ
सभ्यता की सघन अरण्य मुखरित कर
जीवन का कुंभमेला
संस्कृति के संगम क्षेत्र में
मन और कल्पना के खानाबदोश संन्यासी
स्नान करते हैं पूत सलिल में
दुष्कृति के कुरुक्षेत्र जीतकर
सुकुमार कृष्ण उद्‌भव होते हैं
बुद्ध अनादियुग का स्वप्न देखते हैं
हिमालय उच्च शिखर में
तुषार मानव सुनते हैं
पृथ्वी की उर्वर धरती को
मुखरित कर गाए
मनुष्य के समवेत संगीत में
नदी को प्यार जताते हैं
मनुष्य की जय का कीटाणु
दो हाथों की पकड़ से ऋग्वेद स्खलित होती है
मन और वास्तव की शराइघाट में
मनुष्य के प्रेमाप्लुत वक्षस्थल में
इस्पात के परीक्षण किए जाते हैं।

वीरेंद्रनाथ बरकटकी (1924-2002) असमिया के वरिष्ठ साहित्यकार। इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। रचनाओं के लिए संपर्क : श्रीमती गौरी बरकटकी, फूकन नगर, शिवसागर (असम)

अनु. मृणाली कुँवर गिरि का जन्म 1967 में हुआ। इनकी कविताएँ एवं असमिया-हिंदी में परस्पर अनुवाद प्रकाशित होते रहे हैं। संपर्क : हिंदी विभाग, मार्गेरिटा कॉलेज, ज़िला तिनसुकिया 786181 (असम) मो. 94350 03092

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मधुरेश

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास : प्रेम और सौंदर्य-दृष्टि

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने जब-तब अपने उपन्यासों को 'गप' कहा है और स्वीकार किया है कि वे प्राय: ही उनकी अकादेमिक और वैचारिक थकान से मुक्ति का साधन रहे हैं। आलोचना और शोध की प्रक्रिया में अपनी वैचारिक रिक्तियों एवं आशंकाओं को जैसे वे इस रचनात्मक उद्यम से पूरा करते हैं। उनके उपन्यास अपनी प्रकृति में ऐतिहासिक सद्य अधिक सांस्कृतिक हैं। वे न प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना-प्रसंगों की ओर देखते हैं, न ही इतिहास में अपनी जगह बना चुके चरित नायकों की ओर। अपने उपन्यासों में जैसे वे अपने विचार के बोझ को हल्का करने के लिए सहृदयता और रस-ग्रहण की प्रक्रिया पर विशेष बल देते हैं। यह भी अकारण नहीं है कि अपने वैचारिक और रचनात्मक लेखन के बीच विभाजन के लिए वे व्योमकेश शास्त्री जैसे एक छद्म नाम का सहारा लेते हैं जैसे अपनी रचनात्मकता की अंगद कूद को वे एक शास्त्रीय समर्थन का भ्रम पैदा करना चाहते हों। अपने उपन्यास *पुनर्नवा* की रचना-प्रक्रिया के प्रसंग में अपनी ही कृति *हिंदी साहित्य का आदिकाल* से वे एक लंबा उद्धरण देते हैं जिसे, कथा-काव्यों के बहाने, उनके अपने उपन्यासों की प्रकृति पर भी एक टिप्पणी की तरह पढ़ा जा सकता है : "भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया है, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण-संग्रह की ओर कम, कल्पना-विलास का अधिक मान था, तथ्य-निरूपण का कम, संभावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम, उल्लसित आनंद की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम! इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा। ऐतिहासिक तथ्य इन काव्यों में कल्पना को उकसा देने के साधन मान लिए गए हैं। राजा का विवाह, शत्रु-विजय, जल-क्रीड़ा, शैल-वन-विहार, दोला-विलास, नृत्य-गान-प्रीति—ये सब बातें ही प्रमुख हो उठी हैं क्रमशः इतिहास का अंश कम होता गया है और संभावनाओं का ज़ोर बढ़ता गया। राजा के शत्रु होते हैं, युद्ध

जाने-माने आलोचक मधुरेश का जन्म 1939 में बरेली में हुआ। कथा-समीक्षा की अनेक पुस्तकों के साथ-साथ राहुल, यशपाल, रांगेय राघव आदि पर चर्चित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।
संपर्क : 372, छोटी बमनपुरी, बरेली 243003 (उ.प्र.)
फ़ोन : (0581) 2454670

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होता है। इतिहास की दृष्टि एक युद्ध हुआ और भी हो सकते थे। कवि संभावना को देखेगा। राजा के एकाधिक विवाह होते थे, यह तथ्य अनेक विवाहों की संभावना उत्पन्न करता है, जल-क्रीड़ा और वन-विहार की संभावना की ओर संकेत करता है और कवि को अपनी कल्पना के पंख खोल देने का अवसर देता है। उत्तरकाल के ऐतिहासिक काव्यों में इसकी भरमार है। ऐतिहासिक विद्वान के लिए संगति मिलाना कठिन हो जाता है...''

आधुनिक हिंदी उपन्यास, सं. भीष्म साहनी और अन्य संस्करण 1980, (पृ. 359) अपने प्रच्छन्न समर्थन में अपने ही इस उद्धरण के बाद जब व्योमकेश शास्त्री द्वारा इस स्थिति पर उनकी प्रतिक्रिया पूछी जाती है तो सीधे जवाब न देने की अपनी शैली के अनुसार वे कहते हैं : ''आधुनिक इतिहास-वेत्ता झुँझला जाते हैं लेकिन जो सहृदय हैं, जिनकी दृष्टि रस-ग्रहण करने की है उन्हें तो यह अच्छा ही लगता है...''(वही)

इस दृष्टि से देखे जाने पर *चारु चंद्रलेख* के प्रसंग में मध्यकालीन इतिहास के प्रामाणिक स्रोतों की अनदेखी वाली कुँवर नारायण की शंकाएँ स्वतः निरस्त हो जाती हैं। अपने उपन्यासों में इतिहास की कठोर और अपरिवर्तनीय (सीमा) रेखाओं से बचकर द्विवेदी जी, कल्पना के पंख खोलकर, ऊँची निर्बाध उड़ान की संभावनाएँ तलाशते हैं। मुख्यतः उनके उपन्यासों का परिवेश मध्यकालीन है—वे मध्यकालीन कला-विनोद और सांस्कृतिक गतिविधियों पर अपना ध्यान अधिक केंद्रित करते हैं। इतिहास की अपरिवर्तनीय घटनाओं और चरित नायकों की अपेक्षा वे लोक-गाथाओं और वीर काव्यों की ओर जाते हैं। इसी कारण इतिहास के प्रामाणिक एवं आधिकारिक स्रोतों की अधिक आवश्यकता उन्हें नहीं होती। अपनी रासायनिक क्षमता से वे अनेक कथाओं एवं गाथाओं को एक में गूँथकर अपने कथा-विवेक और रस-ग्रहण की प्रवृत्ति के सहारे एक सांस्कृतिक आख्यान की सृष्टि करते हैं।

नवंबर 1930 में हिंदी अध्यापक के रूप में अपने शांति निकेतन पहुँचने को द्विवेदी जी अपना 'द्विजत्व' अर्थात् दूसरा जन्म स्वीकार करते हैं। बहुत बाद में, शिवमंगल सिंह 'सुमन' को एक पत्र में वे लिखते हैं : 'आप जानते ही हैं कि 6, 7 और 8 नवंबर मेरे द्विजत्व प्राप्ति की तिथि है। मैं शांति निकेतन के लिए 6 को चला था 7 को पहुँचा था और 8 को कार्य शुरू किया था। इन तिथियों को मैं बहुत महत्त्वपूर्ण समझता हूँ...' (पत्र : हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, सं. मुकुंद द्विवेदी, संस्करण 83, पृ. 123) इससे बहुत पहले बनारसी दास चतुर्वेदी को वे लिखते हैं : ''जीवन में टर्निंग पॉइंट की बात आपने पूछी है। मेरे जीवन की सबसे बड़ी घटना शांति निकेतन में गुरुदेव का दर्शन पाना है। न जाने किस पूर्व पुण्य फल से मुझे यह सौभाग्य मिला। दर्शन पा सकना ही परम पुण्य का फल है, परंतु मुझे तो स्नेह मिला था। बाद में 'गुरुवर' के दर्शन मिले। आहा! भागीरथी की निर्मल धारा के समान उस प्रेमिक महापुरुष का साहचर्य कितना आह्लादकर था इस बात को वही जान सकता है जिसने कभी उस रस का अनुभव किया हो...'' (वही, पृ. 73) वे यह मलाल भी व्यक्त करते हैं कि रवींद्रनाथ से उन्हें जितना ग्रहण करना चाहिए था, वे नहीं कर सके। फिर भी अनेक रूपों में उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करके वे ऋण-शोध करते हैं। सबसे पहले अपनी पुस्तक *सूरदास* में वे रवींद्रनाथ की लंबी कविता 'सूरदासेर प्रार्थना' का रचनात्मक उपयोग करते हैं। रवींद्रनाथ द्वारा कबीर के पदों के चयन और अंग्रेज़ी अनुवाद से वे अपने 'कबीर' की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। लगभग बारह वर्षों तक उनके संपर्क के परिणाम स्वरूप उन पर उन्होंने अनेक निबंध और संस्मरण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिखे और उनकी अनेक कविताओं का अनुवाद किया। उनकी पुस्तक *मृत्युंजय रवींद्र* वस्तुतः उनकी इसी कृतज्ञता का शिलालेख है। शांति निकेतन के अपने प्रवास में अनेक विभूतियों से संपर्क में वे ख़ासतौर से आचार्य क्षितिमोहन सेन और चित्रकार नंदकुमार वसु को याद करते हैं। संत-साहित्य को समझने और भारतीय चिंतन-परंपरा को एक अबाध प्रवाहित धारा के रूप में देखने की दृष्टि उन्हें यहीं से मिली। इसका बहुत विवेकपूर्ण उपयोग वे *हिंदी साहित्य की भूमिका* में करते हैं।

अपने शांति निकेतन वाले प्रसंग में वे शरत्चंद्र की चर्चा कहीं नहीं करते। शरत्चंद्र का निधन उनके शांति निकेतन आने के प्रायः आठ वर्ष बाद हुआ—1938 में। इसके तीन वर्ष बाद 1941 में रवींद्रनाथ का निधन हुआ। अपना उपन्यास *बाणभट्ट की आत्मकथा* उन्होंने 1942 के आस-पास लिखना शुरू किया। 1943 से *विशालभारत* में उसका धारावाहिक प्रकाशन शुरू हुआ और 1946 में वह पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। आज से प्रायः चालीस वर्ष पूर्व हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की षष्टिपूर्ति के अवसर पर, शिव प्रसाद सिंह द्वारा संपादित *शांति निकेतन से शिवालिक* में 'बाणभट्ट की आत्मकथा : एक प्रतिक्रियाधर्मी विश्लेषण' शीर्षक अपने निबंध की कुछ पंक्तियाँ मैं उद्धृत करना चाहूँगा, ''व्यक्तिगत रूप से मुझे ऐसा लगता है कि जहाँ उसकी आत्मा में संस्कृत साहित्य के तत्त्व हैं, भारत की विशाल मानवतावादी सांस्कृतिक परंपरा का योग है वहीं उस पर, महज़ उसके बाह्य रूपाकार पर ही नहीं, बाङ्ला कथा-साहित्य की सुस्पष्ट छाप है। *बाणभट्ट की आत्मकथा* का निर्माण काल वही है जब बाङ्ला कथा-जगत में शरत् बाबू और रवींद्रनाथ की विजय-दुंदुभि दिग्-दिगंत में व्याप्त थी। जहाँ हिंदी के अनेक साहित्यकारों पर उक्त दोनों लेखकों का प्रभाव अनुवाद के माध्यम से आया, द्विवेदी जी को बाङ्ला-भाषा के मौलिक अध्ययन का सुलाभ ही नहीं, रवींद्रनाथ के निकट संपर्क का सुयोग भी प्राप्त था। *बाणभट्ट की आत्मकथा* को मैंने जब भी पढ़ा है, मुझे रह-रहकर *श्रीकांत* की याद आई है—आत्म-लांछना और आत्म-प्रताड़ना की भंगिमा ही नहीं, नारी विषयक दृष्टिकोण और प्रेम-प्रसंगों की नीरव मौन अप्रगल्भ अवतारणा की दृष्टि का साम्य भी मुझे उसमें दिखाई देता है। भट्टिनी और निपुणिका ही नहीं, सुचरिता और चारुस्मिता के निर्माण के पीछे भी वही दृष्टि और सहृदयता है जिसकी चर्चा शरत् की नायिकाओं के संबंध में बहुधा हुई है। (*शांति निकेतन से शिवालिक,* संस्करण 1967, पृ. 280) अपने लंबे निबंध 'नारीर मूल्य' में शरत्चंद्र ने बंगाल की स्त्री के प्रसंग में विशेष रूप से और सामान्य स्त्री जाति के प्रति सामान्य रूप से जिस सामाजिक संरचना की दुरभि संधि के जो संकेत दिए हैं, द्विवेदी जी के उपन्यास उस सामाजिक दुरभि संधि को विस्तार से उद्घाटित करते हैं। अपने स्त्री-पात्रों के असीमित दुखों के प्रति जिस हार्दिक सहानुभूति की बात वे करते हैं उसका उत्स कहीं-न-कहीं शरत्चंद्र में मौजूद है। *बाणभट्ट की आत्मकथा* में ही नारी-नियति को परिभाषित करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं : ''बड़े करुणाजनक संयोगों के बीच से मैंने यह अनुभव किया है कि स्त्री के दुख इतने गंभीर होते हैं कि उसके शब्द उसका दशमांश भी नहीं बता सकते। सहानुभूति के द्वारा ही उस मर्म-वेदना का किंचित् आभास पाया जा सकता है...निपुणिका में इतने गुण हैं कि वह समाज और परिवार की पूजा का पात्र हो सकती थी पर हुई नहीं...निश्चय ही कोई बड़ा असत्य समाज में सत्य के नाम पर घर बना बैठा है...'' (*बाणभट्ट की आत्मकथा,* संस्करण 54, पृ. 216)

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की यह चिंता वस्तुतः

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शरत्चंद्र की उस चिंता का ही विस्तार है जिसे बंगाल की लड़कियों के प्रसंग में वे जब-तब व्यक्त करते हैं। बंगाल की लड़की की इस पीड़ा का सत्यापन वे पृथ्वी का इतिहास खोलकर करने को जैसे सब कहीं अपने को तैयार रखते हैं। अपने निबंध 'नारी का मूल्य' के शुरू में ही वे सवाल उठाते हैं, ''नारी का मूल्य क्या है? अर्थात् वे किस हद तक सेवा-परायण, स्नेहशील, सती और दुख तथा कष्ट में मौन रहती हैं? अर्थात् उनके द्वारा पुरुषों को कहाँ सुख और सुभीता हो सकता है और कहाँ तक वे रूपसी हैं? पुरुष की लालसा और प्रवृत्ति को वे कहाँ तक निबद्ध और तृप्त रख सकती हैं? स्त्रियों का मूल्य निश्चित करने के लिए इनके सिवा और कोई मार्ग ही नहीं है...'' (*शरत्-समग्र,* खंड-1, पृ. 603) पुरुष-वर्चस्व वाले सामाजिक मूल्यों से नारी के मूल्य निर्धारण को ही वस्तुतः शरत्चंद्र सारे दुख और सामाजिक अनौचित्य का मूल कारक मानते हैं।

अपने उपन्यासों में शरत्चंद्र प्रायः ही 'नारीत्व' और 'सतीत्व' को आमने-सामने रखकर सतीत्व की अपेक्षा नारीत्व के पक्ष में खड़े दीखते हैं। सतीत्व को पुरुष-वर्चस्व से जोड़कर वे टिप्पणी करते हैं : ''सतीत्व से बढ़कर नारी के लिए और कोई गुण नहीं हो सकता। सभी देशों के पुरुष इस बात को समझते हैं क्योंकि पुरुषों के लिए यही सबसे अधिक उपादेय सामग्री है और अपने स्वामी की आज्ञा से बाहर होकर, फिर चाहे वह कितना ही बड़ा अत्याचारी क्यों न हो—मन-ही-मन उसे तुच्छ समझने और उसकी अवहेलना करने से बढ़कर उनके लिए और कोई दोष नहीं है...'' (वही, पृ. 604) परिवार और समाज में पूजा का पात्र बनने वाली स्त्री, जो निपुणिया के प्रसंग में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की चिंता है, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के कारण अबाध पीड़ा झेलने को अभिशप्त है।

अपने साहित्य में शरत्चंद्र सामाजिक संरचना में स्त्री के दुख को गहरी सहानुभूति से देखते हैं लेकिन पुरुष वर्चस्व वाले इस तंत्र को कहीं वे कोई बड़ी चुनौती नहीं देते। विधवा विवाह के समर्थन में रवींद्रनाथ उनसे अधिक उदार हैं। शरत्चंद्र के उपन्यास *पल्ली समाज* के बारे में कहा जाता है कि पत्रिका में धारावाहिक प्रकाशन के बाद किसी पाठक ने झुंझलाकर उन्हें पत्र लिखा कि उसमें रमा और नरेंद्र का विवाह उन्होंने क्यों नहीं कराया है? पाठक को उत्तर देते हुए शरत्चंद्र ने लिखा था : ''यह कोई मुश्किल काम नहीं था। अंत की आठ पंक्तियाँ बदलने से ही आसानी से इसे किया जा सकता था। लेकिन तब शायद इस सामाजिक व्यवस्था के प्रति पाठकों के मन में वह कचोट पैदा नहीं होती जिसके कारण ही उस पाठक ने अपनी खीझभरी प्रतिक्रिया उन्हें लिखी थी। कलात्मकता के आग्रह की दृष्टि से यह तर्क ठीक हो सकता है लेकिन सामाजिक परिवर्तन में विचार की भूमिका के लिहाज़ से यह संदिग्ध ही माना जाएगा।''

सतीत्व की अपेक्षा नारीत्व के समर्थन के बावजूद शरत्चंद्र प्रेम में देह की भूमिका को सामान्यतः अस्वीकार करते हैं। उनके उपन्यासों में *गृहदाह* और *चरित्रहीन* ही ऐसे हैं जिनकी नायिकाएँ, अचला और किरणमयी परिस्थितियों एवं भावावेग से परास्त होकर अपने प्रेमी-पुरुषों को अपना शरीर सौंपती हैं। लेकिन इसके बाद पश्चात्ताप और सामाजिक-नैतिक प्रतिक्रिया का बोध उन्हें कभी पहले जैसी शांत, निरुद्वेग और प्राकृतिक अवस्था में नहीं लौटने देता। उनकी प्रायः सभी नायिकाएँ और जब-तब सव्यसाची और विप्रदास जैसे नायक भी, अपने प्रेम को अभिव्यक्त और गोपन रखते हैं—अपने प्रेम पात्रों सुमित्रा और वंदना को भी जैसे वे इससे अनजान बनाए रखते हैं। श्रीकांत तो राजलक्ष्मी के प्रसंग में स्पष्ट स्वीकार करता है कि सच्चा और गंभीर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेम पास ही नहीं खींचता, दूर भी ठेल देता है। शरत्चंद्र के यहाँ प्रेम उत्सर्ग और आत्मदान का मामला है, जिसे द्विवेदी जी दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर दे देने की बात जब-तब दोहराते देखे जाते हैं। शरत्चंद्र चंद्रमुखी, राजलक्ष्मी, सावित्री आदि समाज द्वारा अभिशप्त एवं पीड़ित स्त्रियों को नायिका का गौरव देते हैं, प्रेम जिनके आत्मोत्सर्ग और आत्मदान की राह खोलता है। प्रेम और लोकापवाद और लोक-निषेध से अनुशासित-नियंत्रित है। प्रेमी-पुरुष की चिंता और सेवा में ही वह पूर्ण तृप्त और पूर्ण काम है। आँचल झलते हुए अपने प्रेमी-पुरुष को भोजन कराना और हारी-बीमारी में सेवा-जतन द्वारा उसकी निकटता का सुख इस प्रेम की चरम उपलब्धि है।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के सर्वाधिक प्रिय कवि कालिदास और बाणभट्ट हैं। अपने उपन्यासों में रूप और सौंदर्य के बखान के लिए यदि वे इन कवियों की ओर देखते हैं तो उनमें भाव तंरगें एवं शील शरत्चंद्र की नायिकाओं से आता है। देह से आकृष्ट होकर भी वे देह पर रुकते नहीं हैं। पूरी उत्कटता से अपनी ओर खींचने वाली देह अंततः उनके यहाँ पार्वती की तपस्या में ढलकर सामाजिक विधान में सहायक होती है। कालिदास के *कुमार संभव* के आठवें सर्ग की शिव के साथ आकंठ केलि-क्रीड़ा में डूबी पार्वती नहीं बल्कि प्रिय के लिए शिव की कठोर तपस्या में डूबी पार्वती ही उसकी काम्य है जिसके लिए प्रेम में कोई उत्सर्ग असाध्य और अकल्पनीय नहीं है।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की नायिकाओं के सौंदर्य एवं रूपांकन के कुछ प्रतिनिधि उदाहरण ये हैं :

> इसी समय उस राजकन्या ने वीणा बजाना शुरू किया। धीरे-धीरे वह अत्यंत तन्मय हो गई। मैंने इस बार स्वाभाविक संकोच छोड़कर उस कमनीयता की मूर्ति की ओर देखा। उसको देखकर अत्यंत पतित व्यक्ति के हृदय में भक्ति उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। उसके सारे शरीर से स्वच्छ कांति प्रवाहित हो रही थी। अत्यंत धवल प्रभा-पुंज से उसका शरीर एक प्रकार ढका हुआ-सा ही जान पड़ता था, मानो वह स्फटिक गृह में आबद्ध हो, या दुग्ध-सलिल में निमग्न हो, या दर्पण में प्रतिबिंबित हो या शरद्कालीन मेघ-पुंज में अंतरित चंद्रकला हो। उसकी धवल कांति दर्शक के नयन-मार्ग से हृदय में प्रविष्ट होकर समस्त कलुष को धवलित कर देती थी, मानो स्वर्मंदाकिनी की धवल धारा समस्त कलुष कालिमा का क्षालन कर रही हो।...मानो विधाता ने शंख से खोदकर, मुक्ता से खींचकर, मृणाल से सँवारकर, चंद्रकिरणों के कूचक से प्रक्षालित कर सुधा चूर्ण से धोकर, रजत-रज से पोंछकर, कुटज, कुंद और सिंधुवार पुष्पों की धवल कांति से सजाकर ही उसका निर्माण किया था।
>
> — *बाणभट्ट की आत्मकथा*, संस्करण 69, पृ. 41

> कौन कहता है देवि, तुम सामान्य ऋषीबल-किशोरिका हो? यह उन्नत ललाट, यह कुंचित केश-राशि यह दक्षिणावर्त रोम-रात्रि और यह तिल पुष्प के समान नासिका और धनी भृकुटियों के नीचे सघन अराल-रेखा—यह तुम्हें सामान्य नारी नहीं रहने देंगी। यह गंगा-प्रवाह के समान सीमंत रेखा और किसी को भले ही धोखा दे ले, मुझे नहीं दे सकती। लेकिन तुम रानी से भी बड़ी होने के लिए पैदा हुई हो।
>
> — *चारु चंद्रलेख*, संस्करण 73, पृ. 21

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उस दिन उसकी संपूर्ण देहलता किसी निपुण कवि द्वारा निबद्ध छंदोधारा की भाँति लहरा रही थी, द्रुत-मंथर गति अनायास विविध भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त कर रही थी मानो किसी कुशल चित्रकार द्वारा चित्रित कल्पवल्ली ही सजीव होकर थिरक उठी हो, उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें कटाक्ष-विक्षेप की घूर्णमान परंपराओं का इस प्रकार निर्माण कर रही थीं जैसे नील कमलों का चक्रवाल ही चंचल हो उठा हो, शरत्कालीन चंद्रमा के समान उसका मुखमंडल चारियों के वेग से इस प्रकार घूम रहा था कि जान पड़ता था शत-शत चंद्रमंडल की आरात्रिक प्रदीपों की अराल-माला में गुँथकर जगर-मगर दीप्ति उत्पन्न कर रहे हों। उसकी नृत्य भंगिमा से नाना स्थिति की भाव मुद्राएँ अनायास निखर उठी थीं। उसके कंधे के नीचे मृणाल-कोमल भुज-युगल सुकुमार-संग्रथित द्विपदी खंड के समान भाव-परंपरा में वलयित हो उठते थे। वस्तुतः पूर्वानिल के झोंकों से झूमती हुई शतावरी लता के समान उसकी संपूर्ण देह-वल्लरी ही भावोल्लास की तरंग से लीलायत हो उठी थी। ऐसा लगता था वह छंदों से ही बनी है, रागों से पल्लवित हुई है, तानों से सँवारी गई है और तालों से ही कसी गई है।

—*पुनर्नवा*, संस्करण 73, पृ. 12

मैं इन्हें ही महाभागा शुभा कहता हूँ। इन्होंने ही मुझे ज्ञान का मार्ग दिखाया है। मैं इस शोभन मुख की उपेक्षा नहीं कर सकता। मैं तो इसके उपोद-ग्रहण-मात्र से कृतार्थ हूँ। ज्ञान का अंश मात्र भी मैं नहीं जानता। जानता हूँ केवल इस मुख की अपूर्व उद्ग्राहिका शक्ति। इस मोहन मुख की सभी आज्ञा मेरे लिए श्रुति-वाक्य के समान है। मैं सेवाव्रती हूँ, इनका मार्गदर्शन पाऊँ तो असाध्य-साधन कर सकूँगा।

—*अनामदास का पोथा*,
संस्करण 76, पृ. 183

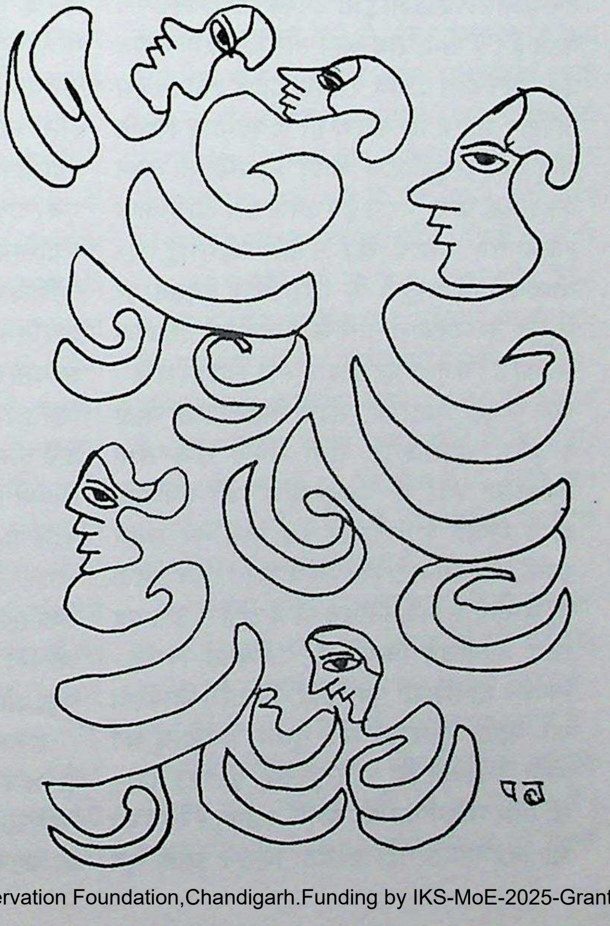

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन उद्धृत अंशों के विश्लेषण से द्विवेदी जी की सौंदर्य-दृष्टि के संबंध में कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उनकी नायिकाओं में, भट्टिनी और मंजुला की तरह, भारतीय कला-विनोद-वीणा-वादन और नृत्य उनके व्यक्तित्व का एक विशिष्ट अंग है। इससे उनके व्यक्तित्व को एक मनोहारी पूर्णता प्राप्त होती है। इन कलाओं के सहयोग से उनके सौंदर्य में एक अद्‌भुत दीप्ति का सम्मिलन होता है जो उनके रूप को पवित्र, उदात्त और गहराई से अपनी ओर खींचने की शक्ति देती है। उसका प्रभाव क्षणभर को दर्शक-श्रोता की इंद्रियों को सुप्त ही नहीं करता, उसे जैसे एक दूसरे लोक में भी ले जाता है। संस्कृत काव्य की नायिकाओं की तरह द्विवेदी जी अनेक उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं द्वारा उनका सौंदर्य निरूपण करते हैं। वे प्रायः सब कहीं उस सौंदर्य के उदात्त एवं शमनकारी प्रभाव पर बल देते हैं। अपने इस अपरूप सौंदर्य के कारण ही वे सामान्य स्थिति से उठकर समूचे जीव-जगत को प्रभावित करने की शक्ति प्राप्त करती हैं। उनके इस अलौकिक लोकातीत सौंदर्य का प्रभाव बाणभट्ट पर वीणावादिनी भट्टिनी के और आर्य देवरात पर मंजुला के मनोहारी नृत्य के प्रभाव को देखा जा सकता है। मंजुला का नृत्य समाप्त होते ही सभा-कक्ष में एक प्रकार की मादक विह्वलता छा जाती है और महाराज के साथ संपूर्ण राज-सभा उल्लसित स्वर में 'साधु-साधु' की हर्षध्वनि करने लगती है। लेकिन इस नृत्य का सबसे स्पष्ट और भिन्न प्रभाव आर्य देवरात पर पड़ता है, वस्तुतः जिनके निमित्त ही मंजुला ने जैसे यह सारा आयोजन किया था, ''देवरात निर्वात-निष्कंप दीपशिखा की भाँति, निस्तरंग जलाशय की भाँति, वृष्टिपूर्व घन-घुम्मर मेघमाला की भाँति स्थिर बने रहे...'' (*पुनर्नवा*, पृ. 12) नारी-श्री और सौंदर्य का यह प्रभाव ऋषिपुत्र रैक्व को भी अप्रभावित नहीं छोड़ता जिसने इसके पूर्व कभी स्त्री को देखा ही नहीं है क्योंकि उसके जन्म के बाद ही उसकी माँ का निधन हो गया था। उस सुप्त और अचेत पड़ी राज-कन्या जाबाला के नेत्रों को देखकर उसे भ्रम होता है कि उन्हें किसी मृगी के मुख पर से निकालकर दूसरी जगह चिपका दिया गया है। उन नेत्रों के चारों ओर उँगली फिराकर जैसे वह अपने भ्रम का निवारण करना चाहता है। यह अपरूप सौंदर्य ही उसके लौकिक ज्ञान का मूल उत्स बनता है। उसका मार्ग-दर्शन पाकर ही वह अपने सेवा-व्रत में असाध्य-साध्य के संकल्प को प्रेरित होता है।

अपने अपरूप सौंदर्य के बीच द्विवेदी जी की ये नायिकाएँ बड़ी संख्या में सामंती-समाज का हिस्सा होने पर भी, जैसे विलास की सामग्री मात्र नहीं हैं। विलास और भोग-लिप्सा के प्रतिरोध में खड़ी वे तेजस्वी स्त्रियाँ हैं—लोभ और सांसारिक वैभव के प्रति निर्लिप्त और उदासीन। शरत्‌चंद्र के *शेष प्रश्न* की कमल और *पथेरदावी* की सुमित्रा ऐसी ही रूप संपन्न स्वाभिमानी स्त्रियाँ हैं। कमल को तो मानो विधाता ने शिशिर-धौत-पद्‌म से गढ़ा है। सुमित्रा अपने अप्रतिम रूप और गरिमापूर्ण व्यक्तित्व से सव्यसाची जैसे क्रांतिकारी को भी अप्रभावित नहीं छोड़ती। लेकिन उनका यह अपरूप सौंदर्य उन्हें कृच्छ्र-साधना से विरत नहीं करता। लौकिक साधनों की संभावित विपुलता और समृद्धि के बीच वे न सिर्फ़ उनकी ओर से उदासीन हैं, अपार पीड़ा और कष्ट सहन को ही जैसे उन्होंने, एक स्टोइक दर्शन के रूप में, अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाकर उसी के अनुरूप अपने को गढ़ा और ढाला है।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की प्रेम-दृष्टि पूरी तरह से भाव-वादी है। उनके यहाँ प्रेम में प्रतिदान नहीं समर्पण की भूमिका ही मुख्य है। श्री हर्ष के नाटक '*रत्नावली*' में वासवदत्ता की भूमिका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में निपुण कर अपने को नि:शेष-भाव से समर्पित कर देती है। आचार्य वाभ्रव्य से उसने सुना था कि 'अपने को नि:शेष भाव से दे देना ही वशीकरण है' और यही वह करती है। वासवदत्ता की उसकी भूमिका के चुनाव का रहस्य भी वस्तुत: अभिनेता और पात्र के बीच का साम्य ही था। इसी के आधार पर उसे परकाया प्रवेश की सुविधा और अपनी भूमिका को जीवंत कर देने की संभावना दिखाई देती है। बाणभट्ट स्वयं भट्टिनी के संरक्षक के रूप में अपनी भूमिका शुरू करता है। फिर गहरे संभ्रम और समादर भाव से धीरे-धीरे प्रेम के लोक में प्रवेश करता है। उनका सारा प्रेम इंगितों और अलौकिक अनुभूतियों के बीच घटित होता है। भट्टिनी के जीवन और सम्मान के रक्षार्थ बाणभट्ट अपने प्राणों की चिंता छोड़ देता है। प्रतिदान और प्रतिकार की बात सोचकर वह भट्टिनी के प्रति अन्याय नहीं करना चाहता।

बाणभट्ट जब पृथ्वी से जानकी और हिमालय से पार्वती के समान ही देवपुत्र तुवर मिलिंद के योग्य ही उनकी कन्या की धीरता और मानसिक आवेगों को संयत रखने की बात कहकर उसकी स्तुति करता है तो भट्टिनी को उसे टोकना पड़ता है। बाणभट्ट को लगता है जैसे पार्वती ही किसी भक्त की स्तुति को सुनने के लोभ से क्षणभर रुक गई हों। फिर वह इसका प्रतिवाद करते हुए बाणभट्ट के इस उत्तरल भाव को नियंत्रित करने को कहती है, "मैं देवी नहीं हूँ। हाड़-मांस की नारी हूँ। मैं विघ्न-स्वरूप हूँ, परंतु मैं जानती हूँ कि मेरा विघ्न स्वरूप होना ही विश्व का परित्राण है...मैं हूँ चंद्रदीधिति—सौ-सौ बालिकाओं के समान एक सामान्य बालिका! मैं हूँ तुम्हारी भट्टिनी..." (*बाणभट्ट की आत्मकथा*, संस्करण, 69, पृ. 194) लेकिन अपनी बात वह पूरी नहीं करती। बीच में ही अकस्मात् रुककर, वाष्परुद्ध कंठ से, सिर्फ़ यही दोहराते हुए कि वह देवी नहीं है वह बाणभट्ट से प्रसाद लेने का आग्रह करती है। प्रत्यक्ष रूप से प्रसाद पूजा का होने पर भी, इसमें प्रेम के 'प्रसाद' की व्यंजना को मढ़ा जा सकता है। अपांग, स्मित और मौन संक्रेतों के बीच ही यह प्रेम पलता और बढ़ता है। बाणभट्ट की ज़िद और आग्रह से परास्त होकर भट्टिनी अंतत: उसे अपने को 'देवी' मानने की छूट देती है और फलस्वरूप, मधुर स्मिति के साथ, प्रसाद की थाली में से अपना बनाया मिष्ठान उसे देकर प्रकारांतर से जैसे उसकी निगूढ़, मौन और अव्यक्त भावना का प्रतिदान ही उसे देती है।

भट्टिनी की अंतर्छवियाँ और चरित्र में घटित परिवर्तन स्वयं बाणभट्ट को जटिल और अव्याख्येय लगते हैं। छोटे महाराज के अंत:पुर में बंदिनी भट्टिनी, चंडी-मंडप में कुमार कृष्ण वर्धन का आश्रय लेने से स्पष्ट इनकार के बाद वाणबिद्ध मृग के समान करुण मुखच्छवि वाली भट्टिनी और अंतिम बार गंगा की धारा से निकली उसकी वह शिथिल श्रांत मनोहर शोभा जो वराह के दाँत पर बैठी धरित्री को अपने धैर्य और गांभीर्य से पराभूत कर रही थी। भट्टिनी के चेहरे पर आई हल्की-सी मुस्कान, उद्वेग और चिंता के बीच संतोष के कुछ पल, बाणभट्ट के संरक्षण में अपने को सुरक्षित मानने की उसकी प्रतीति—कवि को अपना जीवन सार्थक मानने को पर्याप्त है। दुर्बल शरीर लेकर बाहर खुले में बैठने पर अपने प्रति भट्टिनी की आत्मीय चिंता उसके मन में यह शंका भी जगाती है कि आख़िर उनमें से कौन किसका अभिभावक है।

निपुणिका के अवसान के बाद भट्टिनी बाणभट्ट से अपने साथ रहने का आग्रह करती है। इस आदेश पर उल्लसित होकर वह भट्टिनी के साथ-साथ उसके महावराह को भी प्रणाम करता है। लेकिन निपुणिका का श्राद्ध संपन्न होते ही आचार्य भवुर्पाद उसे पुरुषपुर जाने का आदेश देते हैं। इस बीच भट्टिनी को स्थाणीश्वर में ही रहना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होगा। इस आदेश को सुनकर भट्टिनी का चेहरा विवर्ण पड़ जाता है। झुकी हुई आँखों और आँसुओं से गीले कंठ से वह बाणभट्ट से सिर्फ़ जल्दी लौटने का अनुरोध ही कर पाती है। अपने वाष्परुद्ध कंठ को बाणभट्ट गंभीर प्रयत्न के बाद ही दबा पाता है। उसके अंदर कहीं शंका जागती है— अब क्या फिर मिलना होगा? भट्टिनी के प्रति बाणभट्ट का सारा निगूढ़, गोपन और अंतरंग भाव और भट्टिनी का प्रतिदान अंत के इन चंद संकेतों में भी अपनी पूर्णता प्राप्त करते हैं।

समाज के लांछित-प्रताड़ित वर्ग से आई स्त्रियों में आत्म-त्याग और आत्मविसर्जन की यह भूमिका एक तरह से हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के परवर्ती उपन्यासों का ढाँचा तैयार करती है। *चारु चंद्रलेख* में रूक्षवेश तापस राजा सातवाहन के स्वप्न में भविष्यवाणी करते हुए कहता है कि प्रेम में अंतरतम अकारण सहस्र धाराओं में क्षरित होकर गल जाने की चाह ही वस्तुत: आत्मदान का ही एक रूप है। यहाँ भी प्रेम अपेक्षा और प्रतिदान से ऊपर है। भट्टिनी की तरह रानी चंद्रलेखा भले ही अभिजात वर्ग से आई हो, मैना और नाटी माता उसी वर्ग की स्त्रियाँ हैं जिसे समाज प्राय: ही सम्मान से नहीं देखता। वे नीचे से ऊपर की ओर उठती और बढ़ती हैं। नाटी माता का शरीर जैसे छंदों से बना है। आज भी वे नागर-नटी हैं। राधा-भाव में वे चिरंतन प्रेमिक को चिरंतन प्रेमिका के आत्मार्पण में समर्थ हैं। मैना डेढ़ वर्ष की अवस्था में देवदासी के रूप में मंदिर को दे दी जाती है। वहाँ से लाकर अपने आश्रम में नाटी माता उसका लालन-पालन करती हैं, जो कभी स्वयं कारू नटी के रूप में महाराज जयत्रिचंद्र की राजनर्तकी रह चुकी हैं। अपने लांछनापूर्ण अतीत से मुक्त होने की चेष्टा में वे धर्म और समाज में व्याप्त अनाचारों के उच्छेदन के लिए आश्रम चलाकर मैना जैसे असहाय और निराश्रित लोगों को दीक्षित करती हैं। भले ही राजा को जब-तब उनके प्रसंग में कालिदास याद आते हों, शरत्‌चंद्र की अनेक नायिकाओं की तरह यह वस्तुत: गंदगी से आने पर भी उससे मुक्त गरिमा और मर्यादा के साथ जीवन साधने और ढालने वाली दृष्टि है। बोधा प्रधान की प्रेरणा से मैना पुरुष वेश में, मैन सिंह के रूप में सैन्य संगठन करती है और राजा सातवाहन की सुरक्षा का दायित्व सँभालती है। एक भिन्न सामाजिक स्तर से आने पर भी अपनी प्रेमाभिव्यक्ति में मैना, पहले बोधा प्रधान और फिर सातवाहन के प्रति मौन और निगूढ़ ही बनी रहती है। प्रेम में दलित द्राक्षा की तरह अपने को निचोड़ देना ही उसका आदर्श है। राजा सातवाहन को देखकर पहली नज़र में ही उसे लगता है कि उसकी खोज सार्थक हुई है। अपने को नि:शेष भाव से उड़ेल देना ही उसके राग-भाव की पराकाष्ठा है। राजा सातवाहन, रानी चंद्रलेखा और मैना के रूप में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जिस प्रतीक-त्रिभुज की परिकल्पना करते हैं, राजा के ज्ञान शक्ति और रानी की इच्छा शक्ति के साथ मैना क्रिया शक्ति का प्रतीक बनकर सबसे अधिक सक्रिय और कर्मठ है। राजा के प्रति अपने प्रच्छन्न राग-भाव के रहते जब-तब उनकी सेवा में उससे कुछ प्रमाद भी असंभव नहीं है। उसके इसी 'प्रमाद' पर नाटी माता राजा के समक्ष किंचित् उलाहने की मुद्रा में कहती हैं, ''मुझे भय लगता है कि उसकी सेवा में मोह है, प्रतिदान की आकांक्षा है, इसीलिए उसमें झिझक है, कुंठा है। व्रीड़ा तक तो ठीक है, पर कुंठा क्यों होगी?'' (*चारु चंद्रलेख,* संस्करण 73, पृ. 278) इस प्रसंग में राजा की चुप्पी पर नाटी माता उसे जैसे कुछ कहने को उकसाती हैं। अपने मोह और कुंठा को स्वीकार कर राजा मैना को बचाना चाहता है। लेकिन चुप रहकर भी नाटी माता द्वारा उसकी ओर घूरने से बहुत कुछ कह दिया जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुनर्नवा में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी शरत्चंद्र की तरह सतीत्व बनाम स्त्रीत्व की बहस छेड़ते दिखाई देते हैं और शरत्चंद्र की ही तरह निर्णय स्त्रीत्व के पक्ष में देते हैं। संसार की दृष्टि में चंद्रा 'हैंछी'—असती—है। अपने विवाहित पति को छोड़कर वह गोपाल आर्यक का वरण करती है। वह अपहृता, घर्षिता और परित्यक्ता स्त्री है, समाज में जिसकी कोई जगह नहीं होती। गोपाल आर्यक के प्रति वह विवाह के पहले से ही आसक्त है जबकि पिता द्वारा उसका विवाह अन्यत्र कर दिया जाता है। गोपाल आर्यक को वह भूल नहीं पाती और अपनी इस दृढ़ता के कारण न सिर्फ़ गोपाल आर्यक उसे मिलता है, उसकी पत्नी मृणाल का प्रेम और आदर भी उसे प्राप्त होता है। इस तरह गोपाल आर्यक उसका शास्त्रविहित नहीं मनोवृत्त पति है। चंद्रा के प्रेम की उत्कटता पर स्वयं लेखक की टिप्पणी है : "'चंद्रा' उद्वेल प्रेम है। प्रेम, जो सीमा नहीं जानता, उचित-अनुचित का विवेक नहीं रखता, जो सदा उफनता ही रहता है। चंद्रा का प्रेम एक भयंकर बुभुक्षा है, एक सतत अतृप्त पिपासा..." (*पुनर्नवा,* संस्करण 73, पृ. 107) वह अपने प्रेम पर लज्जित नहीं होती। आरोपित और अनिच्छित सतीत्व का चोला उतारकर वह स्त्रीत्व का वरण करती है। सम्राट भी उसके किसी इंगित की उपेक्षा नहीं कर सकते। हलद्वीप के राजा रूद्रसेन पर आक्रमण का अवसर अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें उसी की कृपा से मिलता है। उन्माद, आवेश और समर्पण उसकी पहचान है। आवेश में वह प्रायः ही मृणाल को आलिंगन में भरकर चूम लेती है। गोपाल आर्यक का गोद का बेटा अपनी माँ से भी अधिक उससे हिला है। गोपाल आर्यक के प्रति अपनी उत्कट आसक्ति को जैसे वह उसकी पत्नी और पुत्र पर केंद्रित करके सुख पाती है। उसका विश्वास है, "सेवा का पसीना शरीर और मन के सारे कलुष धो देता है..." (वही, पृ. 285) अपने को उदाहरण बनाकर वह प्रमाणित करती है कि अधिकार सेवा से ही मिलता है। थोड़ा अतिरंजित लगने पर भी अपने इसी अधिकार से वह मृणाल में कहीं कोई सौतियाडाह नहीं जगने देती। पति और बेटे के प्रति उसके लगाव के कारण सपत्नी से अधिक वह उसे बहन लगती है।

मंजुला, वसंतसेना और मदनिका-मांदी—उसी वर्ग से आई हैं, कलाएँ जहाँ जीवन का आधार होती हैं। नृत्य करती मंजुला की रूप-राशि का एक चित्र है, "उसकी नृत्य-भंगिमा से नाना स्थिति की भाव मुद्राएँ अनायास निखर उठी थीं। उसके कंधे के नीचे मृणाल-कोमल भुज-युगल सुकुमार-संग्रथित द्विपदी खंड के समान भाव-परंपरा में वलयित हो उठते थे। वस्तुतः पूर्वानिल के झोंकों से झूमती हुई शतावरी लता के समान उसकी संपूर्ण देह-वल्लरी ही भावोल्लास की तरंग से लीलायित हो उठी थी। ऐसा लगता था, वह छंदों से ही बनी है, रागों से पल्लवित हुई है, तानों से सँवारी गई है और तालों से ही कसी गई है..." (वही, पृ. 12) समूची सभा चित्रलिखित-सी उसके तालानुग उत्ताल नर्तन का आनंद लेती हैं और नृत्य समाप्त हो जाने के बाद भी एक प्रकार की मादक विह्वलता छायी रहती है। संसार से वीतराग बने आर्य देवरात भी निर्वात-निष्कंप दीपशिखा की भाँति उसकी कला में खोए रहते हैं। कला के प्रति अपनी अगाध निष्ठा से उत्पन्न आत्म विश्वास से दीप्त मंजुला उनकी ओर गर्व से देखती है। उसके इस प्रकार देखने में ही जैसे उसके उस मौन और प्रच्छन्न प्रेम की अभिव्यक्ति है जिसे चाहकर भी वह कभी व्यक्त नहीं कर सकी। लेकिन इससे प्रेम की प्रगाढ़ता कम नहीं होती। अपनी एक मात्र संतान मृणाल को वह आर्य देवरात के संरक्षण में छोड़कर ही शांतिपूर्वक अपना प्राण त्याग करती है। अपने जिस पाप-जीवन को लेकर वह उनके प्रति सकुंचित होती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है उससे उसे मुक्त कराने के लिए ही वे उस जीवन को मनुष्य-कृत सामाजिक व्यवस्था से जोड़कर देखे जाने पर बल देते हैं। कोई बाहरी शक्ति नहीं, अंतर का देवता ही उसका उद्धार कर सकता है और वह देवता जैसे उसे मिल गया है।

वसंतसेना शूद्रक के *मृच्छकटिक* की परिचित नायिका है। चारुदत्त से उसके प्रेम की कहानी लोक-गाथाओं का विषय बन चुकी है। गणिका होने से ही क्या होता है, उसके समान पतिव्रता मिलना दुर्लभ है। उसके बारे में प्रचलित है :

पूजनीय दुइ ही यहाँ, नगरी-तिलक ललाम।
यह वसंत सेना सती, चारुदत्त गुनधाम।

शार्विलक को वसंतसेना की दासी के रूप में अनायास मिली मदनिका उसकी पूर्व-परिचित माँदी ही है। परिहास में कभी उसकी मुँहलगी भाभियाँ उसे उसके सामने ला खड़ा करती हैं— अनसूँघे फूल के रूप में। तब का वह छबीला ही आज महामल्ल-शार्विलक है। माँदी का पता लगाने के लिए ही वह दर-दर भटकता रहा है। उसके प्रेम में उसकी दशा शंख की चूड़ी बनाने वाली आरी की तरह है जो अंदर जाते हुए भी काटती है और बाहर आते हुए भी। माँदी को भूलने की कोशिश में भी वह दुख पाता है और याद करने की कोशिश में भी। माँदी श्रावस्ती के पास किसी ग़रीब ब्राह्मण-परिवार की कन्या है। घर से निकाल दिए जाने पर वह नटी-दल में शामिल हो गई थी। चौधरानी उसे किसी वेश्या के हाथों बेचकर अच्छी कमाई की जुगत में थी। जिस चौधरी जंभल के यहाँ श्याम रूप-छबीला-शरण लिए है, वह भी विपदा की मारी वधुओं को ठिकाने लगाने का काम करता है। श्यामरूप ने पहली बार माँदी को हल्की-सी सफ़ेद साड़ी में देखा था। उसके प्रफुल्ल चंपक के समान मुख पर झीना-सा घूँघट था। श्याम रूप को देखकर उसकी चंचल हो उठी आँखों ने जैसे बिना कहे ही सब कुछ कह दिया था। उसके बाद श्याम रूप वह नहीं रहता, जो वह था।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि प्रेम और सौंदर्य के प्रति मनुष्य का स्वाभाविक और निसर्ग सिद्ध आकर्षण है। समूचे ब्रह्मांड में, नरलोक से लेकर किन्नर लोक तक इनकी सत्ता से कोई अप्रभावित नहीं है। *अनामदास का पोथा* के ऋषिकुमार रैक्व को आश्रम में कभी किसी स्त्री को देखने का अवसर नहीं मिला। उसके होश सँभालने से पहले उसकी माँ का निधन हो गया था। आँधी-तूफ़ान में हतचेत और अस्त-व्यस्त कपड़ों में राजकुमारी जाबाला उसे देवलोक का कोई प्राणी जैसी लगती है। उसे देखकर वह स्तंभित हो जाता है। अपनी पीठ पर उसे बिठाकर कहीं भी पहुँचा देने के प्रस्ताव में भी उसे कोई संकोच नहीं होता। *अनामदास का पोथा* द्विवेदी जी के अन्य उपन्यासों की तरह प्रेम की केंद्रीय स्थिति का आख्यान नहीं है। तप और तपस्या को जन-सेवा के रूप में ग्रहण किए जाने पर ही उसका विशेष बल है। लेकिन रैक्व-जाबाला के प्रेम की परि-समाप्ति मिलन में होती है—विधिवत गार्हस्थ जीवन में प्रवेश से। जटिल मुनि भले ही प्रेम और विवाह के अनुभव से अछूते हों, अपनी माँ के हवाले से 'काम' और 'प्रेम' का अंतर वे समझते हैं। वे कहते हैं, ''मेरी माता जी ने बताया था कि किसी तरुणी की ओर आकृष्ट होना 'काम' है। और उसके लिए अपने आप को निछावर कर देने की भावना 'प्रेम' कही जाती है। माता जी ने कहा था कि तुम कभी काम-भावना से किसी तरुणी की ओर आकृष्ट न होना, परंतु यदि तेरे चित्त में प्रेम का उद्रेक हो तो उसे पाप न समझना। काम आध्यात्मिक विकास का बाधक है जबकि प्रेम उसका उन्नायक है...'' (*अनामदास का पोथा,* संस्करण 76, पृ. 174) रैक्व आकर्षण से प्रेम तक की यात्रा पूरी करता है और प्रेम को तप में बदलता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्त्री और प्रेम विरोधी भारतीय समाज में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी प्रेम को परम पुरुषार्थ के रूप में चिह्नित करते हैं। प्रेम मनुष्य को पशु-सुलभ धरातल से ऊपर उठाकर देवत्व की प्रतिष्ठा करता है। प्रेम को अनीतिकारी और समाज विरोधी मानकर वे कहीं उसकी भर्त्सना नहीं करते। उनके यहाँ प्रेम में आर्येतर परंपराएँ भी सहज ग्राह्य और स्वीकार्य हैं। नारी का मांसल सौंदर्य उन्हें डराता नहीं है। चंडीदास, विद्यापति और सूर की राधा अपने संपूर्ण रूप-वैभव में उन्हें लुभाती और आकृष्ट करती है। कालिदास की पार्वती को वे प्रेम के उच्चतम धरातल पर रखकर देखते हैं जिसमें दुर्लभ और संघर्ष तथा प्रेम ही कमनीय है। मिलन और सौंदर्य के बीच वे वैराग्य की सत्ता को महत्त्व देते हैं। कालिदास के *कुमार संभव* पर उनकी टिप्पणी है : ''त्याग के साथ ऐश्वर्य और तपस्या के साथ प्रेम का मिलन होने पर ही स्त्री और पुरुष का प्रेम धन्य होता है। कालिदास ने इस महाकाव्य में दिखाने का प्रयत्न किया है कि त्याग और भोग के सामंजस्य से ही जीवन चरितार्थ होता है। एकांत वैराग्य आसुरी शक्ति का दमन नहीं कर सकता। भोग और वैराग्य के यथोचित सामंजस्य में ही जीवन की सार्थकता है। जो प्रेम केवल शारीरिक आकर्षण पर निर्भर होता है, वह क्षण स्थायी होता है। जब तक वह तपस्या की अग्नि में तपकर नहीं निकलता तब तक वह वंध्य है, निष्फल है। पार्वती का जीवन तपस्या और प्रेम का सामंजस्य है, शिव का भोग और वैराग्य का। कामदेव जड़ शारीरिक विषयों के आकर्षण का अधि देवता है। सच्चा प्रेम और गहराई में पलता है।...'' (*कालिदास की लालित्य योजना*, संस्करण 70, पृ. 26)

कालिदास के ही *रघुवंश* के प्रसंग में वे रवींद्रनाथ के उस कथन को उद्धृत करते हैं जिसमें भोग-वैचित्र्य के भीषण समारोह में *रघुवंश* का नक्षत्र ज्योतिहीन हो जाने की बात कही गई है। रवींद्रनाथ इसे अकारण नहीं मानते कि उसका आरंभ दिलीप के त्याग, तपस्या और सेवा से होता है और उसका अंत रघुवंश के अंतिम राजा अग्निवर्ण की विलास लीला से।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की नायिकाएँ पितृ-सत्तात्मक समाज का ही अंग हैं और उस व्यवस्था के कारण वे कम दुख नहीं झेलतीं। लेकिन इसी पितृसत्ता में आर्य देवरात और सुमेर काका जैसे व्यक्ति भी हैं जो प्रेम को निर्बाध स्वीकृति देकर सामाजिक दृष्टि से उसे स्वीकार्य बनाते हैं। प्रेम और सौंदर्य का आदर करने वाला समाज ही वस्तुतः एक गतिशील समाज होता है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी 'विलासिता' और 'कलात्मक विलासिता' के बीच अंतर करते हैं। वे लिखते हैं : ''थोथी विलासिता में केवल भूख रहती है—नंगी बुभुक्षा पर कलात्मक विलासिता संयम चाहती है, शालीनता चाहती है, विवेक चाहती है।'' (*भारत के कलात्मक विनोद*, संस्करण 70, पृ. 2) किसी राष्ट्र के जीवन में इस कलात्मक विलास की अवधि बहुत लंबी नहीं होती। इसीलिए सुंदर की रक्षा करना एक राष्ट्रीय कर्तव्य भी है, ''जो जाति सुंदर की रक्षा और सम्मान करना नहीं जानती वह विलासी भले ही हो, कलात्मक विलास उसके भाग्य में नहीं बदा होता... ।'' (वही) इसी कलात्मक विलास को वे प्रेम का मूलाधार स्वीकार करते दिखाई देते हैं। *पुनर्नवा* में सम्राट समुद्र गुप्त विदेशी अविचारित स्वैराचार को अपने समाज के लिए घातक समझता है। आज जब देह की मुक्ति में ही स्त्री-विमर्श की सारी संभावनाएँ चूक गई मान ली जा रही हैं, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी में प्रेम और सौंदर्य की प्रकृति उस देहवाद के प्रतिरोध के रूप में भी देखी जा सकती है। जीवन की तरह प्रेम में भी अंश की अपेक्षा वे समग्रता पर बल देते हैं और प्रेम को शील से जोड़कर ही उसकी सार्थकता तलाशते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रंजना अरगड़े

महादेवी की चिंतनात्मक भूमि

महादेवी तथा हज़ारी प्रसाद दोनों के ही शताब्दी वर्ष हैं—2007। अतः यह एक औचित्यपूर्ण अवसर हो सकता है जब इन दोनों की चिंतनात्मक भूमि के विषय में साथ-साथ गंभीर चिंतन किया जाए। विशेष रूप से महादेवी-साहित्य के चिंतन पक्ष पर विद्वानों एवं आलोचकों का एक अबूझ मौन विद्यमान है। गोया उसके होने की, हमारी बुद्धि-चेतना पर कोई स्मृति अंकित ही नहीं है। या फिर हम उनके गद्य स्वरूप में केवल उनके रेखाचित्रों की प्रशंसा करके, उन्हें पाठ्यक्रम में पढ़ाकर उनकी गद्य-प्रशंसा के प्रति अपने दायित्व की इतिश्री मान लेते हैं। हाँ, इधर नारी-विमर्श के कारण अब उनकी *शृंखला की कड़ियाँ* का उल्लेख अवश्य कर दिया जाता है। पुरुष-सत्तात्मक आलोचना के देश में स्त्री-बुद्धि-चेतना की उपेक्षा का यह आदर्श ऐतिहासिक उदाहरण कहा जा सकता है।

महादेवी समग्र के तीसरे खंड में उनका चिंतनात्मक गद्य संकलित है। हो सकता है कि यह मेरा अज्ञान हो परंतु इस पूरे वर्ष में (शताब्दी वर्ष) मैंने इन दोनों (महादेवी तथा हज़ारी प्रसाद) के चिंतनात्मक साहित्य को एक साथ रखकर कहीं चर्चा हुई हो, ऐसा सुना नहीं है। अगर कहीं ऐसा हुआ हो तो यह प्रसन्नता का विषय है।

महादेवी के चिंतनात्मक निबंधों को मोटे तौर पर इन विभागों में बाँटा जा सकता है—संस्कृति, राष्ट्र, भाषा, शिक्षा, मातृभूमि, साहित्य, साहित्यकार और समाज, समाज और जीवन, समय, स्त्री-विमर्श तथा उनके वे कुछ निबंध जो उन्होंने अपने तथा अपने परिवेश के विषय में लिखे हैं। प्रथमतः कवयित्री होने के कारण, महादेवी का गद्य रसात्मक है। लेकिन रसात्मक गद्य कहने का तात्पर्य कहीं पर भी इसकी चिंतनात्मकता को कम करके देखने का उपक्रम नहीं माना जाना चाहिए। हज़ारी प्रसाद के गद्य में अगर लालित्य को हम गुण के रूप में देखते हैं तो ठीक उसी अर्थ में महादेवी के गद्य में रसात्मकता भी, गुण ही समझना चाहिए।

महादेवी के चिंतन के प्रधान बिंदु हैं—संस्कृति, नारी-विमर्श और शिक्षा। संस्कृति तथा शिक्षा के अंतर्गत ही भारतीयता, वाङ्मय,

रंजना अरगड़े का जन्म 1957 में हुआ। कई पुस्तकों का संपादन किया है। लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। कई संस्थाओं से पुरस्कृत हैं। संपर्क : एच-72, सचिन टॉवर्स, सैटेलाइट, अहमदाबाद 380015

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राष्ट्र, राष्ट्रीयता, भाषा, राष्ट्रभाषा आदि का समावेश किया जा सकता है।

"गद्यकार महादेवी के सामने जीवन व जगत की कठोर वास्तविकताएँ ही एकमात्र सत्य का प्रतीक रही हैं। उन्होंने न तो जीवन की कठोरतम सच्चाई की ओर से आँखें मूँदने का प्रयास किया है न ही अन्याय के प्रतिकार के लिए कभी कोई सीमारेखा स्वीकारी है। यदि आज के आलोचक महादेवी को पद्य रचना में आधुनिक मीरा मानते हैं तो उनके गद्यकार के रूप में उन्हें लक्ष्मीबाई का शौर्य भी दिखना चाहिए।" (ओंकार शरद, *महादेवी समग्र,* भूमिका से)

महादेवी के साहित्यिक व्यक्तित्व के एक सिरे पर करुणा है तो दूसरे पर ओज। वे करुणा से ओज की ओर गई हैं। [यह एक अजब संयोग की कहना चाहिए कि निराला ओज से करुणा की ओर गए हैं। (पंत माधुर्य से प्रसाद के बीच रमते रहे हैं तथा जयशंकर प्रसाद, ओज, माधुर्य तथा प्रसाद के बीच रचते रहे हैं।)]

यह संभवतः रुझान का भी प्रश्न हो सकता है या फिर जीवन शैली का। पर जहाँ गंभीर चिंतन से थककर हज़ारी प्रसाद गल्प या गप्प में अपने आपको रमाते हैं और साथ-ही-साथ उन पहलुओं पर भी अपना मत उजागर करना नहीं भूलते हैं जो चिंतन क्षेत्र में छूट गए थे—जैसे नारी। हम यह भी नहीं भूलते कि एक अकेले हज़ारी प्रसाद ही हैं जिन्होंने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में नारियों के योगदान को स-सम्मान दर्ज किया है। *(पृ.-526, हज़ारी प्रसाद ग्रंथावली-3)*। वहीं महादेवी कविता के हार्द को जीवन में घुलाकर, ठोस सामाजिक कार्य करते हुए महत्त्वपूर्ण चिंतनपरक लेख लिखती हैं। लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि इन दोनों रचनाकारों ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय मानस को संस्कारित करने तथा गढ़ने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

महादेवी का गद्य विश्लेषणात्मक है। वह किसी भी मुद्दे पर जब अपना मंतव्य रखती हैं तो उनके पास केवल तर्क ही नहीं, एक निश्चित दृष्टि भी होती है। दृढ़ता उनके गद्य की विलक्षणता है। "उसमें (बौद्ध संस्कृति) और वैदिक संस्कृति में विशेष अंतर है। वैदिक संस्कृति हमारी संस्कृति का उपक्रम न होकर किसी विशाल संस्कृति का अंतिम चरण है और बौद्ध संस्कृति विषम परिस्थिति के भार से दबे जीवन का संपूर्ण प्राण-प्रवेग है, जिसने सभी बाधाएँ तोड़कर बाहर आने का मार्ग पा लिया है। एक में शक्ति का गर्व है, सृजन का ओज है; पर अपनी भूलों से उत्पन्न नम्रता नहीं है, दूसरों की दुर्बलता के प्रति संवेदना नहीं है। दूसरे में मनुष्य की दुर्बलता के परिचय से उत्पन्न सहानुभूति है, जीवन के दुखबोध जनित करुणा है; परंतु शक्ति का प्रदर्शन नहीं है, निर्माण का अहंकार नहीं है।" (पृ.-12, *संस्कृति का प्रश्न, समग्र-3)*

महादेवी का पक्ष यहीं स्पष्ट हो जाता है कि वह उद्धतता तथा अहंकार के स्थान पर विनम्रता तथा शक्ति प्रदर्शन के स्थान पर करुणा का पक्ष लेती हैं। बौद्ध धर्म तथा संस्कृति के प्रति उनके झुकाव का भी यही कारण है।

महात्मा गांधी का महादेवी पर प्रभाव था यह बात इस तरह से प्रकट होती है कि वे भी भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी दृष्टि तथा प्रकृति पर बल देती हैं। हज़ारी प्रसाद में भी यही बात बार-बार आती है। संभवतः जिस प्रकार का हमारा देश था और है, जिसके कारण गांधी जी ने सर्वधर्म समभाव का मंत्र अपनाया था, जो गांधी जी की सर्वधर्म प्रार्थना के माध्यम से उजागर होता है। हमारे इन दो चिंतकों में यही ज़िम्मेदारी भरी दृष्टि दिखाई पड़ती है।

हिंदी साहित्य की भूमिका में जितने विस्तार से हिंदी साहित्य के निर्माण में बौद्ध धर्म और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संस्कृति के योगदान को रेखांकित किया है उस बात को महादेवी भी रेखांकित करती हैं, पर अपने तरीक़े से : ''पराजय के क्षणों में यदि अपना मूल्य बढ़ाने के लिए दूसरे का मूल्य घटा देने की दुर्बलता हममें न उत्पन्न हो गई होती तो बुद्ध और उनके सिद्धांतों से अनुप्राणित संस्कृति को, इतने घने कुहरे ने न ढँक लिया होता।'' (पृ.-14 *करुणा का संदेश वाहक समग्र-3*) कई बार ऐसा लगता है कि महादेवी तथा हज़ारी प्रसाद मिलकर एक पूरे मुद्दे को परिपूर्णता देते हैं। बौद्ध धर्म के जिस ऐतिहासिक पक्ष को हज़ारी प्रसाद अपनी *हिंदी साहित्य की भूमिका* में उजागर करते हैं उसी का तर्क-संगत विश्लेषण और एक विशेष दृष्टि से उसका महत्त्व एवं आकलन महादेवी अपने निबंधों में करती हैं। बुद्ध में कठोर बुद्धिवाद तथा कोमल मानवीय तत्त्व का एक दुर्लभ समन्वय है और यही महादेवी को आकृष्ट भी करता है। इस बात को रेखांकित किया जाना चाहिए कि अगर महादेवी की रचनात्मकता को समझना है तो बुद्ध के इस तत्त्व को भली-भाँति समझ लेना चाहिए। इससे यह कूट भी समझ में आ जाता है कि क्यों महादेवी की कविता में कोमलता है और गद्य में कठोरता। कविता परंपरागत रूप से स्वभावतः कोमल स्वरूपिणी मानी गई है और गद्य का आधार वैचारिकता होने के कारण उसमें कठोरता की उपस्थिति सहज स्वीकृत है। महादेवी के गद्य-पद्य में प्रतीत होते अंतर को इस भूमिका में देखें तो बात स्पष्ट हो सकती है। यहाँ एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि कोई भी विचारधारा कवि अथवा लेखक की रचनात्मकता को कैसे आकार देती है।

लगभग 48 पृष्ठों का 'भारतीय वाङ्मय पर एक दृष्टि' नामक महादेवी का निबंध वैदिक साहित्य से लेकर जयदेव तक के संदर्भों को समेटता है। आज भी साहित्य में यह एक प्रश्न है, एक प्रहेलिका-समान कूट-विचारधारा और सर्जनात्मकता के बीच का द्वंद्व। महादेवी अश्वघोष की चर्चा के दौरान इस बात को बड़ी सुघड़ता से उठाती हैं : ''अश्वघोष के पास कवि का संवेदनशील हृदय भी है और संसार को दुखात्मक और त्याज्य मानने वाला दर्शन भी। सौंदरंद में कवि ने स्वीकार किया है कि सत्य के प्रति लोक का आकर्षण न होने के कारण उसकी सहज संप्रेषणीयता के लिए ही काव्यशैली का प्रयोग किया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि उनके निकट काव्य साध्य न होकर सत्य के वाहक के रूप में साधन मात्र है। काव्य के मूल में धार्मिक उत्साह प्रेरक शक्तियों का कार्य कर सकता है। किंतु किसी धार्मिक उत्साह से काव्य की उत्कृष्टता संभव नहीं होती। इसके विपरीत कभी-कभी ऐसे उत्साह के कारण काव्य अपने सर्वमान्य उन्नत लक्ष्य से च्युत हो जाता है।'' (पृ.-157-8) असल में अश्वघोष के लिए विचारधारात्मक बाधाएँ कई थीं परंतु महादेवी आगे लिखती हैं : ''पर धार्मिक रूढ़ियों और दार्शनिक मान्यताओं के साथ भी बौद्ध अश्वघोष कवि अश्वघोष से परास्त हो जाता है।'' (पृ.-158)

महादेवी ने अपने समय की राजनीतिक विचारधाराओं को बड़ी बारीकी से विश्लेषित किया है। उस समय गांधीवाद तथा साम्यवाद प्रमुख राजनीतिक विचार थे। उनका स्पष्ट मानना था कि श्रेष्ठ साहित्यकार कभी भी किसी राजनीतिक विचारधारा से बँधेगा नहीं। अतः विचारधाराओं ने अपने प्रचार के लिए—''एक विशेष साहित्यिक वर्ग संगठित कर लिया था, जो प्रथम श्रेणी का साहित्य देने में समर्थ न हो सका।'' (पृ.-231) गांधीवाद को महादेवी ने बड़े साफ़ शब्दों में खोलकर बताया है : ''पर गांधीवाद बाह्य दृष्टि से राष्ट्र का संयुक्त मोर्चा है और आंतरिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुनर्जागरण है। इसी से किसी भी विचार का कलाकार एक न एक स्थल पर उसका समर्थक है और किसी-न-किसी अंश तक उससे प्रभावित।'' (पृ.-231) आज राजनीतिक विचारधारा से बँधे या जुड़े रचनाकार उन प्रथम श्रेणी का साहित्य देने में असमर्थ ऐसे रचनाकारों के ही वंशज हैं, ऐसा कहें तो औचित्य-भंग नहीं होगा।

लेकिन फिर भी महादेवी थीं तो गांधीवादी। निम्नलिखित कथन में यह बात स्पष्ट उजागर होती है : ''आज का प्रगतिवाद मार्क्स के वैज्ञानिक भौतिकवाद से प्रभावित ही नहीं, वह काव्य में उसका अक्षरशः अनुवाद चाहता है, अतः साहित्य की उत्कृष्टता से अधिक महत्त्व सैद्धांतिक प्रचार को मिल जाना स्वाभाविक है। गांधीवाद की उदात्त प्रेरणा, छायावाद का सूक्ष्म सौंदर्य, रहस्यवाद का भाव-माधुर्य आदि देखने का उसे अवकाश नहीं, क्योंकि वह राजनीतिक दलों के समान साहित्यकारों का विभाजन कर अपने पक्ष में बहुमत और दूसरे के पक्ष में अल्पमत चाहता है।'' (पृ.-231) इन दोनों विचारधाराओं के साहित्यकारों का महादेवी द्वारा किया विश्लेषण अगर ध्यान से समझेंगे, तो आज का साहित्यिक परिदृश्य समझने में ज़रा भी उलझन नहीं होगी।

उनके इन विचारों को समझ लेने पर आज की राजनीतिक पार्टियों के विकास को भी समझा जा सकता है। कांग्रेस में छिपे हिंदुवाद की स्पष्टता यहाँ मिल जाती है। उसी तरह समान-अधिकार के मुद्दे को जिस दल ने अपने हृदय से लगा रखा है ऐसे साम्यवादी पक्ष को क्यों संपूर्ण जन-विश्वास आज तक नहीं मिला है, उसका कुछ हद तक उत्तर इन पंक्तियों में संभवतः मिल सकेगा : ''उसकी (साम्यवाद की) स्थिति ऐसी ही है जैसे पैराशूट से इस धरती पर उतर आनेवाले विदेशी की हो सकती थी, जिसकी मित्रता में विश्वास करके भी हम जिसके इस देश-संबंधी ज्ञान में संदेह करेंगे, जिसे अपनी संस्कृति और जीवन का मूल्य समझाने का प्रयत्न करेंगे, और न समझने पर खीज उठेंगे।'' (पृ.-231)

विचारधारा और साहित्य का जो प्रश्न है उस पर महादेवी का यह कथन ध्यान देने योग्य है : ''उत्कृष्ट सृजन ही किसी विचारधारा की उत्कृष्टता का प्रमाण है, पर जब वह ऐसा न करके अपने उत्कृष्ट सृजन के लिए दूसरों को नष्ट करने की शर्त सामने रखती है तब स्वयं अपनी हार मान लेती है। छायावाद की चिता चुन जाने पर ही नए काव्य को सुंदर शरीर प्राप्त हो सकेगा, सजीव गांधीवाद की शव-परीक्षा हो जाने पर ही नवीन साहित्य की प्राण-प्रतिष्ठा होना संभव है, ऐसी धारणाएँ शक्ति से अधिक दुर्बलता की परिचायक तो हैं ही, साथ ही वे एक अस्वस्थ मानसिक स्थिति का परिचय देती हैं।'' (पृ.-232) महादेवी ने प्रगतिशील चिंतन द्वारा हुई साहित्यिक क्षति का आकलन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि चूँकि हमारे सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति इस विचारधारा के पास कोई स्पष्ट दृष्टिकोण नहीं था अतः नए युग में कुछ इस तरह के तर्क-वितर्क प्रचलित हो गए जिनके कारण कुल मिलाकर हमारा नुक़सान ही हुआ है। जैसे यह मान लिया गया कि छायावादी केवल पलायनवादी हैं, सूर-तुलसी सामंत युग के प्रतिनिधि हैं, कालिदास जैसे कवि राज-दरबार के भाट हैं, वेद-कालीन ऋषि प्रकृति पूजक के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं इत्यादि। वे सच्चे प्रगतिशीलों को तो ऐसा नहीं मानतीं पर उनका मानना है कि प्रगतिवाद के दुर्विदग्ध समर्थकों को ऐसा कहने से न रोकना भी तो दोष ही माना जाएगा। यहाँ पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नामवर शिष्य मिलने पर भारतीय संस्कृति समर्थक रचनाकार प्रगतिशील बन जाते हैं और जहाँ ऐसा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं होता तो वे उपेक्षित अथवा निंदित रह जाते हैं। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक *हिंदी साहित्य-उद्भव और विकास* की इन पंक्तियों पर ग़ौर करें : ''फ़ॉर्मूला (प्रगतिवादी) के प्रयोग किए जाएँ तो प्रसाद जी प्रतिगामी होंगे, महादेवी अप्रगतिशील बन जाएँगी और राहुल सांकृत्यायन को भी जाति बहिष्कृत करना पड़ेगा।'' (पृ.-535) हज़ारी प्रसाद महादेवी की तरह प्रगतिवाद के प्रति कटु नहीं थे, परंतु उन्हें भी उसमें संकीर्णता के उगने के संकेत मिल गए थे।

विचारधारा, चाहे गांधीवादी हो या प्रगतिवादी, नारी की शक्ति का सभी ने अपने मतलब से ही इस्तेमाल किया है। मृदुला साराभाई और ठक्कर बापा के बीच कार्य-प्रणाली को लेकर मतभेद रहते थे। गांधी जी का मत ठक्कर बापा के पक्ष में होता था। यह तथा अन्य संदर्भों के कारण भी मृदुला साराभाई को यह प्रतीति हो चली थी कि कांग्रेस अपने स्वतंत्रता संग्राम के अभियान में स्त्रियों का समर्थन चाहती तो है पर स्त्रियों के अधिकारों के प्रति उदासीन है। मृदुला साराभाई को यह लगता रहा कि राष्ट्र को चाहे स्वतंत्रता मिल जाएगी परंतु स्त्रियों को मिल जाए, यह ज़रूरी नहीं।

नवजागरण काल में ईश्वर के संबंध में नए पश्चिमी विचार भारतीय मनीषा में प्रवेश करने लगे थे। ऐसे समय महादेवी का यह कथन कितना मार्मिक है : ''संसार के धर्म-संस्थापकों की पंक्ति में बुद्ध ही ऐसे अकेले हैं, जिन्होंने मनुष्य के संबंधों में सामंजस्य लाने के लिए परमात्मा की मध्यस्थता नहीं स्वीकार की, मनुष्यता उत्पन्न करने के लिए किसी पारलौकिक अस्तित्व का सहारा नहीं लिया।'' (पृ.-15, *करुणा का संदेश वाहक*) यही महादेवी की भारतीयता भी है कि वह ठीक उस समय भारतीय चिंतन को पश्चिमी चिंतन के बरक्स तुलना में रखती हैं, जब पश्चिमी चिंतन का सर्वत्र बोलबाला था। सर्जनात्मक साहित्य के साथ-साथ ही चिंतनात्मक साहित्य का यह नवजागरण महादेवी और हज़ारी प्रसाद के यहाँ मिलता है।

महादेवी के सामाजिक कार्यों को भी उनके बुद्ध-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। बुद्ध किसी आध्यात्मिक दुख की बात नहीं करते, वे सामान्य मनुष्य के सामान्य दुखों की ही बात करते हैं। उनके भौतिक दुखों की। अत: महादेवी के लिए सामाजिक कार्यों में जुड़ने का मतलब अपने विचारों के सैद्धांतिक पक्ष का कार्यान्वयन ही माना जा सकता है। यह तो महादेवी की ही विलक्षणता है क्योंकि और कोई नाम उनके समकालीनों में, हमारी स्मृति में नहीं आता कि जिसमें हृदय, बुद्धि और कर्म का ऐसा ऐक्य और सामंजस्य देखने को मिलता हो। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि जयशंकर प्रसाद ने इसी बात को सिद्धांतत: अपनी रचना *कामायनी* में प्रकट किया है, महादेवी उसे अपने जीवन तथा साहित्य-रचना में प्रत्यक्ष फलीभूत करती हैं।

महादेवी के गद्य में एक वैज्ञानिक दृष्टि की भी प्रतीति होती है। नवजागरण कालीन इस रचनाकार ने भारतीय संस्कृति पर बहुत गंभीरता से लिखा है। परंतु उस समय तक पश्चिम से जिन नए विचारों ने प्रवेश कर लिया था उनके संदर्भ को वे भूलती नहीं। उस अर्थ में उनकी दृष्टि पुनरुत्थान वादी नहीं है। वे प्राचीन का गौरव करती हैं, पर नए विचारों तथा परिप्रेक्ष्य को भूल कर नहीं, वे चाहे इनसे प्रभावित नहीं होती, परंतु जब भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि को रेखांकित करती हैं तब उसकी प्राचीनता एवं सातत्य का निर्देश करते हुए वे जहाँ एक ओर वेदों का उल्लेख करती हैं वहीं पृथ्वी तथा मानव जीवन के अस्तित्व को लेकर हुई पश्चिमी खोजों को, जो तर्क-संगत हैं, अपने विचार में शामिल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर लेती हैं। 'संस्कृति और प्राकृतिक परिवेश' निबंध में इस बात को देखा जा सकता है। एक अलग संदर्भ में भी मुझे यह निबंध विशिष्ट लगता है। वैज्ञानिक तथ्यों को रसात्मक भाषा में किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है, यह निबंध इस बात का भी उदाहरण है। हिंदी को लेकर हमारी एक चिंता यह भी रही है कि हम किस तरह वैज्ञानिक तथा समाज-वैज्ञानिक विषयों को इस माध्यम में प्रस्तुत कर सकते हैं। हिंदी या किसी भी भाषा को ज्ञान का माध्यम बनाने का अर्थ उसके सामर्थ्य को पहचानना और बढ़ाना भी है। आज भी हिंदी को लेकर जो प्रश्न है वह उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति को लेकर नहीं, उसके ज्ञान-विज्ञान के माध्यम को लेकर ही है। हमारे लिए यह वैश्वीकरण की चुनौती भी है। अगर प्राचीन समय में संस्कृत का वर्चस्व था तो केवल इसलिए नहीं कि उसमें कालिदास, भास आदि थे, बल्कि इसलिए कि उसमें आयुर्विज्ञान, खगोल-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र आदि के ग्रंथ मिलते हैं। महादेवी ने समय, समाज और जीवन को लेकर कुछेक महत्त्वपूर्ण निबंध लिखे हैं। 'मानव विकास : परंपरा के संदर्भ में', 'हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या', 'समाज और व्यक्ति', 'हमारी समस्याएँ' कुछ ऐसे ही निबंध हैं।

इसी संदर्भ में हज़ारी प्रसाद का कथन दृष्टव्य है : ''संस्कृत ग्रंथकार ने अपने युग के समस्त ज्ञान-विज्ञान को अपनी भाषा में ले जाने का प्रयत्न किया था। म्लेच्छ समझकर जिन्हें वह कोई भी सम्मान नहीं दिया करता था, उन लोगों के पास भी यदि कोई काम की चीज़ मिल गई तो वह लेने से नहीं हिचकता था।'' (*संस्कृत का साहित्य*, हज़ारी प्रसाद, अशोक के फूल, पृ.-90-91) यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों रचनाकारों की चिंताओं में कितनी समानता है।

यह बात रेखांकित की जानी चाहिए कि महादेवी एक साथ संस्कृति चिंतन, शिक्षा-व्यवस्था, विज्ञान-दृष्टि, समाज-विज्ञान परिप्रेक्ष्य, स्त्री-विमर्श तथा साहित्य-चिंतन कर रही थी। इस बात को भार देकर इसलिए कहा जाना चाहिए क्योंकि, वह समाज जिसका नव-निर्माण किया जाना था, उसकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर महादेवी चिंतन रत थीं। यही तो महादेवी का समाज-बोध था। इससे अधिक क्या और कौन-सा दायित्व एक रचनाकार निभा सकता है।

आज उत्तर-उपनिवेशवादी चिंतन में हम अकसर एडवर्ड सईद के हवाले से कहते हैं कि हम अपने आपको अपनी दृष्टि से देखें न कि अंग्रेज़ों की। ऐसे में महादेवी का यह कथन कितना मार्मिक है : ''एक बेहद ठंडा व्यंग्य जो हमें तिलमिलाकर आहत नहीं करता बल्कि हमारी ग़ुलाम सोच के लिए हमें शर्मिंदा करता है और हमें सावधान भी करता है।'' (व्यंग्य-शैली का यह स्त्री चेहरा है जो निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' में दिखाई पड़ता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि लेखन की किसी भी शैली का स्त्री-पक्ष और पुरुष-पक्ष होता है। पुरुष का व्यंग्य जहाँ तिलमिला देने में शोभा पाता है वहाँ स्त्री के व्यंग्य की प्रकृति दूसरे प्रकार की होती है। इसे स्त्री-काव्य-शास्त्र के अंतर्गत समझा जा सका है।)

महादेवी का कथन है : ''हमारे और हमारे वेदकालीन पूर्वजों के बीच में समय का पाट कितना विस्तृत है, यह विभिन्न अनुमानों का विषय रहा है। विदेशी शोधकर्ता अपने पूर्वग्रह के कारण इसे 3500 वर्ष से दूर नहीं ले जा सके, क्योंकि बाइबल के अनुसार सृष्टि-रचना की अवधि ही 7500 वर्ष के लगभग है।'' (पृ.-25, *भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि*)

संस्कृति को लेकर महादेवी ने बहुत कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहा है। असल में देखा जाए तो हमारी सोच ही हमारी संस्कृति की परिचायक होती है। जैसे : ''भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ उसी का दायभाग नहीं, वे मानवजाति का भी उत्तराधिकार हैं।'' (पृ.-25, *भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि समग्र*-3) वेदों में जिस तरह प्रकृति को चित्रित किया गया है, उन्हें वह आत्मीय मालूम होती है। यह आत्मीयता की अनुभूति और साझेपन का भाव ही वस्तुतः भारतीय संस्कृति की पहचान है। निश्चित ही यह सोच भारतीय चिंतन तथा संस्कृति के कारण ही संभव है।

इस निबंध में जिस तरह महादेवी ने बताया है कि कैसे पृथ्वी के भूगोल में परिवर्तन संभव हुए होंगे उसे पढ़ते हुए मुझे *दी युनिवर्सिटी हिस्ट्री ऑफ़ द वर्ल्ड* (सं-जे.ए. गैरेटी तथा पी.गे) पुस्तक का संदर्भ याद आया जिसमें यह बताया गया है कि किस तरह पृथ्वी पर का भूगोल बदला है। (पृ.-8 से 23) आज जैसा यह भू-खंड दिखाई पड़ रहा है वैसा वह पहले नहीं था। यही बात वे 'भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि' निबंध में वैदिक सूक्तों के हवाले से बताती हैं। वे कहना यही चाहती हैं कि अगर वेदों में इन सब बातों का उल्लेख है तो निश्चय ही उनका समय प्राचीन होना चाहिए।

महादेवी का यह मानना है कि संस्कृति किसी को भी जन्मतः नहीं मिलती। उसे परिवेश, मूल्य तथा हमारी व्यवस्था के बीच रहते हुए प्राप्त करना होता है, अर्जित करना होता है। दर्शन, धर्म, जीवन-मूल्य, जीवन-दृष्टि, हमारी नदियाँ, हमारे पर्वत-सभी मिलकर हमारी संस्कृति निर्मित करते हैं।

इस निबंध में ऋग्वेद का संदर्भ देकर जब महादेवी यह कहती हैं कि ''मैं अपराजित, अक्षत, अमर होकर पृथ्वी पर अमर रहूँ। वह पृथ्वी हमारे सर्वोत्कृष्ट राष्ट्र में ओज और शक्ति उत्पन्न करे।'' (पृ.-29) तब हमें यह तो सोचना ही पड़ता है कि राष्ट्रीयता की भावना केवल अंग्रेज़ों की देन नहीं है। इस बात पर हमें दुबारा नए सिरे से सोचना होगा कि क्या उपनिवेश-काल में ही महादेवी उत्तर-उपनिवेशवादी चिंतन की दिशा में अग्रसर थीं। भारतीय संस्कृति और भारतीय राष्ट्रीयता के बीच कोई संबंध अगर है तो वह प्रकृति से संबद्ध होकर ही जोड़ा जा सकता है। एक और बात पर भी पुनर्विचार अपेक्षित है कि क्या छायावाद के प्रकृति चित्रण को हम केवल स्वच्छंदतावाद के प्रभाव के रूप में ही देखें? आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी प्रकृति-चित्रण को राष्ट्र-प्रेम से जोड़कर देखा है। महादेवी राष्ट्र स्वराज्य आदि शब्दों की प्राचीनता की संभवतः इसलिए भी याद दिलाती हैं कि यह एक बात प्रचलित हो गई थी, बल्कि है, कि राष्ट्रीयता का बोध भी हमें अंग्रेज़ों से ही मिला है। इसका दुष्परिणाम हम आज भी भुगत रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद हमारे देश में जिस तत्त्व का सर्वाधिक ह्रास हुआ है यह यही राष्ट्रीयता की भावना है। अंग्रेज़ों की विदाई के साथ-साथ इस भावना का भी मानों निर्गमन हो गया।

हिमालय की महिमा को लेकर महादेवी तथा हज़ारी प्रसाद के विचारों की तुलना करने पर हमें आश्चर्य होगा कि दोनों ही कैसे उसको हमारे साहित्य चिंतन से जोड़ते हैं।

महादेवी के निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता उनके भीतर रहा सच्चापन है। इसमें कोई संदेह नहीं कि महादेवी वास्तव में ओज की ही रचनाकार हैं क्योंकि उनकी करुणा का पर्यवसन ओज में होता है। महादेवी का समूचा व्यक्तित्व इस तथ्य का साक्षी है कि यह ओज मनसा वाचा कर्मणा है। वाणी का ओज कितनी अद्भुत प्रभावात्मकता के साथ इन पंक्तियों में प्रकट होता है : ''[illegible] में चलने वाले

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभियान निष्फल हुए हैं, चक्रवर्तियों के राजनीतिक स्वप्न टूटे हैं, पर मानव-एकता के पथ पर पड़ा कोई भी चरण-चिह्न अब तक नहीं मिटा है। मनुष्य को मनुष्य के निकट लाने का कोई स्वप्न अब तक भंग नहीं हुआ है।'' (पृ.-73), या फिर जब वे कहती हैं : ''हिंदी अपना भविष्य किसी से दान में नहीं चाहती वह तो उसकी गति का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए। जिस तरह नदी नदी की गति रोकने के लिए शिला नहीं बन सकती, उसी नियम से हिंदी भी किसी सहयोगिनी का पथ अवरुद्ध नहीं कर सकती।'' (पृ.-72) आज स्वतंत्रता-प्राप्ति के इतने वर्षों के बाद भी हिंदी को लेकर जो अवढव बना हुआ है, ऐसी स्थिति में हमें महादेवी के विचार दिशा-दर्शन देते हैं। मानसिक परतंत्रता की जड़ में हमारी स्वतंत्र कार्य-क्षमता का राज्यमुखापेक्षी होना है। महादेवी निश्चय ही हिंदी को मिलते सरकारी अनुदानों की ओर इशारा कर रही हैं : ''यदि आज उसे अन्य प्रदेशों से अविश्वास मिले, तो उसका वर्तमान खंडित और अतीत मिथ्या हो जाएगा।'' (पृ.-72) महादेवी भविष्य की बात न करके अतीत की बात इसलिए कर रही हैं क्योंकि इसे एक बहुत बड़ा कल्चरल शॉक भी कहा जा सकता है। महादेवी ने जो लिखा उसे हम आज अनुभव न कर रहे हों, ऐसी बात तो नहीं है। इस संदर्भ में हज़ारी प्रसाद के विचार देखना रोचक हो सकता है।

महादेवी उत्तर-प्रदेश विधान परिषद् की सम्माननीया सदस्य थीं। उस दौर के उनके भाषण पढ़कर यह पता चलता है कि शिक्षा के विकास के प्रति राज्य की उदासीनता को लेकर महादेवी चिंतित थीं। सरकार को जो कहने जैसा है वह कहने से वे चूकती नहीं हैं। अगर हज़ारी प्रसाद यह मानते हैं कि मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है तो उसी के समानांतर महादेवी का यह कथन दृष्टव्य है : ''हमारे ऋषियों ने मनुष्य को मनुष्य की महिमा दी, गरिमा दी। किसी तरह भी हमारी कला, हमारा साहित्य, हमारा सारा सृजन मनुष्य की गरिमा के लिए होना चाहिए। (117-118 समग्र-3, *भारतीयता की मेरी पहचान*) संस्कृति और साहित्य के साथ शिक्षा का संबंध अटूट है। यदि आज के विषम जीवन में हम नई पीढ़ी की एकता बनाए रखना चाहते हैं तो हमें शिक्षा में साहित्य और संस्कृति को ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान देना होगा जिससे विद्यार्थी को मानव एकता और विश्वबंधुत्व का संदेश प्राप्त हो सके और वह अधिक पूर्ण मनुष्य बन सके।'' (पृ.-43, 44-*साहित्य, संस्कृति और शासन समग्र*-3) आज सांस्कृतिक अध्ययन के प्रति थोड़ा-बहुत रुझान अंकुरित होने लगा है। हालाँकि उनके आशयों पर विश्वास नहीं रखा जा सकता है, परंतु साहित्य का अध्ययन, अन्य विद्याशाखाओं की तुलना में बिलकुल ही परिधि पर जा चुका है, और यह सवाल उठाए जा रहे हैं कि साहित्य पढ़ाने की आवश्यकता क्या है, ऐसे में महादेवी के आशय को पूरी तरह से समझना आवश्यक हो गया है। ''मनुष्य का सबसे बड़ा निर्माण मनुष्य ही है। शासन-तंत्र का भी सबसे बड़ा सृजन मनुष्य में ही मिलता है। सुंदर प्रासाद बनाने वाले को मनुष्य भूल जाता है और प्रासाद भी खंडहर हो जाता है परंतु जिन्होंने राष्ट्र को बनाया, मनुष्य को बनाया उनके निकट मनुष्यता कृतज्ञ रहती है।'' (पृ.-86)

महादेवी मात्र शिक्षा के मद में दिए गए धन की ही समीक्षा नहीं करती परंतु वे विद्यार्थियों को दी जानेवाली सुविधाओं की तथा शिक्षकों को सुविधाओं के साथ सम्मान देने की भी बात करती हैं। आज के संदर्भ में यह बातें इसलिए भी महत्त्व रखती हैं क्योंकि विधान-परिषदों में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिक्षकों तथा शिक्षा के प्रश्न राजनीतिक पार्टियाँ अपने स्वार्थ के लिए उठा रही हैं और इसीलिए उनका कोई मूल्य नहीं रह गया है। स्वतंत्र शासन में शिक्षा के महत्त्व का प्रश्न महादेवी के हृदयस्थ था अतः विधान परिषद् में वे बहुत स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि ''एक दिन हमारी दृष्टि का केंद्र स्वतंत्रता थी परंतु जब से हमारी दृष्टि उस केंद्र से हटी तब से हमारे पास कोई केंद्र नहीं रहा। हम स्वयं नहीं जानते हैं कि हमें क्या करना है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपराधों की आवृत्तियाँ हो रही हैं।'' (पृ.-85)

अगर महादेवी के इस कथन को गंभीरता से लिया जाए तो हमें यह निश्चय ही अनुभव होगा कि हमारा राष्ट्र अभी प्रबुद्ध नहीं हुआ है। वे कहती हैं : ''प्रबुद्ध राष्ट्र की जीवन पद्धति में शिक्षा-क्षेत्र का उत्तरदायित्व विद्वानों, चिंतकों और आचार्यकुलों पर रहता है।'' (पृ.-90) आज जब चिंतक, विद्वान और आचार्यकुल सत्ता की मुंसफ़ी और राग-द्वेषों के आधार पर तय होने लगे हैं तब निश्चय ही राष्ट्र की प्रबुद्धता पर प्रश्नचिह्न लगा ही समझिए। आज जब शिक्षा में आरक्षण का मुद्दा अहम् हो गया है तब महादेवी का यह कथन कितना महत्त्वपूर्ण हो जाता है : ''पिछड़े वर्ग से आनेवाले और शिक्षा-संस्कार से रहित विद्यार्थी ही शिक्षा-व्यवस्था में अराजकता के कारण हैं, यह धारणा भी सत्य से दूर है। वास्तव में पिछड़े वर्ग के विद्यार्थी को दोहरा श्रम करना पड़ता है। उच्च वर्ग का विद्यार्थी कम शिक्षित और कम मेधावी होने पर भी संस्कृत और संभ्रांत माना जाता है। पिछड़े वर्ग के विद्यार्थी को अपने आपको संस्कृत कहलाने के लिए योग्य भी बनना पड़ता है और अच्छा विद्यार्थी भी प्रमाणित करना पड़ता है।'' (पृ.-94) इस कथन में महादेवी की जाति संबंधी मान्यता भी उजागर होती है। इसी के साथ महादेवी बालिका-शिक्षा के मुद्दे को भी जोड़ देती हैं और निष्कर्ष के रूप में जो कहती हैं उसका साक्षात् आज की दलित-चेतना तथा दलित राजनीति में हमें प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है : ''वस्तुतः वर्तमान युग पीड़ितों और गिरे हुओं का है और यह वर्ग जब उठता है तब उसका वेग शिलाएँ तोड़कर निकलने वाले निर्झर के समान अप्रतिहत गति होता है।'' (पृ. 94) स्वातंत्र्योत्तर चिंतकों में जितना अधिक विचार जाति-व्यवस्था को लेकर हज़ारी प्रसाद जी ने किया है उतना किसी अन्य के यहाँ नहीं मिलता है। निश्चय ही महादेवी तथा हज़ारी प्रसाद का पिछड़े वर्ग के प्रति दिखता समर्थन, स्वतंत्रता संग्राम की उस भावना के अनुरूप ही है जिसमें नए देश (स्वतंत्र भारत) में सभी के लिए, बिना किसी भी वर्ग, वर्ण, जाति या लिंग भेद के, समान अधिकार युक्त स्थान की कल्पना हमारे नेताओं ने की थी।

इन पिछड़ों में एक नारी भी है। आज नारी विमर्श हमारी केंद्रीय चिंता का एक मुद्दा बन गया है। परंतु यह निर्विवाद है कि जब पश्चिम में नारी विमर्श चिंतन तथा आंदोलन शुरू हुआ था ठीक उसी समय महादेवी ने नारी विमर्श का भारतीय रूप अत्यंत सुचिंतित तरीक़े से प्रस्तुत किया था। *शृंखला की कड़ियाँ* हमारी चिंतन परंपरा में एक अमूल्य कृति है। 1930 से 1946 के बीच लिखे गए ये निबंध अत्यंत विलक्षण हैं। नारी विमर्श का इतना व्यवस्थित, इतना व्यापक तथा इतना सर्वाश्लेषी पृथक्करण इसके पूर्व किसी ने नहीं किया। *शृंखला की कड़ियाँ* में कुल दस निबंध हैं। इसके अलावा एक और निबंध नारी को लेकर उनके संस्कृति चिंतन में— *भारतीय संस्कृति और नारी* नाम से प्राप्त होता है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला आंदोलन की शुरुआत 1951 से मानी जा सकती है जब यूनो की महासभा ने भारी बहुमत से महिलाओं के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजनीतिक अधिकारों का नियम पारित किया। (*आधा इतिहास*, पृ.-302) महादेवी ने अपने निबंधों में नारी विषयक चिंतन विस्तार से किया है, पर अधोलिखित पंक्तियों में जैसे उनके नारी चिंतन का निचोड़ है : "हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए न किसी का प्रभुत्व, केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुष के निकट कोई उपयोग नहीं है, परंतु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन न सकेंगी।" (*शृंखला की कड़ियाँ*, पृ.-304) सही अर्थों में नारी विमर्श का भारतीय रूप यही हो सकता है। यह भी सर्वविदित है कि विदेशी चिंतन जब तक देसी मिट्टी में एकरूप, एकरस नहीं हो जाता तब तक उसका उस ज़मीन में अंकुरित होना और पनपना मुश्किल ही होता है। असल में महादेवी समस्या की जड़ में जाकर प्रश्नों को पहले पहचानती हैं, फिर उनकी व्याख्या करती हैं तथा बाद में उसके निदान की दिशा में ले जाती हैं। नारी विषयक उनके निबंधों में यही देखा जा सकता है। *शृंखला की कड़ियाँ* निबंध जैसे उनके नारी-विमर्श की भूमिका है। वहाँ से आरंभ करके जीने की कला, हिंदू स्त्री का पत्नीत्व, आर्थिक स्वातंत्र्य, युद्ध और नारी, घर और बाहर तथा नए दशक में महिलाओं के स्थान तक को वे अपनी चिंता का विषय बनाती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि महादेवी पर गांधी जी का प्रभाव पड़ा है पर यह भी उतना ही सही है कि प्राचीन साहित्य के अध्ययन के कारण महादेवी भारतीय मनीषा, चिंतन तथा परंपरा से सुपरिचित थीं। अतः उनका नारी चिंतन न राजकीय प्रभाव का परिणाम था, न ही तत्कालीन पश्चिमी आंदोलन से प्रभावित ही था। वह समाज-सेवा की भावना से भरा भी नहीं था। पर महादेवी सही अर्थों में नारी को उसके परंपरा-प्राप्त अधिकारों को दिलवाने के लिए कटिबद्ध थीं। अधिकार माँगने का उनका तरीक़ा भी विलक्षण है। और इस तरीक़े से माँगे गए अधिकार समाज के मांधाताओं को अखरने वाले ही लगते हैं। और क्यों न लगें। महादेवी के निबंधों में उनका स्वर कुछ इस तरह ध्वनित होता है : "आप न दया करें, न भीख दें, न हम आपसे छीनेंगी, पर लिए बिना भी नहीं मानेंगी। यह अधिकार हमारा है, आजकल का नहीं शताब्दियों से हमारा ही है, प्रकृति का दिया है, हमने अर्जित किया है अपने श्रम से, हमारी अपाला, घोषा हमसे पहले प्राप्त कर चुकी हैं, ग्रंथों में लिखा है, चाहे तो पढ़ लो। आप (पुरुष) सुनो, समझो और स्वीकार करो और जो हमारा अधिकार है उसे हमें दो।" यह है सत्याग्रह का तरीक़ा। यही गांधी का प्रभाव है।

वह केवल पुरुषों को ही नहीं समझातीं या उनके दोष ही नहीं बतातीं अथवा न ही केवल समाज-व्यवस्था को ज़िम्मेदार ठहरातीं परंतु पहले स्त्रियों को उनकी कमियाँ भी बताती हैं। महादेवी जब स्त्री विमर्श पर अपने ये लेख लिख रही थीं तब ज्योति-संघ जैसी संस्थाएँ अभी बनी ही थीं, बालिकाओं के लिए विद्यालय खुल रहे थे। (गुजरात में 1864 से पहले बालिका विद्यालय खुला था।) अनुसूया साराभाई तथा मृदुला साराभाई जैसी महिलाएँ स्त्री के संपत्ति पर अधिकार तथा मज़दूरों के समर्थन में अपने ही परिवार और समाज से लड़ रही थीं। स्त्री के राजनीतिक, क़ानूनी अधिकार, साहित्य में स्त्री का स्थान और स्थिति जैसे विषयों पर तब लिखा जा रहा था। ऐसे में महादेवी जैसी प्रबुद्ध रचनाकार स्त्री-विमर्श की प्रथम भारतीय सैद्धांतिकी लेकर आती हैं।

उनके स्त्री-विमर्श पर तो अलग से बहुत कुछ लिखा तथा पढ़ा जाएगा अतः इस सभा में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं लगती। अब एक आख़िरी बात।

एक रोचक मुद्दा यह बनता है कि अपने निबंधों में हज़ारी प्रसाद ने कहीं भी नारी-चिंतन पर नहीं लिखा। बल्कि हज़ारी प्रसाद का समग्र नारी चिंतन उनके उपन्यासों के स्त्री पात्रों द्वारा उजागर होता है। बौद्धिक किंतु संवेदनशील भट्टिनी, विद्रोहिणी तथा एक्टिविस्ट महामाया, जागृत दलित वर्ग की निपुणिका, प्रेमाकुल जाबाला व साहसिक प्रेमिका चंद्रा एवं पतिपंथा सुचरिता तथा ऋतंबरा। अगर इन सभी उपन्यासों को एक इकाई के रूप में देखें तो यह अत्यंत चौंकाने वाला निष्कर्ष होगा कि स्त्री-चेतना के संबंध में हज़ारी प्रसाद जी का ग्राफ़ ऊपर से नीचे की ओर आता दिखाई पड़ता है—बौद्धिक, जागृत, विद्रोहिणी तथा एक्टिविस्ट स्त्री-चित्रण से चलकर वह प्रेमाकुल पतिपंथा में विरमता है। स्त्री को दिशा-दर्शक मानता हुआ आत्मकथा का नायक बाणभट्ट, पोथे तक पहुँचकर स्त्री को जैसे साधिकार (ज्ञान-प्रदत्त अधिकार) दान में प्राप्त करने में संकोच नहीं करता (रैक्व), जबकि वह उससे प्रेम करता है। पर चूँकि हज़ारी प्रसाद जी इन उपन्यासों को गल्प अथवा गप्प कहकर छुट्टी पा लेते हैं, अत: बच भी जाते हैं।

पर निबंध में तो किसी भी प्रकार का छद्म नहीं चलता। अत: सीधा और दो-टूक, साफ़-साफ़ कहना पड़ता है। जो मानते हैं उसे बिना छिपाए कहना पड़ता है। क्योंकि सर्जनात्मक शब्द आशय नहीं छिपा सकते। अपने कहे हुए की साक्षी ख़ुद को ही देना पड़ती है। महादेवी का गद्य रसात्मक है पर आवश्यकता पड़ने पर कटु-रसात्मक भी हो जाता है। इस पुरुष-सत्तात्मक साहित्यिक समाज में बेझिझक कटु-रस पिलाने वाली स्त्री-रचनाकार अपनी बौद्धिक क्षमता की (उससे) स्वीकृति की उम्मीद भला क्यों करे!

महादेवी की गद्य कृतियाँ

अतीत के चलचित्र	1941
शृंखला की कड़ियाँ (ना.वि.)	
1942 (दीपशिखा)	
स्मृति की रेखाएँ (रे.चित्र)	1943
पथ के साथी (संस्म.)	1956
क्षणदा (ल.नि.)	1956
साहित्यकार की आस्था	
तथा अन्य निबंध	1960
संकल्पिता (आला.)	1969
मेरा परिवार (पशु-पक्षी संस्म.)	1971
चिंतन के क्षण	1986

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देशराज वर्मा

महादेवी वर्मा का गद्य-दर्शन

महादेवी वर्मा का गद्य उनके चिंतन के क्षणों की प्रेरक तथा समाधान भूमि है। उनके स्मृति गद्य, नारी विषयक लेखों, आलोचनात्मक निबंधों तथा काव्य-ग्रंथों की भूमिकाओं में चिंतन के क्षण अंकुरित-पल्लवित हो उठे हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनका गद्य वैचारिक विवशता या चिंतन की व्यापकता के कारण युगीन आवश्यकता बन गया था। जिस प्रकार स्वस्थ आलोचकों के अभाव की पूर्ति तथा काव्य-चिंतन के लिए उन्हें काव्य-ग्रंथों में चिंतन के क्षण लिखने को विवश होना पड़ा है, उसी तरह भारतीय नारी की विडंबना को साकार करने के लिए *शृंखला की कड़ियाँ* की सृष्टि हुई है।

महादेवी का गद्य व्यापकता की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति है। उन्होंने गद्य को बहुआयामी दृष्टि से जाँचा-परखा तथा लिखा है। वैसे गद्य की गरिष्ठता तथा रूक्षता को उन्होंने स्वीकार किया है। कवींद्र रवींद्र को उन्होंने नितांत गद्यात्मक परिस्थितियों में देखा था। प्रसाद जैसा महान रचनाकार तंबाकू की दुकानदारी जैसा गद्यात्मक कार्य कैसे कर सका! इस तरह उन्होंने वैचारिक बोझिलता के साथ-साथ काव्यात्मक सरसता को लिए अपनी गद्य-यात्रा पूरी की है। बाह्य जीवन का संघर्ष, नारी जीवन की विडंबना, समसामयिक काव्य-चिंतन आदि काव्य में साकार न हो सका तो महादेवी को गद्य-लेखन का आश्रय लेना पड़ा। विचारमूलक समस्यात्मक वेदना की प्रतिक्रिया उनके गद्य-लेखन की शक्ति कही जा सकती है।

महादेवी के गद्य की मूल चिंतना समस्या-समाधान है। उनके संस्मरण चित्रों का धरातल समस्यात्मक है, जिस पर उन्होंने अपनी अनुभूति, ज्ञान तथा संस्कार से समाधान का शास्त्र रचा है। नारी पात्रों की विडंबना-प्रकाशन के समानांतर लेखिका ने उनके स्वाभिमान, स्वावलंबन तथा स्वातंत्र्य की पक्षधरता में समाधानधर्मा वकालत की है। उनके विवेचनात्मक गद्य में छायावाद विषयक आरोप-प्रत्यारोपों पर समाधानपरक चिंतन, गीतिकाव्य एवं रहस्यवाद के स्वस्थ रूप का प्रकाशन, साहित्यकार की आस्था की पुरज़ोर वकालत, आदर्श-यथार्थ के समन्वय की दरकार आदि की विवेचना का मनोविज्ञान भी समाधान- मूलक है। 'मेरा परिवार' के पशु-

देशराज वर्मा का जन्म 1973 में हुआ। इनकी कविताएँ एवं लेख आदि पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। संपर्कः अध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़, अलवर (राज.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पक्षियों से सद्व्यवहार तथा संवेदना सीखने का समाधान मानवीय निष्ठुरता का निवारक है। उनके संभाषणों में युगीन तथा काव्यशास्त्रीय समस्याओं के पुख़्ता तथा सहज समाधान व्यक्त हुए हैं। इस तरह उनका गद्य-साहित्य समस्या की भयावहता से प्रसूत है, जिसे समाधान-चेतना द्वारा साहित्यिक साज-सज्जा दी गई है। समस्या निवारण के लिए उन्होंने समन्वय एवं सामंजस्य को प्रमुखता दी है। उनके संस्मरण-चित्रों के पात्रों के अंतर्बाह्य निरूपण में उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि सामंजस्य की रेखाओं से सुंदर बन गई है। विवेचनात्मक गद्य में भी उन्होंने छायावादी आरोपों का निवारण सामंजस्य सूत्रों में ढूँढ़ा है। काव्य में यथार्थ एवं आदर्श के समन्वित रूप को ही उन्होंने काम्य माना है : ''जीवन में वह यथार्थ, जिसके पास आदर्श का स्पंदन नहीं, केवल शव है और वह आदर्श, जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं, प्रेतमात्र है।'' समन्वयात्मक सत्य के कारण ही कविता भी अन्य ललित कलाओं की अग्रजा होने का सौभाग्य पाती रही है। निबंध, भाषण, संस्मरण आदि सभी गद्य-रूपों में समन्वित दृष्टि उनके गद्य की आत्मा है। उनकी गद्य-दृष्टि करुणा, विद्रोह तथा विचार की त्रिवेणी में स्नान करती चलती है। ज़रूरत के अनुसार वे इनमें से किसी एक का सहज प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। करुणा एवं विद्रोह का विरोधी सौंदर्य उनके संस्मरण-रेखाचित्रों में दर्ज हुआ है। करुणा एवं विद्रोह की समानांतर धारा उनके गद्य की सामाजिकता है।

विज्ञान के यांत्रिक दौर में संस्कृति, साहित्य तथा कला की स्थापना उनके गद्य का प्रमुख विषय है। लेखिका ने नैतिक पतन को गंभीर मानते हुए मूल्य विघटन की प्रक्रिया को संस्कृति लोप बनाम अस्मिता के संकट के रूप में देखा है। उन्होंने बहुत सारी समस्याओं के समाधान संस्कृति के धरातल पर ढूँढ़ने का संदेश भी दिया है। भारतीय संस्कृति में भौगोलिक विविधता, तत्त्वगत एकता, समन्वय एवं सामंजस्य की प्रवृत्ति, प्रकृति-सौष्ठव तथा भाषिक समृद्धि के हवाले से संस्कृति को व्यापक अर्थों में विवेचित किया है। यही नहीं, छायावाद तथा गांधीवाद को प्रकारांतर से भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण कहना भी उनकी संस्कृति-चेतना का प्रमाण है। बकौल प्रेमचंद सांप्रदायिकता संस्कृति की दुहाई देती है परंतु महादेवी ने संस्कृति को मूल्यात्मक चेतना की स्वस्थ दृष्टि के रूप में देखा है।

महादेवी का समूचा गद्य-साहित्य मानवीय विश्वास तथा जिजीविषा का साहित्य है। लघुमानव में उनकी आस्था किसी से छिपी नहीं है। उनके संस्मरण-चित्रों के अधिकांश नायक भारतीय समाज की शोषित मानव-मूर्तियाँ हैं जो हमें अपरूप दीनहीन तथा उपेक्षित दशा में दिखाई देती हैं। इन उपेक्षित जीवनों के अतीत-घटनाक्रमों में उन्हें मानवीय संवेदना का व्यापक स्वर सुनाई देता है। सभ्य-शिक्षित वर्ग की तुलना में इन शोषित पात्रों, निम्नवर्गीय समाज, उपेक्षिता-परित्यक्ताओं, विधवाओं तथा पशु-पक्षियों में वे मानवीय सद्भावों के प्रचार-प्रसार की व्यापक गुंजाइश देखती हैं। उनके शोषित-दमित पात्र अपने शोषण-दलन के बावजूद जीना चाहते हैं, ज़िंदगी से जोंक की तरह चिपटे हुए हैं। महादेवी ने इस जिजीविषा का प्रकाशन कर अपने गद्य को विराट अर्थों से भर दिया है।

महादेवी वर्मा का गद्य-साहित्य आत्मकथात्मक सौंदर्य से अभिमंडित है। गद्य-लेखन की प्रोज्ज्वल अनुभूति तथा प्रेरणा के संदर्भों में उनकी आत्मकथा का रसास्वादन भी मिलता है, जो कि उनका प्रकारांतर से अभीष्ट भी है। *अतीत के चलचित्र* का आर्द्रसमर्पण, *शृंखला की कड़ियाँ* की भूमिका एवं समर्पण, काव्य-ग्रंथों की भूमिकाओं आदि में उनकी निजता की ज्ञानात्मक स्वीकारोक्तियाँ इसे प्रमाणित भी करती हैं। पशु-पक्षी इसके प्रथम संगी रहे हैं तथा साहित्यिक प्रथिकों से वे दूर नहीं जा सकी हैं। उनका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विवेचनात्मक गद्य उनकी छायावादी आलोचना का लेख बन गया है। उनके गीतों पर उनकी आस्था की छाया का होना तथा 'अध्यात्म के अमूर्त आकाश तले' लोक गीतों की धरती पर पलबढ़ उपस्थिति होना आदि में आत्मकथा का रस सहज ही में मुखर हो उठा है। स्मृतिगद्य में उनके अपरूप रामा तथा शोषित बिबिया जैसे अनगढ़ पात्र उनके संपर्क एवं अनुभूति के कारण हीरक खंड-तुल्य चमक उठे हैं। यही नहीं उनका सांस्कृतिक चिंतन भी अनुभूति के रंग से सजा हुआ है। प्राचीन संस्कृति की गहन विवेचना उनके संस्कृत-पंडिता होने का प्रमाण है, जिसमें मूल्यात्मक सृष्टि का संधान उनकी दृष्टि की खोज है। छायावाद की विवेचना में उनकी प्रोज्ज्वल अनुभूति का उत्कर्ष व्यक्त हुआ है। प्रगतिवाद के उदय एवं अस्त की वे साक्षी हैं, उन्होंने मूल्यात्मक रूप की प्रतिक्रिया को जिया है तथा 'सामयिक समस्या' लेख में व्यक्त किया है। संस्मरण-चित्रों तथा काव्य-ग्रंथों (*यामा, दीपशिखा* आदि) की भूमिकाओं में उनके जन्म, परिवार, वैष्णव संस्कार काव्याभिरुचि, सेवा-व्रत, नारी उद्धार, साक्षरता आदि के प्रसंग सहज ही बाँध लेते हैं। महादेवी ने बिना कोई विवादास्पद या आपत्तिजनक टिप्पणी किए हिंदी साहित्य को संस्मरण-रेखाचित्र लेखन का रोल मॉडल दिया है, जो आज के दौर में काम्य है।

महादेवी के गद्य लेखन में नारी-सुधार तथा स्त्री-स्वातंत्र्य का जयघोष भी व्यक्त हुआ है। उन्होंने वैदिक समाज की नारी को आदर्श रूप में प्रस्तुत कर नारी-विमर्श का नूतन समाजशास्त्र रचा है। वे भारतीय नारी को संपूर्ण-प्राण-प्रवेग से जगाने के लिए *शृंखला की कड़ियाँ* की रचना करती हैं। प्रकारांतर से उन्होंने नारी हितों की खुली पक्षधरता तथा पुरुष प्रधान समाज के मनोविज्ञान की सामंती प्रवृत्ति पर यत्र-तत्र कटु व्यंग्य-प्रहार किए हैं। उन्होंने नारी स्वावलंबन तथा शिक्षा की पक्षधरता में प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। उन्होंने स्त्री के स्वावलंबन को स्वातंत्र्य का पर्याय कहकर शिक्षा को उसके बंधन-व्यूह का एकमात्र द्वार माना है। नारी केवल मांसपिंड नहीं वरन् वह समाज की एक अधिकार संपन्न नागरिक है। वह जन्म से लेकर चितारोहण तक पुरुष के कल्याण की साधिका है। मातृत्व की माधुर्यमयी गरिमा को लेखिका ने नारीत्व का चरम शिखर कहा है। संतानमुक्त जीवन तथा पुरुषोचित हृदयहीनता का अंधानुकरण उनके अनुसार उचित नहीं है।

पश्चिम के अंधानुकरण को नारी शोषण का दूसरा ज़रिया घोषित कर लेखिका ने भारतीय स्त्री को नारीत्व के आदर्श तथा कर्तव्य की गरिमा को अपनाने की हिदायत दी है। मातृत्व के आदर्शानुरूप कर्तव्य की गुरुता की उसकी लौह शृंखलाओं को मोम की तरह पिघला देने में समर्थ होगी। उन्होंने अपने गद्य में हिंदू नारी के समस्याग्रस्त परिवेश तथा समाधान पर अधिक चिंतन व्यक्त किया है, जबकि भारत जैसे महादेश में विविध धर्मों की स्थिति रही है। महादेवी ने मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, पारसी नारियों के जीवन पर नगण्य विचार व्यक्त किए हैं। मुस्लिम नारी के सर्वाधिक जटिल मुद्दों—निकाह, तलाक तथा बहुविवाह आदि पर विचार तक नहीं किया है। यही नहीं उनकी नारी विवेचना का फलक वैदिक तथा प्राचीन समाज पर अधिक केंद्रित है जबकि भारतीय नारी की दुर्दशा का लेखा मध्यकाल में सर्वाधिक मिलता है।

महादेवी की गद्य-दृष्टि में प्रगतिशीलता भी विचारणीय है। वे शाश्वत काव्य-मूल्यों की पक्षधर होने के बावजूद उनके युगीन स्वरूप तथा प्रयोग के प्रति सजग दृष्टि रखती हैं। उन्होंने काव्य में युगबोध, स्वानुभूति, छंद, गेयता आदि की वकालत की है, परंतु वे यह भी स्वीकार करती हैं कि प्राचीन युग के गायत्री और अनुष्टुप छंद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज की भाव संवेदना को पूर्णता के साथ वहन नहीं कर पाएँगे। युगानुरूप छंद के स्वरूप एवं प्रकृति में संशोधन अनिवार्य है। छायावाद की प्रतिरक्षात्मक विवेचना के बावजूद उसमें यथार्थ के अभाव को तथा प्रगतिवाद में मार्क्स के अंधानुकरण तथा अतिबौद्धिकता को संकेतित करना भी उनकी प्रगतिशीलता का परिचायक बन गया है। उन्होंने अपने संस्मरण-रेखाचित्रों में सामान्य जन की आशा-आकांक्षा को आँककर स्वस्थ जीवन का समाजशास्त्र रचा है। उनका 'घीसा' एक ग्राम्य बालक ही नहीं वरन् वह अशिक्षा, अज्ञान तथा कुपोषण के विरुद्ध एक नई सोच को जन्म देने में समर्थ हुआ है। रधिया की निर्धनता का जनवादी चिंतन करुणा के मानवीय धरातल पर जनसाधारण के बेहतर जीवन की भूख को व्यंजित करता है। आधुनिक युग को जनवादी युग कहकर लेखिका ने लघुमानव को प्रतिष्ठित भी किया है। आधुनिक युग का साहित्य पूर्ण देवता पर अपूर्ण मानव की विजय का लेखा है। आदिकवि की रामायण को उन्होंने जनवादी मूल्यों के कारण अविस्मरणीय कहा है : "उसमें प्रथम बार मानव ने देवता को सिंहासन च्युत कर दिया है। मानव अपने संकटकाल में देवताओं का आह्वान न करके अस्त्र उठाता है और देवों के सख्य की उपेक्षा कर अपने पराक्रम और कर्तव्य को जीवन संगी का आदर देता है।" इसी तरह बौद्ध धर्म का जनवादी रूप उसकी भाषा में व्यक्त मानकर बुद्ध को उन्होंने प्रथम मौलिक द्रष्टा कहा है। कविंद्र रवींद्र को 'क्षुद्र लगने वाले मानव की महानता का वैतालिक' कहना भी उनकी जनवादी दृष्टि का प्रमाण है।

महादेवी वर्मा के गद्य-चिंतन की कुछ न्यूनताएँ भी अवलोकनीय हैं। उनके संस्मरण-चित्रों तथा नारी चिंतन की सामाजिक पृष्ठभूमि केवल हिंदू जीवन से अधिक सरोकार रखती है। मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि समाजों के यथार्थ की उपेक्षा निश्चय ही विचारणीय है। समाज, संस्कृति, राष्ट्र, साहित्य आदि के सिद्धांत निरूपण तथा आदर्श प्रस्तुति के फेर में पड़कर लेखिका इनके व्यावहारिक स्वरूप पर उदासीन-सी दिखाई देती हैं। इसी तरह उनके संभाषणों में साहित्य की गरिष्ठता का आवरण इतना भारी है कि कई स्थलों पर मूल विषय-वस्तु ही धूमिल पड़ गई है। साहित्य के नाम पर संस्कृत-काव्यशास्त्र के प्रतिमान कई स्तरों पर नीरस एवं ऊबाऊ-से प्रतीत होने लगते हैं। अंग्रेज़ी साहित्य की ताज़गी एवं स्वच्छंदता का अभाव भी खलने लगता है। उनके भाषण, निबंध आदि कुछ विशिष्ट लोगों या भद्रलोकीय संस्कृति के लिए लिखे हुए लगते हैं। संस्मरण-रेखाचित्र जिनको लेकर लिखे गए हैं वे न इन्हें पढ़ सकते हैं न समझकर लाभ उठा सकते हैं। साथ ही संस्कृत के पांडित्य की छाप के कारण उनका गद्य आम आदमी की पहुँच से परे लगता है। प्रखर वैचारिकता, काव्यात्मक प्रतिभा तथा विषय-संकुलता के कारण उनका गद्य एक विशेषीकरण की प्रवृत्ति में पड़कर पांडित्य का आवरण ओढ़ लेता है। साथ ही मध्यकालीन इतिहास को साहित्य तथा नारी-विवेचना में समुचित स्थान नहीं मिल पाना भी उनकी सीमा है। कई स्थलों पर उदाहरण-दृष्टांतों को आधार बनाकर अनावश्यक विस्तार भी दिया गया है।

कुछ न्यूनताओं के बावजूद उनका समूचा गद्य-साहित्य जीवन, समाज तथा साहित्य के विविध संदर्भों का महाकाव्यात्मक लेखा है। स्मृति गद्य, नारी-विमर्श तथा विवेचनात्मक गद्य लेखन में युग बोध की दिशाएँ निश्चय ही प्रेरक तथा चिर प्रभावी हैं। एक उपन्यासकार या महाकाव्यकार जो अपनी रचना में पाठक देता है उससे अधिक भाव-संवेदना तथा सकर्मक चेतना महादेवी का सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक गद्य हमें देता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुलज़ार

सारथी

गेटवे ऑफ़ इंडिया से सुबह साढ़े सात बजे पहली स्टीम बोट छूटती थी, एलीफ़ेंटा केव्स के लिए। इसलिए मारुति को साढ़े छह बजे पहुँचना पड़ता था। पहले झाड़ू लगाना, मुसाफ़िरों का फेंका हुआ कचरा उठाना, फिर पूरी बोट को पानी से धोना और उसके बाद सूखे कटके से तमाम बेंच और कुर्सियाँ ख़ुश्क करना। रोज़मर्रा का काम था। मालिक ख़ुश था उसके काम से—लेकिन गाली बहुत देता था। दिल से तो नहीं देता था लेकिन जुबान से भी कम गंदी तो नहीं लगती थी, जब वो माँ बहन एक करता था। आधी लुंगी मारे, माथे पर चौड़ा एक छह उँगलिया तिलक लगाए। बहुत सुबह ही भगवान को उठा देता होगा...बोट की धुलाई-सफ़ाई होते-होते...तब तक किनारे पर मुसाफ़िरों की भीड़ जमा होनी शुरू हो जाती थी। पहली बोट में अमूमन एजेंटों के ग्रुप होते थे और ज़्यादातर विदेशी अमरीकी, जापानी; बल्कि अकसर ये होता कि पहले ग्रुप के लोग तो सामने ताज होटल ही से निकलकर आ जाते थे। छोटे-छोटे बैग पकड़े, टोपियाँ लगाए, कैमरे और दूरबीन लटकाए...लेकिन मुश्किल होती थी जब पहली बोट की रवानगी के बाद दूसरी बोट की सफ़ाई करनी पड़ती थी। पहली बोट के बचे हुए लोग और दूसरी बोट का बढ़ता हुआ घटिया दर्जे के लोगों का हुजूम दबाव डाल देता था। सुबह-सुबह की नर्म और तर गालियों के बाद अब ख़ुश्क और संटी की तरह लहराती हुई गालियाँ बरसने लगती थीं। जिनकी तेज़ी धूप के साथ-साथ चढ़ने लगती थी।

तीन कश्तियाँ थीं उसके मालिक नरसिंहा राव के पास। एलीफ़ेंटा तक जाना, मुसाफ़िर उतारना, मुसाफ़िर भरना और लौट आना। गेटवे की धैया छूना और फिर लौट जाना। मुसाफ़िरों के चटपटे खानों के मुचड़े हुए लिफ़ाफ़े, मूँगफली, संतरे, चॉकलेट और टॉफ़ियों के रैपर, मुसाफ़िरों की उल्टियाँ, झुँझलाकर फेंके हुए निरोध के पैकेट, टूटी माला के दाने, किसी की टोपी, किसी का रूमाल। मारुति की बाँहें थक जाती थीं उठाते, जमा करते और कचरे के ड्रम में भरते। समुंदर में फेंकना मना था लेकिन उसने किसी मुसाफ़िर को ऐसा करने से कभी नहीं रोका। जितना काम

प्रख्यात कथाकार, फ़िल्म निर्माता, निर्देशक, कवि गुलज़ार का जन्म 1936 में हुआ। इनकी लगभग 10 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बच्चों के लिए भी कविताएँ एवं कहानियाँ लिखी हैं। फ़िल्म जगत् की कई संस्थाओं से पुरस्कृत एवं सम्मानित हुए हैं। संपर्क : 'बोस्कियाना', पाली हिल, बांद्रा, मुंबई 400 050
फ़ोन : 022-6498351

©2020 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हल्का हो सके, होने दो...मुसाफ़िरों की उल्टियाँ धोने का काम सबसे मुश्किल था। पहले पहल समुंदर में सफ़र करने वालों का यह आम रोग था। आदतन लोग समुंदर की तरफ़ झुककर क़ै करते थे और इस कोशिश में ज़्यादातर अपने कपड़ों और बेंचों पर गिरा देते थे। लहरें ऊँची हों तो बहुत ही बुरा हाल होता था लोगों का। खाया-पिया बाहर आ जाता। टंकी से पानी भरकर फ़ौरन साफ़ करने का हुक्म था नरसिंहा राव का। मारुति की कमर दोहरी हो जाती थी। कभी-कभी तो बोट के सुपिरियर की लात भी पड़ जाती थी। बोट पर सबसे निचले दर्जे का था—वो मेहतर कहलाता था। इसलिए कोई कुछ भी कह देता था। इंजन के कप्तान खाना तो डिब्बे में लाते थे, लेकिन खाते बर्तनों में थे और उसे दोनों ही धोने पड़ते थे। बर्तन भी, डिब्बा भी—और वापसी से पहले उनकी बास्केट भी तैयार करनी पड़ती थी।

लगातार दस घंटे बोट पर हिलते रहने से, समुंदर के ज्वार के साथ इधर-उधर लुढ़कते रहने और अपना संतुलन सँभालने से जब शाम की आख़िरी बोट वापस आकर किनारे लगी तो मारुति के जिस्म के सारे जोड़ ढीले हो चुके थे। अब बोट को साफ़ करने का दम नहीं था उसमें। नरसिंहा राव ने माँ की गाली से पुकारकर कहा भी, ''अबे क्यूँ नहीं सफाई कर लेता अभी। सुबह-सुबह जो कल आकर फिर से अपनी... ! तेरा ही काम बचेगा।''

मारुति में जवाब देने की भी हिम्मत नहीं थी। हाथ झुलाकर ही समझा दिया, ''सुबह कर लूँगा। अब दम नहीं है।''

बंबई की सड़कों पर ठेलती हुई भीड़ में छिलता-छिलाता चर्च गेट के स्टेशन से आकर लोकल पकड़ी—तो खड़े-खड़े गर्दन झूल गई, आँखें बंद होने लगीं। जोगेश्वरी स्टेशन पर हुजूम ने अपने आप धकेलकर बाहर फेंक दिया—रोज़ का दस्तूर था। उसका भी, हुजूम का भी।

किसी तरह ख़ुद को टाँगों पर सँभाले हाईवे के पास पहाड़ी पर बने, सावंत नगर की झोंपड़-पट्टी की खोली नंबर 109 में दाख़िल हुआ। लकड़ी के तख़्त पर बिखरे मैले कपड़े, डिब्बे, सामान धकेलकर ढेर हो गया। तुलसी बाई कलसी से ताज़ा पानी चमकते हुए पीतल के गिलास में भरकर ले आई और रोज़ की तरह वह बोली, ''काए रे, थकलास का ?...घे पाणी घे।''

कुहनी के बल उठकर पानी का गिलास गट-गट करता पी गया। तुलसी पास आकर बैठ गई। धीरे-धीरे पाँव दबाने लगी, और सारे दिन की दास्तान बता दी।

''लक्ष्मी आई थी ससुराल से—समधी भावजी नासिक गए हैं।''

मारुति ने आँखें बंद कर लीं। एक वक़्फ़ा गुज़रा। तुलसी फिर बोली, ''छोटी बहुत दुष्ट हो गई है। मुझे तो नानी कहती है, तुम्हें नाम से बुलाती है—अपनी तोतली ज़ुबान में कई बार पूछा, 'मालूति कब आएगा' ?...''

मारुति के चेहरे पर मुस्कुराहट आ गई।

''हिंदी बोलती है ?''

''हाओ !''

''मराठी नहीं सीखी ?''

''सीख जाएगी।''

दिन की थकान कुछ कम होने लगी—हाथ खींचकर सर के नीचे रख लिए और पूछा, ''वापस कैसे गई ?''

''वापस कहाँ गई, फ़िल्म देखने गए हैं।''

''छोटी भी ?''

''हाँ...छोड़ती ही नहीं माँ को, तो क्या करते ? ले गए साथ में।''

मारुति 'हुँ' कहकर चुप हो गया। एक लंबी साँस ली।

''और कार्तिक कहाँ है ?''

''आज फिर स्कूल में किसी से लड़कर आ गया।''

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''उसकी तो माँ की...''

मारुति ने करवट ली और उठकर बैठ गया।

''साला रोज़ पिट के आ जाता है! घाटी कहीं का! मराठियानची, नाक कापली!''

तुलसी भी उठ गई।

''चलो मुँह-हाथ धो लो। पोहे बनाकर रखे हैं। थोड़े खा लो।''

तौलिया खींचा, और मोरी में नहाने बैठ गया... ''कुर्ता धोती निकाल दे मेरा।''

चूल्हा जल गया। बत्ती जल गई। मारुति ने नहाकर कोने में रखी मूर्ति के सामने हाथ जोड़े, कुछ बुदबुदाया और धुला हुआ धोती-कुर्ता पहनकर तैयार हो गया। इतने में कार्तिक आ गया। टाँग में हाथ डालकर उठाया, उसे तख़्त पर पटका और दबा लिया नीचे...

''चल साला, कुश्ती लड़ अपुन के साथ!''

कार्तिक को गुदगुदी हुई। मारुति बोला, ''कल से रोज़ कड़वे तेलची मालिश करा, और अखाड़े में जाकर वर्जिश करा। पुस्तक-फुस्तक पढ़के ज्ञान देव बनके कुछ नहीं होगा!''

कार्तिक हँसता रहा। तुलसी चूल्हे पर बैठी-बैठी बोली, ''क्या उलटी पट्टी पढ़ा रहे हो उसे?''

''ठीक बोल रहा हूँ। मराठियानचा पोत मराठाच होनार।''

इतने में बाबू आ गया। खोली के बाहर से आवाज़ दी।

''क्या मारुति! पाटकर की मीटिंग में चलना है कि नहीं?''

मारुति अंदर ही से बोला, ''धत साला! मालूम है उसकी मीटिंग में क्यों जाते हैं? बाई बोलती है तू सामने बैठकर राने खुजाता रहता है।''

तुलसी ने रसोई में बैठे-बैठे दोनों मर्दों को मोटी-सी गाली दी, ''हलकट साले!''

मारुति बाहर निकल गया।

''सुनी...मेरी बाई की बोली सुनी।''

मीटिंग ख़त्म होने के बाद, दारूखाने में बैठकर बहुत बहस हुई। बाबा अंबेडकर से लेकर मेधा पाटकर तक, चौहान से लेकर पवार तक सबके बाल-ओ-पर सामने बिछाकर रख दिए गए।

आधी रात को जब गली में दो तीन बेवड़े शोर करते हुए लौटे तो तुलसी फिर चारपाई छोड़कर उठ गई...स्टोव जलाया और खाना गर्म करने लगी। दामाद गली में चारपाई पर सो रहा था—मारुति की चारपाई साथ ही में बिछी हुई थी। मारुति हँसता हुआ अंदर आया—लक्ष्मी छोटी को लेकर सो रही थी। दोनों के सर पर हाथ रखा—छोटी के गाल टेप दिए, ''मालूतिची आई!''

तुलसी ने डाँटा, ''अब उसे जगाना मत!''

कार्तिक तख़्त पर सो रहा था। लक्ष्मी की आँख खुल गई। उठकर बापू के गले लग गई, छोटी भी जाग गई। कार्तिक ने करवट ली और बुड़बुड़ाया, ''बापू!'' दामाद ने आकर प्रणाम किया।

और मारुति उस वक़्त स्टीम बोट का मेहतर नहीं अपने परिवार का कप्तान लग रहा था; अपने सात घोड़ों वाले रथ का सारथी!

झड़ी

बारिश की झड़ी भी कुछ इस तरह लगी थी मुंबई में, जैसे दामू को पीने की झड़ी लगी थी। पाँच रोज़ से लगातार दिन-रात दारू पिए जा रहा था—और पाँच रोज से आसमान भी बरसे ही चला जा रहा था। लगता था दोनों को चढ़ी हुई है, और कोई रुकने को तैयार नहीं था। ज़िद लगी हुई थी।

दामू का हमेशा से यही हाल था। दामू ऐसा ही था। जब पीने पर आता तो कोई उसे रोक नहीं सकता था। बीस-बीस दिन, एक-एक महीना, सुबह-ओ-शाम दारू बस दारू। बीवी

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लक्षा को रोकती, जो दारू देता था, तो पता नहीं कहाँ-कहाँ से निकाल लेता था। बिस्तर के नीचे बिछी तलाई में से, दाल के डिब्बे में से, छत के पाटिए से—और दम भी बहुत था पीने का। पीता था तो ख़ुश रहता था। औरों की तरह लड़ता-झगड़ता नहीं था—और जब छोड़ देता था तो तीन-तीन, चार-चार महीने, कभी छह-छह महीने तक हाथ नहीं लगाता था। तब उसके जैसा आदमी न होता बस्ती में। उसके जैसा बाप नहीं, उसके जैसा पति नहीं, उसके जैसा वर्कर भी नहीं।

लेकिन वो तो मौसम की बात है। इस बार तो पहली बारिश के साथ ही शुरू हो गया—और बारिश भी, क्या बारिश! सौ साल में ऐसी बारिश नहीं हुई थी।

पहला दिन गुज़रा, बर्दाश्त किया। हमेशा की तरह मुंबई की लोकल ट्रेनें बंद हुईं, चलीं, फिर बंद हुईं। दूसरे दिन बाहर के ट्रक आने बंद हुए। तेल, तरकारी की आमद बंद हो गई—भाव-ताव ने ख़रगोशों की तरह कान खड़े कर लिए। शहराहों पर ट्रकों की क़तारें रुकती नज़र आने लगीं। बारिश लगातार जारी थी एक ही रफ़्तार से, और उसी रफ़्तार से दारू जारी थी।

तीसरे दिन से ख़तरे के आसार दिखाई देने लगे। बारिश, बारिश के साथ हवा, गली में पानी भरना शुरू हुआ। बीवी बाहर का सामान उठा-उठाकर खोली में रखने लगी। बालिश्त भर की खोली, जिसमें दामू, उसकी बीवी शोभा और बेटी किश्नी, जिसकी अगले महीने शादी होने वाली थी, वो ही नहीं समाते थे। बीवी ने बकरी को भी अंदर ले लिया। दामू चिड़ गया, ''अबे इस भेन...को अंदर लाने की क्या जरूवत (ज़रूरत) थी?''

''बाहर खड़ी कब तक भीगती रहती?''

''अबे इतना मोटा ऊन का कोट पहन रखा है। दो घंटे भीग नहीं सकती?''

''दो घंटे कहते हो! दो दिन हो गए हैं पानी पड़ते। आज तो गली भी भर गई और नाला इतने ज़ोर से बह रहा है। मुझे तो लगता है पुनिया की झोंपड़पट्टी सब बह जाएगी पानी में।''

दामू चुप हो गया। दाएँ हाथ से नमक चाटा थोड़ा-सा और बाएँ हाथ से आधा गिलास दारू का गटक गया। नौसादर सीने में जाकर लगा। भट्टी वाले को गाली दी, ''साला, इतना नौसादर डालने लगा है दारू में! लगता है बैटरी का तेज़ाब डाल दिया!''

शोभा ने कोई जवाब नहीं दिया। बकरी को एक तरफ़ बाँधकर किश्नी से बोली, ''उठ बेटी! ये फ़र्श का सामान थोड़ा उठाकर ऊपर रख दे, तख़्त पे डाल दे। मुझे लगता है पानी थोड़ा तो भरेगा खोली में। बारिश तो बंद होने की नहीं—और तेज़ हो गई...''

उसने बात पूरी भी नहीं की थी कि गली में एक शोर उठा, ''लगता है झोंपड़ी गई पुनिया की!''

शोभा ने दरवाज़े पर जाकर देखा। मुक़ादम की छत पूरी की पूरी फिसलकर गली में आ पड़ी थी। लोग भागे उसे उठाने के लिए। लेकिन अब क्या फ़ायदा, बजाय गली से भरने के, पानी सीधा ऊपर से भरने लगा—आसमान भी ज़िद में था।

किश्नी ने जाना चाहा, लेकिन शोभा ने रोक दिया, ''तू बैठ! अगले महीने लगन है। कहीं हाथ-पैर तोड़कर आ गई तो...'' कुछ और कहते शोभा निकल गई। दामू का जी चाहा बेटी से कोई बात करे। अब वही तीनों थे खोली में। दामू, किश्नी और बकरी।

''प्याज़ है घर में बेटी? एक प्याज़ काटकर देना नमक डालकर।''

किश्नी चुपचाप प्याज़ काटने लगी। दामू ने खिड़की में रखी बोतल उठाई और फिर से गिलास भर लिया।

''मटके से पानी भी दे दे बेटी।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बग़ैर कुछ कहे किश्नी ने मग भरकर रख दिया। आधा गिलास दारू, आधा गिलास पानी! किश्नी लौट गई थी लेकिन दामू ने अपना काँपता हुआ हाथ किश्नी के सिर पर रखा, जो कुछ देर हवा में लहराता रहा। उलटी हवा में उड़ते पंछी की तरह, और दुआ दी, ''तू फ़िक्र नहीं करना बेटी! बोत (बहुत) शान से तेरा लगन करूँगा। पच्चीस हज़ार की खोली, पच्चीस हज़ार का कपड़ा-गहना, पच्चीस हज़ार तेरे मर्द को दूँगा। पूरा एक लाख लेकर आऊँगा। सब तेरे लगन में ख़र्च कर दूँगा। एक लाख ज़्यादा हो गया क्या? चल पचास हज़ार लाऊँगा।''

पच्चीस हज़ार बार ये बात वो नशे में दोहरा चुका था और हर बार शोभा फटकार देती थी, ''कहाँ से लाएगा? रेस में जाएगा क्या कि चोरी करेगा?''

हर बार शोभा बोलती ज़रूर थी—और वो भी हर बार पीने के बाद एक बार तो अपने अंदाज़ से ज़रूर किश्नी के सिर पर हाथ रख देता था—और यही कहता था, ''तू फ़िक्र मत कर...''

किश्नी प्याज़ और नमक रखकर फिर सामान हटाने लगी। पानी अब खोली के अंदर आना शुरू हो गया था, और किचन वाली छत से बाक़ायदा नीचे रखी बाल्टी बज रही थी। बकरी जो इतनी देर से बैठी हुई थी, फिर खड़ी हो गई।

शोभा बहुत देर तक नहीं आई तो किश्नी देखने के लिए निकली। वो भी आधे घंटे के लिए गुम हो गई। दामू को भी सामान की फ़िक्र हुई। पहले तो उसने अपनी एक लीटर दारू सँभालकर ऊपर रख दी। जो दाल के डिब्बे में छुपाकर रखी थी वो अलग। फिर पानी का एक बड़ा वाला जग भरकर रख लिया। फिर दो पेटियाँ—कपड़े-लत्ते वाली उठाकर तख़्त पर रख दीं। तीसरी पेटी बहुत भारी थी, घसीटने में पैर पर लग गई। वो वहीं छोड़ दी।

बकरी बिलकुल कोने में घुसकर खड़ी हो गई। जैसे नमाज़ में हाथ बाँधे खड़ी हो। एक डिब्बे में कुरमुरे भरे हुए थे। दामू ने थोड़े जेब में भर लिए। थोड़े मुट्ठी में भरकर फिर अपनी जगह पर आकर बैठ गया। खोली में पानी भरना शुरू हो गया था।

इस बार शोभा लौटी किश्नी नहीं—साड़ी उठाकर घुटनों से ऊपर बाँध ली थी। चिल्ला रही थी, ''देखो आज घर में खाना-पकाना तो नहीं हो सकता। नीचे होटल मलिए का, आधा पानी से भर गया। लोग-बाग ऊपर वाले गैरेजों में भाग रहे हैं।''

नशे में था लेकिन याद था। ''मुक़ादम का क्या हुआ? घर तो भर गया होगा?''

''बेचारा अभी तक सामान उठाकर ऊपर पहुँचा रहा है। हीरा, गोपाल, सुलेमान सब लगे हैं। लेकिन क्या करें? बूढ़ों-बच्चों को देखें कि सामान देखें?''

शोभा खाने-पीने का सामान उठा-उठाकर ऊपर रखती जा रही थी। पाव-वड़ा लाई थी। वो बना रही थी दामू के लिए, और कह रही थी, ''कितने बच्चे पैदा करते हैं मुहल्ले वाले। एक-एक साइज़ के दस-दस बच्चे मिलते हैं। शुक्र है अपनी एक ही है!''

बीवी के आने से दामू में जान आ गई थी। सर का पानी झाड़कर बोला, ''तेरा पेट नहीं गिरने लगता तो इधर भी लाइन लगी होती अब तक।''

शोभा ने भी गर्दन मारकर कहा, ''भगवान है ना बचाने वाला! लो...खा लो।''

दामू ने बाजू से पकड़ लिया, ''वो क्या तेरे सगे वाला है?''

''अब हाथ छोड़ो!'' शोभा ने डपटकर कहा, ''और यहाँ से निकलने की तैयारी करो। नीचे देखो, कितना पानी भर रहा है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शोभा ने दो पेटियों के ऊपर कुर्सी रखी थी। दामू धीरे-से उठकर, उसके ऊपर चढ़ गया।

''इतना ऊँचा तो तेरे सगे वाला भी नहीं आ सकता। पानी क्या आएगा!''

''लुढ़क मत जाना। यहाँ उठाने वाला कोई नहीं है।''

''तू कहाँ जा रही है?''

''गैरेज वाले छप्पर में। ज़रा हाथ बँटा दूँ। किश्नी भी वहीं है।''

''वो कब आएगी?''

''ज़रा पानी थमे तो सब लोग लौटेंगे।''

लेकिन इस बार कोई नहीं थमा। न बारिश, न दामू। गली के पानी का बहाव बढ़ता ही गया। नाला दरिया हो चुका था। मुक़ादम का छोटा लड़का पानी में गिरा और गोते खाता बह गया। कई लोग दौड़े लेकिन वो हाथ नहीं आया। इस दौड़ में कुछ और लोग भी ज़ख़्मी हुए। बहुत से लोगों का ख़याल है कि वो जहाँ पानी का भँवर बन रहा था वहाँ कोई मेन होल खुला था और मुक़ादम का लड़का उसी में खिंच गया।

घरों से बिजली चली गई थी या बंद कर दी गई थी। शॉर्ट सर्किट होने का ख़तरा था। शाम होते-होते पानी के साथ-साथ शहर अँधेरे में डूबने लगा।

ऊपर के दोनों-तीनों गैरेजों में छह फ़ुट तक पानी भर गया। जिन गाड़ियों से मरम्मत के लिए इंजन निकले हुए थे उनके ढाँचे क़ब्रों की तरह पानी पर तैर रहे थे। छत के आस-पास, सामान के लिए बने खाँचों से सामान पानी में फेंककर कुछ लोग उन खाँचों में घुस गए थे। अब जब तक बारिश न थमे, और पानी न उतरे, उनके नीचे उतरने की कोई संभावना नहीं थी।

जो निकल सके निकल गए, और दूर बिल्डिंगों की छतों पर, अस्पतालों के बरामदों में, स्कूलों के कमरों में जाकर पनाह ले रहे थे। किश्नी अस्पताल के एक बरामदे में घुटी बैठी थी। उसे किसी ने ख़बर नहीं दी, शोभा को लोगों ने पानी में डूबते देखा था। कुछ कहते हैं, किसी साँप ने डस लिया, जो कई जगह पानी में तैरते नज़र आ रहे थे।

शाम ढलने से पहले दो नौजवान लड़कों ने कमर में रस्सा बाँधकर दामू की खोली तक पहुँचने की कोशिश की। लेकिन अंदर दाख़िल न हो सके। उनकी गर्दन तक पानी आ चुका था। बकरी दरवाज़े में उलटी अटकी हुई थी। मर चुकी थी। दीवार के पास अंडर-करंट (निचला बहाव) बहुत तेज़ था। पीछे की खिड़की पानी में डूब चुकी थी। दामू ने किसी तरह बरतनों वाला टेबल तख़्त पर खींचकर कुर्सी उसके ऊपर खींच ली थी। कुछ बरतन पानी के ऊपर तैर रहे थे—कुछ बह गए। बारिश और पानी के शोर से कान फट रहे थे। लड़कों ने बहुत आवाज़ें दीं दामू को, लेकिन वह एक हाथ में बोतल पकड़े, दूसरे हाथ में एक लंबी लकड़ी से पानी पर तैरते टमाटर और खीरे पकड़ रहा था। जैसे कोई मछलियों को घेर रहा हो, और हँस रहा था। बाहर निकलने की न उसने सुनी, न कही और शायद सोची भी नहीं। वह अभी तक पानी के ऊपर था—और आसमान से ज़िद लगी थी, यह झड़ी कौन पहले बंद करता है!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रतिभा राय

कपटपाशा

उस घटना के छत्तीस घंटे बाद भवनाथ बाबू ने थाने में इत्तला दे दी।

सोचा था मन कुछ हल्का हो जाएगा। अपना कर्तव्य उन्होंने कर दिया उसके बावजूद यदि अपराधी न पकड़ा गया तो उसमें उनका क्या दोष? कम-से-कम पत्नी नेत्रमणि को यह कैफ़ियत तो दे सकते हैं। लेकिन इत्तला देने के बाद से उनका मन धीरे-धीरे भारी हो गया है। शायद यह सोचकर कि यदि भवनाथ बाबू की ख़ातिर पुलिस आशातीत रूप से तत्परता दिखाकर अपराधी को पकड़कर ले आई, तो क्या भवनाथ बाबू उससे आँखें मिला सकेंगे! देवता की मूर्ति से मंदिर की मुखशाला बड़ी हो तो चल जाता है, किंतु अपराधी को यदि दंड अधिक दिया गया तो अपराधी भले ही सँभाल ले, पर क्या भवनाथ बाबू का दयावान हृदय उसे सँभाल पाएगा? हुँह, दयावान! सब केवल ढकोसला है, अंदर से सारे लोग दया-माया से दूर, कपट से भरे होते हैं।

नेत्रमणि ने खिंचाई की थी। उनके गृहस्थीपन को धिक्कारना उतना बुरा नहीं लगता भवनाथ बाबू को क्योंकि यह तो दैनंदिन दांपत्य का एक अपरिहार्य अंग है। सिर्फ़ उनके ही नहीं, पतियों के भाग्य में यही लिखा है। किंतु उस घटना के बाद जब नेत्रमणि ने भवनाथ बाबू की निर्लिप्तता और निष्क्रियता देख ग़ुस्सा कर उनकी मर्दानगी को धिक्कारा तब जाकर भवनाथ बाबू आत्मरक्षा के लिए पुलिस को इत्तला देने को बाध्य हुए। पत्नियों के उकसाने और धिक्कारने से बहुत-से न करनेवाले काम भी पति कर डालते हैं। जानते हैं कि कोई लाभ नहीं—बल्कि नतीजा विषमय हो सकता है; फिर भी बीच नदी में छलाँग लगा देते हैं। माया से छटपटाते प्राणी हैं। भात के पतीले से एक दाना दबाकर देखो। क्या मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम नहीं जानते थे कि वह सोने का हिरण नहीं मायावी हिरण है? क्या वे नहीं जानते थे कि माया के पीछे भागने का फल क्या होगा? उसके बावजूद वे निर्बोध-से सोने के हिरण के पीछे भागे और नतीजा क्या हुआ, सभी जानते हैं।

आज यदि भवनाथ बाबू ने पत्नी के उकसाने पर अपराध के बारे में थाने में इत्तला दे दी तो क्या बुरा किया? क्या चोर को छोड़

ओड़िया की प्रतिष्ठित रचनाकार प्रतिभा राय का जन्म 1943 में हुआ। इनके 20 उपन्यास, 15 कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं। मूर्तिदेवी पुरस्कार, साहित्य अकादेमी पुरस्कार तथा अन्य संस्थाओं से पुरस्कृत हैं। संपर्क : आख्यायिका, 27, गजपति नगर, भुवनेश्वर 751005

अनु. साहित्य अकादेमी के अनुवाद पुरस्कार से सम्मानित राजेंद्र प्रसाद मिश्र का जन्म 1955 में हुआ। हिंदी-ओड़िया में परस्पर अनुवाद की लगभग 57 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। संपर्क : एन.टी.पी.सी., सेक्टर-24, ई.ओ.पी., नोएडा 201301

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देना चाहिए ? क्या चोर को प्रश्रय देना दया है ? और फिर चोरी भी नहीं, धोखेबाज़ी। क्षमा करने का सवाल ही कहाँ उठता है ! सामान चले जाने का उन्हें ज़्यादा अफ़सोस नहीं है, अफ़सोस इस बात का है कि एक मूर्ख ट्रॉलीवाला नीच इंसान उन्हें उल्लू बना गया। ठेस पहुँची है भवनाथ बाबू के बुद्धिजीवी व्यक्तित्व के अहम् को।

भवनाथ बाबू के घर से बाहर निकलने पर कम से कम पाँच-सात लोग उन्हें नमस्कार करते हैं। कोई जान-पहचान वाला तो कोई अनजान। अनजान भवनाथ बाबू के लिए होता; पर भवनाथ बाबू को इस इलाक़े में कौन नहीं पहचानता ? भला बग़ैर पहचाने कोई किसी को नमस्कार करता है ? नमस्कार के बदले सिर हिलाकर प्रति-नमस्कार और प्रसन्नताभरी मुद्रा प्रकट करने के सिवा कुछ और बात करने के लिए समय ही कहाँ होता है भवनाथ बाबू के पास! और फिर लाभ भी क्या है किसी ऐरे-ग़ैरे से बातचीत करने का, नाम परिचय पूछने का। क्या भवनाथ बाबू याद रख सकेंगे ? असंख्य प्रशंसक हैं इस शहर में उनके। वे एक दार्शनिक और वक्ता के रूप में सुपरिचित हैं। उनके उच्चकोटि के चिंतनपरक लेख अकसर पत्र-पत्रिकाओं और अख़बारों में प्रकाशित होते रहते हैं और पाठकों द्वारा सराहे भी जाते हैं। इसके अलावा वे एक सुलझे हुए अध्यापक भी हैं। न जाने कितने ही छात्र-छात्राओं को पढ़ा चुके हैं। अब उन लोगों को कौन याद रखता है। प्रशंसकों का चेहरा भी एक बार देखकर कहाँ याद रहता है ?

उसी तरह वह आदमी भी उन्हें देखते ही बड़े विनम्रतापूर्वक प्रणाम करता—अपनी ट्रॉली खींचता मैले, कर्मठ, तनी हुई नसोंवाले हाथ उठाकर। भवनाथ बाबू उस पर करुणाभरी निगाह डालकर मुस्कुरा देते और सोचते, कृतार्थ कर दिया उन्होंने उस अकिंचन छोटे आदमी को। उसका नाम क्या है ? भला भवनाथ बाबू क्यों पूछें ? पूछकर करेंगे भी क्या ? काश, याद रख पाते ! क्यों याद रखें ? रिक्शावाले, ट्रॉलीवाले के सिवाय उनका कोई दूसरा नाम कोई क्यों जाने ?

भवनाथ बाबू को वह क्यों प्रणाम किया करता था ? वह नीच आदमी कभी धोखा देने के चक्कर में ही अति भक्ति दिखाया करता था। यह उनकी श्रीमती जी की तीखी टिप्पणी थी। भवनाथ बाबू को भी अब इस बात पर विश्वास हो गया था। भवनाथ बाबू ने उसकी ट्रॉली आज तक किराए पर नहीं ली थी। लेने की संभावना भी नहीं थी। किंतु हर सप्ताह सब्ज़ी ख़रीदने मार्किट जाते समय चौराहे के पास उससे मुलाक़ात हो जाती और 'प्रणाम बाबू जी' कहकर हाथ जोड़कर अकिंचन मुद्रा में वह अपनी भक्ति दर्शाता। सिर्फ़ भक्ति नहीं; उसके साथ श्रद्धा भी मिली होती थी, ऐसा भवनाथ बाबू को लगा करता था। शायद उस आदमी ने उनका भाषण एकाध बार कहीं सुना होगा। उनके सारगर्भित भाषण का गहरा अर्थ उस मूर्ख ने नहीं समझा होगा, इतना निश्चित है। किंतु गंभीर भाषण के बीच-बीच में भवनाथ बाबू शास्त्र, पुराण, जातक-कथा, कथा-सरित्सागर, लोक-कथाओं इत्यादि से मन को छूनेवाले आख्यान भाषण में जोड़कर अंत में श्रोताओं को ताली बजाने को मजबूर कर देते थे। शायद उनकी किसी कहानी से प्रभावित हुआ होगा वह अधेड़ ट्रॉलीवाला।

हालाँकि और भी अनेक ट्रॉलीवाले, रिक्शावाले, मज़दूर इकट्ठे हो जाते थे। उन्होंने भी संभवत: भवनाथ बाबू के भाषण सुने होंगे; पर सभी उन्हें प्रणाम नहीं करते। सड़क छाप होने पर भी सबके संस्कार समान नहीं होते। उनका भाषण सुनते समय बाक़ी के लोग देसी शराब पीकर लुढ़के होंगे। ऊटपटाँग बातें करके अपनी दमित भावनाएँ प्रकट कर रहे होंगे। होश में होने पर भी दिन-दहाड़े उनकी ज़ुबान में लगाम नहीं होती। भवनाथ बाबू सुनते हुए भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनसुना करके अपने काम पर निकल जाते। दूसरों की माँ-बहन पर फब्तियाँ कसते समय चंडाल, बर्बर क्या भूल जाते हो कि तुम्हारे घर में भी माँ, बहन, बीवी हैं ? क्यों भई, किसी की माँ-बीवी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ? कहाँ, भवनाथ बाबू ने तो कभी नहीं सुना किसी को किसी पर ग़ुस्सा निकालकर गाली देते हुए, ''स्साले तेरे बाप को बीच बाज़ार में नंगा करके मारते-मारते ले जाऊँगा, तेरे जवान बेटे के पीछे कुतिया छोड़ दूँगा।'' जबकि माँ, बहन, बीवी को लेकर कही गई कुत्सित गालियाँ वे नहीं सुन सकते।

उन लोगों का क्या दोष! वे तो यूँ ही मूर्ख होते हैं, ओछे संस्कार वाले। सूर्पणखा की नाक लक्ष्मणं जैसे मर्यादा पुरुष ने काट ली, फिर राम पर क्रोधित हो रावण जैसा राजा सीता जी को उठा ले गया! गौतम ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए देवराज इंद्र ने अहिल्या जैसी नारी के साथ छिः छिः। किंतु इस आदमी को कभी अपना मुँह ख़राब करते भवनाथ बाबू ने नहीं सुना था। बल्कि भवनाथ बाबू को थैला लेकर हाटवाली गली में घुसते देख वह अपने सभी साथियों को सावधान कर देता, ''चुप रहो, बाबू जी आ रहे हैं, क्यों मुँह ख़राब करते हो!'' भवनाथ बाबू के कानों में कई बार पड़ी है यह बात। भवनाथ बाबू उस आदमी की मन ही मन तारीफ़ भी करते। छोटा नसीब लेकर जन्म न लिया होता तो आज वह भी एक विचारशील चिंतक के रूप में भद्र लोगों में गिना जाता। लेकिन अभद्र न होने पर भी भद्र लोगों में गिना जाना उस जैसे छोटे आदमी की कुंडली में नहीं है। वह कितना ही भद्र व्यवहार क्यों न कर ले समाज के जिस स्तर का वह आदमी, क्या कभी वह भद्र लोगों में गिना जाएगा! छोटे लोगों का नसीब छोटा होता है, यह बात जानते हैं भवनाथ बाबू। पर उनके विचार और प्रवृत्ति भी छोटी होती हैं, इस बात का घोर विरोध करते थे वे। उनका विरोध सुनकर मित्रगण अट्टहास करते हुए कहते, समझे भवनाथ बाबू, आप अभी तक इन ओछे लोगों के संस्पर्श में नहीं आए हैं। इसलिए धोखा नहीं खाया है। वरना आपकी यह उदार महानुभावता हम देखते। यह बात काफ़ी हद तक सच भी है।

भवनाथ बाबू पिछले बीस सालों से किराए के एक छोटे-से मकान में रहते हैं। अपना मकान नहीं बनवाया, उम्मीद भी कम है। इसलिए घर बनवाने की कीचड़भरी दुश्चिंता और कारीगर, मज़दूर, ट्रॉलीवाले आदि से उनका पाला नहीं पड़ा है। भवनाथ बाबू की पत्नी नेत्रमणि ठेकेवाली औरतों पर घर के काम के लिए निर्भर नहीं करतीं। दो कारण हैं। एक तो ओछे लोगों को घर में घुसने नहीं देना है। दूसरा, पति की सीमित सरकारी तनख़्वाह में ठेकेवाली नौकरानी रखना उनके लिए मुश्किल था। नेत्रमणि अति कर्मठ और हिसाब से चलनेवाली महिला थी।

गाँव में रहने वाले जेठ साल में एक बार चावल भेजते हैं। उसके बदले भवनाथ बाबू को खेती-किसानी का ख़र्च तथा अभाव-असुविधा, शादी-विवाह में अपनी तनख़्वाह से कुछ रुपए बचाकर उन्हें भेजने पड़ते हैं। बाज़ार से चावल ख़रीदने पर क्या कुछ बचत होगी, यह पूछा था एक बार नेत्रमणि ने अपने पति से मज़ाक़-मज़ाक़ में। भवनाथ बाबू ग़ुस्से से आग-बबूला हो उठे थे। जिन लोगों के यहाँ खेती-किसानी नहीं होती वे ही लोग कंकड़ भरे चावल ख़रीदकर खाते हैं। भवनाथ बाबू का वंश-ख़ानदान है। ढेर सारी पैतृक संपत्ति है। नौकरी न करके गाँव में खेती-किसानी करवाते तो राजा-ज़मींदार की तरह ठाठ से रहते। गाँव के चावल खाकर जो तृप्ति मिलती है, बाज़ार के चावल खाने में वह तृप्ति कहाँ? और फिर गाँव से साल में दो बोरी चावल आने की वजह से यहाँ ख़रीदकर खानेवाले पास-पड़ोसियों में उनकी जो धाक जमी हुई है, जो शान बनी हुई है, वह कहाँ मिलेगी? हाँ, भैया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को दो बोरी चावल के दाम से काफ़ी अधिक पैसे देने पड़ते हैं तो क्या बाट-तराजू लेकर चावल तौलकर रुपए गिनता भैया के साथ बैठकर? जब गाँव से चावल आ जाता है, भवनाथ बाबू को बिलकुल नहीं लगता कि उसके लिए उनकी तनख़्वाह से एक मोटी रक़म निकल गई है। उन्हें लगता चावल मुफ़्त में आ गया। ये दो बोरी चावल ही नहीं, बल्कि इस आपाधापी भरी ज़िंदगी के लिए एक मनोबल भी है। घर में चावल है तो सब कुछ है। नमक-प्याज़ से भी काम चल जाएगा। वाक़ई क्या नमक-प्याज़ से कभी दिन कटे हैं? फिर भी एक संबल तो है।

यदि गाँव से दो बोरी चावल न आता, तो कारीगर-मज़दूर की तरह रोज़-रोज़ ख़रीदकर खाना पड़ता। सुबह होते ही चावल ख़रीदना। लगता घर से लक्ष्मी चली गई है। जब भी गाँव से चावल आने में देर होती और भवनाथ बाबू बाज़ार से चावल ख़रीदते, उस वक़्त उन्हें वैसा ही लगता। लगता, वे दिहाड़ी मज़दूर हैं। चावल ख़रीदकर ले जाएँगे तो भात बनेगा। उन्हें बहुत बुरा लगता चावल ख़रीदते समय। उन्हें लगता दुकानदार के साथ-साथ दूसरे लोग भी उन्हें दयाभरी या हेय दृष्टि से देख रहे हैं। सोच रहे हैं, ''बेचारा सौदा ले रहा है! गाँव में बित्तेभर भी ज़मीन नहीं है। नौकरी ख़त्म हो जाने के बाद क्या करेगा बेचारा!'' वे आगे बढ़कर दस बार सफ़ाई देते हैं, ''चावल इसी बीच आ जाएगा। बँटाईदार बीमार है। कौन लेकर आएगा? बाज़ार का चावल गले के नीचे उतरता ही नहीं। गाँव के चावल जैसी मिठास उसमें कहाँ? बच्चे तो बिलकुल ही निगल नहीं पाते यह मोटा चावल...।''

बाज़ार का चावल भी धान से ही निकलता है। धान का पौधा उगता है माटी में, जो माटी इस पृथ्वी का अभिन्न अंश है। पर गाँव की माटी में न जाने कैसी महक होती है, जो भेद जाती है गाँव के खेतों से उपजे चावल में, मूँग-उड़द में, गाँव की बाड़ी के सहजन में, गाँव के तालाब की मछलियों में, गाँव से आने वाले गाय के घी में। उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। हाँ, गाँव की माटी से उपजी हर चीज़ में भेद गई होती है माँ के वात्सल्य की महक, बड़ा आदमी बनने के लिए पिता के कठोर अनुशासन की महक, गाँव के स्कूल की निर्मल महक, दोस्तों, पास-पड़ोसियों और भाई-बंधु-कुटुंबों के स्नेह से भीगा मीठा-मीठा स्वाद...सब मिलकर गाँव से आने वाली हर चीज़ में चुपड़ी होती है बचपन की निर्मल, कोमल, पवित्र महक। गाँव से साल में थोड़ा चावल आने के कारण भवनाथ बाबू ख़ुद को बेहद ख़ुशनसीब समझते हैं। ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि उनका एक गाँव है, गाँव में घर है, खेत है, बड़े भैया हैं, वे चावल भेजते हैं...भला और क्या चाहिए?

हालाँकि जब तक माँ ज़िंदा थी गाँव से चावल के साथ-साथ मूँग, उड़द, गुड़, बड़ी, भूजा, चिउड़ा, नारियल, गाय का घी, मालपुआ, आमपापड़, सूखे बेर, अचार आते थे। कभी-कभी पर्व-त्योहारों में तरह-तरह के पुए-पकवान भी आते थे। कहाँ चली गई माँ, और वे तमाम दिन! माँ के जाने के बाद धीरे-धीरे सब बंद हो गया; पर चावल बंद नहीं हुआ। क्या करना है बाक़ी चीज़ों का? बच्चे बड़े होकर अपने-अपने कर्मक्षेत्र में जा चुके हैं। कौन खाएगा ये चीज़ें? सिर्फ़ पास-पड़ोसियों में बाँटनी पड़ती। फ़िज़ूल का दिखावा। अच्छा किया भाभी ने ये चीज़ें बंद कर दीं। भवनाथ बाबू के मन में रंचमात्र अफ़सोस नहीं है। पर नेत्रमणि अपना स्वभाव कैसे छोड़ दे? कभी-कभी कहती, ''इतनी सारी चीज़ों के लिए तब जितना पैसा भेजा जाता था, आज सिर्फ़ चावल के लिए भी उतना ही पैसा भेजना पड़ता है। बाक़ी की चीज़ें तो हमें बाज़ार से ख़रीदनी पड़ती हैं। इतने पैसे भेजने की क्या ज़रूरत है?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भवनाथ बाबू जानते हैं कि काफ़ी चीज़ें उन्हें ख़रीदनी पड़ती हैं। इसका मतलब यह तो नहीं कि बड़े भैया से हिसाब करके रुपए काट लें! बड़े भैया ख़ुद मना कर दें तो भी एक बात है। भवनाथ बाबू की तनख़्वाह है ही कितनी। उसमें से मकान के किराए से लेकर हवा-पानी सब कुछ ख़रीदना पड़ता है। गाँव में धान, चावल, पेड़ और मछलियों के प्राचुर्य के बीच रहकर भैया उस बारे में कैसे समझेंगे? उन्हें नक़द पैसा कहाँ से मिलेगा? इसलिए वे दया के पात्र हैं। जो बिजली-बत्ती, बिजली-पंखा, पक्के मकान, सिनेमा-थिएटर के बीच रहकर शहरी बाबू बनकर रहने लगे, जिन्हें दस लोगों का नमस्कार मिला उनके प्रति कोई क्यों दया दिखाएगा? इतना साहस किसमें है! पर चावल इतनी कंजूसी से नहीं भेजना चाहिए। यदि हाँड़ी में थोड़ा पखाल-भात (पानी मिला बासी भात) बचने लगे तो यह चावल पूरे साल नहीं चलेगा। दो-चार महीने बाज़ार से चावल ख़रीदकर काम चलाना पड़ेगा। इसलिए नेत्रमणि ने पखाल भात खाना छोड़ दिया है न जाने कब से। सुबह नाश्ते में रोटी। यदि रात को भात बच जाता है तो दोपहर को पखाल भात का भोजन होता है। बड़े हिसाब से चलती हैं नेत्रमणि। उसके बिना चारा ही कहाँ? यदि सगे-संबंधी या अतिथि आ गए तो बाज़ार से ही ख़रीदना पड़ता है।

''जेठ जी इतनी कंजूसी से क्यों भेजते हैं चावल? गाँव में तो भर-भर हाँडी पखाल भात गाय-बैंलों की हाँडी में उड़ेल दिया जाता है...नौकर-चाकर तक को पखाल भात नहीं रुचता...'' सुबह चाय-रोटी खाते हुए नेत्रमणि ताने सुनाती हैं। भवनाथ के पास आशु-उत्तर तैयार रहते हैं। कहते हैं, ''आजकल कौन निगलता है सुबह-सुबह कटोरा-भर भात। गाँव में तो बहू-बेटियों ने पखाल भात खाना ही छोड़ दिया है। पखाल भात उन्हें मोम बनाता है। दिन भर सुस्ती छाई रहती है सुबह पखाल भात खाने से। तुम शहर में रहकर भी अब तक पखाल भात की रट लगाए हो, यह भैया कैसे जानेंगे? अच्छा ही है कि पखाल भात के लिए चावल नहीं बचता। वरना अब तक तुम ख़ूब मोटी औरत बन गई होती।''

''क्या जेठानी जी थोड़े-से नारियल नहीं भेज सकतीं? गाँव में ढेरों नारियल इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। आधे खाए जाते हैं, आधे बेकार हो जाते हैं। कार्तिक महीने में भी थोड़े-से नारियल भेजने का उनका मन नहीं करता। बिना नारियल के उपवास में बने डालमा में कहाँ से स्वाद आएगा?'' नेत्रमणि इसी तरह कुरेदती रहतीं भवनाथ बाबू को बीच-बीच में।

भवनाथ बाबू भी तुरंत जवाब देते हुए कहते, ''नारियल इसलिए नहीं भेजतीं कि ख़त्म हो जाते हैं! अरे बाबा, आजकल नारियल खाने को डॉक्टर मना करते हैं। कहते हैं ख़ून में चर्बी बढ़ जाएगी और फिर हमारी उम्र में नारियल बम का गोला है। ठीक ही करती हैं भाभी जो नारियल नहीं भेजतीं। तुम क्या सोचती हो कि भैया-भाभी आजकल की ख़बरें नहीं रखते? उन्हें मालूम है, नारियल मुझे कितना पसंद है। भेजेंगे तो मैं भी खाऊँगा, खाऊँगा तो ख़ून में चर्बी बढ़ेगी। रक्त-प्रवाह किसी दिन ठक् से रुक जाएगा...''

''छोड़ो-छोड़ो एकाध दिन खाने से ही जैसे चर्बी भर जाएगी!'' नेत्रमणि इससे आगे बात नहीं बढ़ातीं।

उसी दिन भवनाथ बाबू बाज़ार से नारियल ख़रीद लाते। कहते, ''आज घी का छौंक लगाकर नारियल वाली दाल बनाओ...''

''अरे, नारियल खाने से तो ख़ून में चर्बी भर जाएगी। या गाँव के ही नारियल में तेल भरा होता है जी!'' मुँह बिचका देती हैं नेत्रमणि। भवनाथ बाबू अपने चेहरे पर मुस्कान लाते हुए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहते हैं, ''अरे छोड़ो, एकाध दिन दाल में नारियल डालकर खाने से क्या चर्बी बढ़ जाएगी? किंतु गाँव के नारियल घर में लुढ़कते फिरेंगे तो रोज़ मन होगा नारियल खाने का, इसलिए बाज़ार से एक-एक करके लाओ और खाओ। चर्बी-फर्बी कुछ नहीं बढ़ेगी।''

पति और पत्नी एक साथ ठहाका लगाते।

नेत्रमणि को यह शिकायत थी कि यदि भवनाथ बाबू घर-गृहस्थी में थोड़ा ध्यान देते तो अब तक उस शहर में उनका एक छोटा-सा मकान बन चुका होता। उन्हीं के साथ के लोग समान तनख़्वाह पाने वाले, चावल ख़रीदकर भात खाने वाले मकान बना चुके हैं। जबकि 'चावल गाँव से आता है' कहकर शान दिखाने से क्या लाभ? गाँव से चावल न आता होता तो शायद वे भी अपना मकान बना चुके होते।

दोपहर में सभी बाबुओं की पत्नियाँ इकट्ठी होकर अपनी राय देतीं। सबकी राय अलग-अलग होती, सिर्फ़ एक बात को छोड़कर। वह बात है पति की निंदा। सबकी एक ही राय होती कि उनके पति घर-गृहस्थी चलाने में असमर्थ हैं। नौकरी और अख़बारी राजनीति के सिवा उन्हें कुछ नहीं आता। मानो जिस दिन वे रिटायर्ड होंगे, उसी दिन से ऑफ़िस बंद हो जाएगा। ऑफ़िस से लौटते समय सारा ऑफ़िस घर ही पर उठा लाएँगे। जबकि घर से बाहर जाते समय दिमाग़ से यह निकाल देंगे कि वे शादीशुदा हैं, उनका एक परिवार है, बीवी-बच्चे हैं। घर लौटने पर अख़बारी राजनीति से घर का माहौल गरमाने लगता है। इससे क्या लाभ? कौन सुनता है तुम्हारी बातें, सुनने पर दो पैसे का लाभ भी तो नहीं! काश, सचमुच की राजनीति ही करते तो तकिए के नीचे से, कचरे की टोकरी से करोड़ों रुपए निकलते। ये सब तो छोटी-मोटी राशि है! चिल्लर की तरह। असल रुपए न जाने कितने होंगे... देखकर सचमुच में दिमाग़ ख़राब हो जाता नेत्रमणि का। राजनीति न करके नौकरी से भी जिन लोगों ने अपना मकान बनाया है, यहाँ-वहाँ से थोड़ी-बहुत संपत्ति जुटाई है, बेटा-बेटी को पैरों पर खड़ा किया है—शादी-विवाह करवाया है, वह सब सिर्फ़ बीवियों की क़ाबिलीयत और मेहनत से ही संभव हुआ है। वरना बच्चे मूर्खों की तरह इधर-उधर मारे-मारे फिरते। ऐसे पतियों का मन यदि गृहस्थी से इतना दूर रहता है तो उन्हें शादी ही नहीं करनी थी। अपने मकान में रह रहे हों या किराए के मकान में, सभी पतियों के विरुद्ध यह शिकायत थी बीवियों की।

भवनाथ बाबू पर तो आरोप और भी गंभीर थे। नेत्रमणि कहती हैं, ''उनका नाम भवनाथ न रखकर भावुकनाथ, भवषंडानाथ या भोलानाथ रखा गया होता तो अधिक उपयुक्त होता। किसी बात में मन नहीं लगता उनका, सिर्फ़ लिखना, पढ़ना, भाषण देना और अच्छे बने रहना...गनीमत है, लड़के-लड़कियों की शादियाँ हो गईं। नेत्रमणि पति के पीछे गँरौंची-सी न चुभती होतीं तो बच्चे आवारा बने डोल रहे होते। बाज़ार जाएँगे तो ध्यान से पैसे भी दुकानदार से वापस नहीं लेंगे। दुकानदार ने दिए तो दिए, नहीं दिए तो न सही। एक चीज़ लाएँगे तो दूसरी दुकान पर ही छोड़ आएँगे। दाल मसाला छोड़ आएँगे सब्ज़ी की दुकान में, सब्ज़ी का थैला छोड़ आएँगे मछलीवाले की दुकान में। साईकिल से जाएँगे। चौराहे से टिकाकर सौदा ख़रीदेंगे। सौदा रिक्शे में लादकर घर पहुँच जाएँगे। गेट के भीतर झाँकते हुए पूछेंगे, ''अरे! मेरी साईकिल कहाँ गई? अच्छा-अच्छा—शायद मैं बाज़ार ले गया था!'' ग़नीमत है कि दुकानदार पहचानते हैं। चौराहे पर भी कुछ लोग उन्हें पहचानते हैं, मानते भी हैं, थोड़ा सम्मान भी करते हैं। इसलिए चीज़ें खोती नहीं हैं। दुबारा जाकर ले आते हैं। दुकानदार रखे रहता है। ऐसे आदमी के साथ रहते हुए भी आज तक उनका दिमाग़ ख़राब नहीं हुआ, इसका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मतलब उनकी बुद्धि और मस्तिष्क मज़बूत हैं।

अब बुढ़ापे में एक स्कूटर ख़रीदा है। सेकेंड हैंड या थर्ड हैंड। नेत्रमणि को कई बार घुमाने ले गए हैं। शुरू-शुरू में डर लगता था। बाद में बहुत अच्छा लगने लगा पति के पीछे बैठकर उड़ते समय। लेकिन उस दिन की घटना के बाद से नेत्रमणि ने तौबा कर ली स्कूटर पर बैठने से। पति-पत्नी कटक गए थे। लौटते समय रास्ते में पाहाल चौराहा पड़ा। गरम-गरम रसगुल्ले कढ़ाई में तैर रहे थे। रात के आठ बज चुके थे। घर लौटकर अब कौन साग-सब्ज़ी बनाएगा। रोटी बनाकर खीर-रसगुल्ले के साथ ख़ुशी से खाई जा सकती है। भवनाथ बाबू को भी अच्छा लगता है। सड़क किनारे का थूक-खँखार, धूल-धक्कड़ भले ही मिला हो, रसगुल्ले होते बड़े स्वादिष्ट हैं। पत्नी के कहने का स्कूटर रोककर रसगुल्ले ले आए। पत्नी के हाथ में रसगुल्ले का पैकेट पकड़ाकर स्कूटर स्टार्ट किया। साड़ी का पल्लू कमर में खोंसकर पत्नी के बैठने से पहले ही स्कूटर लेकर उड़ चले। जब तक नेत्रमणि पीछे से बुलातीं, स्कूटर के शोर के बीच भवनाथ बाबू थोड़ी दूर निकल गए। नेत्रमणि ने सोचा ज़रूर लौटेंगे। कुछ दूर जाने के बाद समझ जाएँगे कि पीछे पत्नी का बोझ नहीं है—आवाज़ भी नहीं आ रही। पत्नी का आँचल उड़ भी नहीं रहा। स्पीड ब्रेकर पर गिरते-गिरते बच जाने पर पति को मृदुगाली की ताड़ना भी नहीं है...पत्नी की चूड़ियों की खनक, तेल-पाउडर की महक... छोड़ो, वह तो न उन्हें दिखता है—न महकता है—जबकि गृहस्थ लोगों में गिने जाते हैं। कैसे घर पहुँचने तक नहीं जान पाए कि रात को आठ बजे पत्नी को पाहाल चौराहे पर रसगुल्ले पकड़ाकर स्कूटर से घर तक उड़े चले आए!

घर पहुँचकर सोचा कि पत्नी अपनी लापरवाही की वजह से कहीं गिर पड़ी होगी। हाथ या पैर कुछ-न-कुछ तो ज़रूर टूटा होगा। कटक-भुवनेश्वर की सड़क है ही ऐसी। यदि तेज़ रफ़्तार से आती किसी कार, ट्रक या बस ने पीछे से कुचल दिया होगा, तब तो स्पॉट...आगे सोचने का साहस नहीं हुआ। सीधे पहुँचे थाने में, ''सर, मेरी पत्नी दुर्घटनाग्रस्त होकर सड़क पर पड़ी है। तुरंत अस्पताल पहुँचाने का इंतज़ाम करवाइए। यदि उसे कुछ हो गया तो मैं कहीं का नहीं रह जाऊँगा...!''

उधर पत्नी ग़ुस्से से, लाज से, दुख से, परेशान बस में बैठकर घर चली आई। पति रात को क्या खाएँगे, उस चिंता में ग़ुस्सा भी कुछ कम हो गया था। पहले जी भरकर रोटी और रसगुल्ला खिलाएँगी—उसके बाद खिलाएँगी गाली, जो भी जी में आएगा। पर पतिदेव गए कहाँ? आधी रात को एक सिपाही आकर उन्हें घर छोड़ गया। गेट के पास से सांत्वना वाणी सुनाई दी, ''रातभर इंतज़ार कर लीजिए। पुलिस आउटपोस्ट से हमने पता किया है, ऐसी कोई औरत सड़क पर नहीं पड़ी है। यदि किसी ने तरस खाकर अपनी गाड़ी में ले जाकर किसी अस्पताल में भर्ती करवा दिया होगा, कल सुबह तक हम ज़रूर पता लगा चुके होंगे।''

''बहुत-बहुत धन्यवाद सर, आपका यह उपकार कैसे चुकाऊँगा! परंतु रात कैसे बीतेगी, इसी सोच में पड़ा हूँ...''

भवनाथ बाबू की वह रात कैसी बीती, यह वे ख़ुद भी भूल चुके होंगे। किंतु नेत्रमणि नहीं भूलीं। बाल-बच्चों की माँ न हुई होती—दो पैसे कमाने की क्षमता होती, उम्र और शरीर इस तरह ढल न गया होता तो उसी दिन उनसे अलग हो गई होतीं। हँह, पत्नी को रास्ते में छोड़कर इस तरह पुलिस के सामने ऋणी होने का ढोंग ज़रा देखो! एक-एक ऐसा कांड करेंगे जिसकी एकमात्र कैफ़ियत वे ही जानते हैं। ''सब क़िस्मत का खेल है। और नहीं तो क्या, ऐसा न होता तो मैं स्साला पट्टू न तो रसगुल्ले लेने वहाँ रुकता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और ना ही तुम मेरी जग-हँसाई करवाती! कल सुबह क्या कहूँगा थानेदार साहब को जाकर...''

तब से नेत्रमणि स्कूटर पर नहीं बैठतीं। यदि वे फिर कभी स्कूटर पर नहीं बैठीं तो उसमें बदनसीबी भवनाथ बाबू की नहीं है, ख़ुद उन्हीं की है। साथ बैठकर पतियों की अकर्मण्यता, असावधानी, उदासीनता इत्यादि की सूची बनाते भवनाथ बाबू ने औरतों को सुना है; पर चुप हैं। मुँह खोलने का उपाय नहीं। क्योंकि सभी पति पुरुष के रूप में प्रशंसनीय होते हुए भी गृहस्थ के रूप में पूरी तरह निर्दोष नहीं हैं, ना ही पत्नियाँ पूरी तरह झूठी हैं। उनकी बातों में कुछ तो सच्चाई होती ही है। पुरुष उतने घरेलू नहीं होते, जितनी कि पत्नियाँ—पृथ्वी के प्रारंभ काल से ही पुरुष जाति शिकार, कृषि, शिल्प, कला, विज्ञान, दर्शन, धर्म, समाज-तत्त्व, चिकित्सा-शास्त्र, युद्ध-विद्या, आदि सभी विद्याओं के प्रवर्तक हैं, यहाँ तक कि चोरी विद्या, जुवाड़ी विद्या, डकैती विद्या, ठगबाज़ी विद्या के भी प्रवर्तक वे ही हैं। वे ही सभ्यता गढ़ते हैं, वे ही ध्वंस करते हैं। किंतु गृहस्थ-विद्या में पत्नियों से कम होते हैं। घर और परिवार से ही संस्कृति बनती है। किंतु संस्कृति को बचाकर रखनेवाली होती हैं पत्नियाँ।

भगवान ने इस ब्रह्मांड की सृष्टि की। ऐश्वर्य और सारी विद्याओं के जनक हैं विधाता। किंतु अर्थ भंडार का दायित्व सौंपा माँ लक्ष्मी को, काल, संगीत, विद्या और संस्कृति की ज़िम्मेदारी सौंपी वाग्देवी सरस्वती को। इससे प्रमाणित होता है कि पुरुष अर्थोपार्जन करेंगे जो कि परिवार के लिए अपरिहार्य है; किंतु अर्थ लाकर रखने से हिचकेंगे। औरतें घर में चौबीसों घंटे यह करो, वह करो, ज़मीन, जायदाद, घर-संपत्ति बढ़ाओ, बच्चों के भविष्य के लिए विद्या-बुद्धि पर अर्थ ख़र्च करो, इसके लिए अमुक करना है, उसके लिए ढमुक, हमें भी चाहिए, इसका बेटा घोड़ा चढ़ता हैं, उसका बेटा गाड़ी चढ़ता है, हमारे बच्चे वैसे होने चाहिएँ; इस तरह बकर-बकर करती रहेंगी दिन भर। मर्द सह रहे होंगे, पर जवाब नहीं देंगे, और यदि जवाब दे भी रहे होंगे तो उसमें अनिश्चितता अधिक होती होगी, ''ठीक है, करेंगे, रुक जाओ कुछ दिन—जल्दबाज़ी करने से कुछ नहीं होगा...'' इत्यादि। औरतें मर्दों की तरह दीर्घसूत्री नहीं हैं। जो होना है, वह मुँह से निकलते ही हो जाना चाहिए। करूँगा, करूँगा कहने से पीछे रह जाओगे, और दूसरे आगे निकल जाएँगे। जिस तरह क़ीमतें बाढ़ के पानी की तरह हरहराकर बढ़ रही हैं, उसमें दीर्घसूत्री आदमी का भविष्य कुछ है क्या?

मर्द कुछ नहीं करेंगे, ऐसा भी नहीं है; किंतु हमेशा पत्नी की धिक्कार रूपी प्रेरणा उन्हें आगे धकेल रही होगी। इसीलिए धूप में, बारिश में, आँधी-तूफ़ान में सब कुछ करेंगे—दिखेगा कुछ न करने जैसा। निठल्ले पति के रूप में गिने जाएँगे। लोगों को बुला-बुलाकर कहेंगे, ''आदमी औरत की ज़िद की वजह से यह सब करता है। वरना इतनी परेशानी में पड़कर यह सब करने की मेरी इच्छा नहीं थी। औरतें कुछ करेंगी नहीं, सिर्फ़ कहेंगी भर, कह-कहकर पतियों से पूरे ब्रह्मांड का काम करवा लेंगी; जबकि बाहर मालूम पड़ेगा कि मर्द ही सब कुछ कर रहा है। भवनाथ बाबू को पत्नी के कहने पर उतनी संपत्ति, घर-द्वार बनाने की सुविधा या अवसर नहीं मिली यह सच है, पर पत्नी के कहने पर अपनी इच्छा के विरुद्ध ढेरों काम किए हैं उन्होंने जीवन में। औरतें इच्छाधारी होती हैं। किसी के दांपत्यकाल में पत्नी की अधिकतर इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, जबकि पति की एकाध इच्छा, पर बाहरवालों को दिखता होगा जैसे कि पत्नी बेचारी पति की इच्छा से प्रतिदिन प्रतिपल बलि चढ़ रही है। यह भवनाथ बाबू की राय है। हर पति-पत्नी की इच्छा-यज्ञ में बलि ज़रूर चढ़ता होगा। घर के बाहर डींगे हाँकता होगा, ''पत्नी के कहने पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उठ-बैठ करनेवाला मर्द कम से कम मैं नहीं'' भवनाथ बाबू की तरह।

आज भी पत्नी के ही कहने पर वे थाना में इत्तला दे आए। उन्हें क्रोध नहीं आ रहा था, क्षोभ नहीं हो रहा था, ऐसी बात नहीं थी। पर एक ग़रीब आदमी के विरुद्ध रिपोर्ट लिखवाने को मन नहीं मान रहा था। मन न मानने के दो कारण थे। पहला था—उस आदमी ने न तो उनके घर चोरी की थी और ना ही चाक़ू दिखाकर ज़बर्दस्ती उन्हें लूटा था। उन्होंने ख़ुद ही उसके हाथों में अपना सामान सौंप दिया था। भूखे आदमी की थाली में भात परोसने से वह खाएगा या नहीं? और दूसरा कारण था—वह आदमी वर्षों से उनका सम्मान करता आया है। कभी-कभी ख़ुद ही उनके हाथों से सब्ज़ी का थैला लेकर रिक्शे तक पहुँचा देता। बारिश में ऑटो से उतरते समय किसी से छतरी माँगकर उसने उन्हें एक-दो बार भीगने से बचाया है। बीड़ी या पिका पीते वक़्त उन्हें देखते ही झिझकते हुए बुझाकर कान में खोंस लेता था। इन सबकी क़ीमत उन्होंने कभी नहीं दी उसे। आज उसी आदमी को चोर कहकर इसके विरुद्ध रिपोर्ट लिखवाते समय विवेक आड़े आएगा या नहीं? नेत्रमणि ने कहा, ''क्या विवेक सिर्फ़ नौकरी करनेवाले मध्यवित्त परेशान लोगों के लिए ही छड़ी लेकर बैठा होता है? जो सबसे ऊपर बैठे हैं उनके विवेक कहाँ गए होते हैं? दिन-दहाड़े सबकी आँखों के सामने लूट मचाए रहते हैं, लूट भी नहीं, ख़ून चूसते रहते हैं। उसका प्रमाण यह है कि जिस ओर भी वे लोग जाते हैं, उनकी गाड़ी के पीछे-पीछे एक-एक रक्त-शोषक गाड़ी चलती रहती है। जब चाहे तब उनके ऊँचे पद की मोटी धमनी के लिए ख़ून की ज़रूरत पड़ जाती है। किसका होता है वह ख़ून? आम जनता का। तैयार रहता है बोतलों में उनकी गाड़ी के पीछे-पीछे। जो मासूम जनता, देश, जन्मभूमि, संस्कार, परंपरा और राष्ट्रीय संस्कृति का ख़ून चूसते हैं भला उनमें विवेक नाम की चीज़ होती भी है?''

और फिर नीचे की ओर देखो घटिया लोगों के संस्कार ओछे और बुद्धि नीच होती है। नाले, गंदगी, कूड़ों के ढेर के बीच वे जन्म लेते हैं और ज़िंदगी गुज़ारते हैं। वहाँ विवेक भी गंदगी से लथपथ होती है। वे लोग अपराध कर सकते हैं आँख मूँदकर। पुलिस के हाज़त में रहने से बड़े लोगों का क़द बढ़ता है तो छोटे लोगों की नीचता झलकती है।

मनुष्य का सपना और उसकी इच्छा पूरी करने की दिशा में अकसर हलचल मचानेवाला रूढ़िवादी विवेक नीचे से ऊपर की ओर धकेले जाकर आश्रय लेता है बीच के मध्यवित्त भवनाथ बाबू जैसे परेशान 'बाबू' लोगों के भीतर। इसीलिए आज भवनाथ बाबू परेशान हैं उस आदमी के बारे में पुलिस में रिपोर्ट लिखवाने के बाद। दो दिन तक इंतज़ार किया, सोचा वह आदमी रास्ता भूल गया होगा और उन्हें ढूँढ़ रहा होगा। उनका चावल उन्हें ज़रूर मिल जाएगा। किंतु वे और कितना इंतज़ार करें? पत्नी नेत्रमणि ने यही समझा दिया, ''हम लोगों ने दो दिनों तक इंतज़ार किया। किसी से कुछ नहीं कहा। कोई कम कष्ट नहीं हुआ। मध्यवित्त को आख़िर कितना दंभ होता है!''

एक बार किसी ने उनकी एक महीने की तनख़्वाह की पॉकेट मार ली थी। तब उतना कष्ट नहीं हुआ था। सँभाल लिया था उन्होंने ख़ुद को। किंतु एक साल का अन्न था दो बोरी निर्मल, स्वादिष्ट, स्वास्थ्यवर्धक गाँव का चावल। उफ़्फ़! भवनाथ बाबू को कितना कष्ट हुआ था दो दिनों तक ये वही जानते हैं। अपनी लापरवाही के लिए ख़ुद ही पर खीझ, उस व्यक्ति को प्रताड़ना दिलाने के लिए क्षोभ, एक साल के लिए अन्न की चिंता, शहर का कंकड़भरा घटिया चावल, एक साल तक खाने की उधेड़बुन, सबसे अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्नी के कटुवचन, पास-पड़ोसियों के सुविज्ञ सुझाव—सब मिलकर उच्च रक्तचाप और दिल का दौरा पड़ने के लिए काफ़ी थे। दो दिनों तक बेचारे पागलों की तरह डोलते रहे पूरे बाज़ार में, एक चौराहे से दूसरे चौराहे, एक टोले से दूसरे टोले। पर उस आदमी को नहीं ढूँढ़ सके।

दो दिनों से खाने-पीने और सोने का ठिकाना नहीं है। हाँ खाई तो है, पत्नी की भर्त्सना अधिक खाई है, आँखों से नींद उड़ चुकी है। उस मूर्ख गँवार द्वारा ठगे जाने के कारण उनके अहंकार को ठेस पहुँचने की रक्ताक्त यंत्रणा सारी यंत्रणाओं को लाँघ चुकी है। इतने सालों के अगाध, सरल, निर्मल विश्वास टूटने की व्यथा ने उन्हें मायूस कर दिया है। तो क्या इतने दिनों तक वह आदमी नाटक कर रहा था? कोई मौक़ा ढूँढ़ रहा था उन्हें बुद्धू बनाने का? क्या वह उन्हें देखकर समझ गया था कि यह आदमी गाय की तरह सरल और सीधा है और मौक़ा मिलने पर ठगा जा सकता है? क्या अब वह मन ही मन मुस्कुरा रहा होगा? सोच रहा होगा किताबी ज्ञान का बाज़ार दर कितना कम है, ये साहब बूढ़े ज़रूर हो गए हैं पर उसकी चाल समझ नहीं पाए।

वह आदमी उनसे अपरिचित नहीं है। किसी भी दिन उससे सामना हो जाएगा। पर इतनी घटिया हरकत करने का साहस कैसे किया उसने? मुलाक़ात होने पर क्या बात को घुमा-फिराकर कह देगा, ''कौन-सी चावल की बोरियाँ? ट्रक से उतारकर मेरी ट्रॉली में लादी थीं? मेरे आगे-आगे रास्ता बताते हुए स्कूटर पर जा रहे थे और ख़ुद बीच रास्ते में ग़ायब हो गए? अरे बाबू जी, कोई भी ट्रॉली को आगे रखकर ख़ुद पीछे-पीछे चलता है, आपने आगे-आगे रहकर चावल की बोरियाँ किस बुद्धि से पीछे रखीं? कोई भी आपको चूना लगा सकता है। किंतु मैं वैसा नहीं हूँ। जान-पहचान के लोगों को चूना लगाने वाला मैं नहीं हूँ, बाबू जी। किसी और ट्रॉली में चावल लाद दिया होगा आपने और मुझे इसलिए पकड़ रहे हैं कि पिछले पाँच सालों से मैं आपको प्रणाम करता आया हूँ... ।''

हाँ, चोर मुँहज़ोर भी होते हैं। भवनाथ बाबू के चेहरे पर निर्बोध सरलता, जीव-मानव के प्रति दया-भाव, संसार-विरागी उदासीपन मानो साफ़-साफ़ पढ़ा जा सकता है, कोई भी उनकी ओर देखकर झूठ कह सकता है। इसलिए वह आदमी ऐसा साहस क्यों नहीं करेगा? उनकी निर्बोधता के पक्ष में और उस घटिया आदमी की साधुता के विपक्ष में पिछले दो दिनों से पत्नी उनके कान के पास ऐसे अकाट्य तर्क दे रही हैं कि भवनाथ बाबू को उस आदमी के अतीत के सारे सद्गुण अब दुर्गुण लगने लगे हैं, लगता है उस आदमी का सारा आचरण कपटभरा था। जो सच्चा और सरल होता है, उसी के साथ कपटपासा खेला जाता है। पांडवों के साथ शकुनि और कौरव ही कपटपासा खेल सकते थे। कुटिल और दुष्ट से धूर्तता करके भला कोई जीत सका है?

तो क्या इतने दिनों तक वह आदमी उनके साथ कपटपासा खेल रहा था? वरना उस दिन ट्रक से चावल की बोरियाँ उतारते समय अचानक वह ट्रॉली लेकर वहाँ कैसे पहुँच गया? फिर क़ुली को आवाज़ लगाते समय दौड़ते हुए आकर उसने बोरियाँ क्यों उतार लीं और चिर-परिचित व्यक्ति-सा बोला, ''मेरे साथ धीरे-धीरे आप आइए। मैं बोरियाँ घर पहुँचा दूँगा।'' वह कैसे समझ गया कि उसी की ट्रॉली में भवनाथ बाबू चावल घर ले जाएँगे? जीवन में कभी भी भवनाथ बाबू उस आदमी की ट्रॉली में कोई सामान घर नहीं ले गए। उनका चावल उनके गाँव के ट्रक-चालक नवधनिया के ट्रक में बैठकर उनका हलवाहा ले आता है और वही ट्रॉली करके दो बोरी चावल डेरे तक पहुँचा जाता है। कभी कोई कुटुंबी आता है तो साथ चावल ले आता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साल में एक बार की है यह व्यवस्था। इस साल हलवाहा सख़्त बीमार है। इस बीच गाँव से भी कोई आनेवाला नहीं था। उनके गाँव का नवधनिया बहुत विश्वासी है। उसी के ट्रक में भैया ने चावल भिजवा दिया था और पहले से ख़बर कर दी थी कि किस समय कहाँ ट्रक का इंतज़ार करना है। भवनाथ बाबू से ये सब धंधे नहीं हो पाते। ट्रॉली वाले से किराया तय करना होगा। चावल की बोरियाँ देखकर न जाने कितना किराया हाँक दे? चलो ठीक है, घर में चावल भी ख़त्म हो चला है। अच्छा किया जो भैया ने सोच-समझकर नवधनिया के ट्रक में चावल भेज दिया। वरना कुछ दिनों तक बाज़ार से ही चावल ख़रीदकर खाना पड़ता।

ट्रक से जहाँ चावल उतरने की बात थी, वहाँ उस आदमी को देखकर भवनाथ बाबू आश्वस्त हुए थे। चलो, इतने दिनों के पहचान वाला विश्वासी आदमी है। दस-बीस रुपए अधिक देकर इतने दिनों के परिचय का ऋण भी चुका देंगे। पहले से ही उस जगह पहुँचकर ट्रॉली के किराए के बारे में पूछ-ताछ कर लिया था भवनाथ बाबू ने। उस आदमी ने जब उससे भी बीस रुपए कम किराया बताया, भवनाथ बाबू को आश्चर्य हुआ। शायद इस आदमी ने जान-पहचान होने के कारण बीस रुपए कम बताए हैं। ग़रीब होते हुए भी घटिया मिज़ाज का नहीं लगता। सज्जन है। हँह सज्जन! ये नीच लोग भला सज्जन होंगे। देखो तो कैसी सज्जनता दिखाई उसने!

भवनाथ बाबू उसके ट्रॉली-रिक्शा के साथ-साथ धीरे-धीरे स्कूटर चलाते हुए न जाने कब थोड़ी-सी रफ़्तार बढ़ाकर आगे निकल गए। आगे बढ़ने के बाद पीछे मुड़कर यह देखने के लिए कि वह आदमी आ रहा है या नहीं, उन्हें संकोच हुआ। छिः वह आदमी सोचेगा कि ये साहब बड़े घटिया हैं। [illegible] सच्चे इंसान पर शक कर रहे हैं। वह आदमी उनके पीछे-पीछे ज़रूर आ रहा होगा। ठीक उसी वक़्त चौराहे की लाल-बत्ती का जलना भवनाथ बाबू देख नहीं पाए, क्योंकि वे चौराहा पार कर चुके थे। वह आदमी चावल की ट्रॉली के साथ रुक गया था चौराहे के उस ओर। भवनाथ बाबू निश्चिंत हो जाने के कारण लापरवाह हो गए थे ट्रॉली के बारे में और उसी कारण चावल की बोरियों की ओर ध्यान न देकर हमेशा की तरह अन्यमनस्क हो जा पहुँचे अपने मित्र कमललोचन के डेरे पर। रविवार होने की वजह से दोनों मित्र काफ़ी देर तक गपशप करते रहे। तीन कप चाय पी गए। जब कमललोचन ने कहा, "भाभी को फ़ोन कर दे। इंतज़ार न करे। तू आज यहीं लंच करके जाना। गाँव से माँगुर मछली आई है, तरीदार बनाने को कहा है।"

झट से भात की थाली में गाँव के चावल का भात दिखने के साथ-साथ चावल की बोरियों की बात भी उन्हें याद आ गई। पर वे विचलित नहीं हुए। शायद ट्रॉली वाले ने अब तक उनका मकान ढूँढ़ लिया होगा। वह तो भवनाथ बाबू को कई सालों से पहचानता है। एक और चौराहा पार करके बाएँ हाथ वाली गली में जाकर दाहिने हाथ की ओर दो बार मुड़ने पर तीसरा ही मकान तो है उनका। मकान के आगे कटहल का एक झबरा पेड़ है। गेट पर नाम की पट्टी लगी है। मकान ढूँढ़ने में क्या दिक़्क़त होगी? लोग पूछते-पाछते लंका से आकर भी उनका मकान ढूँढ़ लेंगे।

इस बीच तीन घंटे बीत चुके थे। दो बार मूसलाधार बारिश भी हो चुकी थी आधे घंटे पहले। बादल छाए हुए थे, चारों ओर अँधेरा था। बंद कमरे में बैठे होने के कारण बाहर का उजाला-अँधेरा कुछ मालूम नहीं पड़ा। अर्थात् ट्रॉली वाले ने चावल की बोरियाँ घर पहुँचा दी होंगी। नेत्रमणि ने उसे किराया दे दिया होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हालाँकि जो बीस-पच्चीस रुपए ज़्यादा दे देने के बारे में उन्होंने सोचा था, वह नहीं दिया होगा। क्यों देंगी वे ज़्यादा ? क्या उन्होंने कभी उस आदमी के विनम्र नमस्कार का स्वाद चखा है ? बल्कि उस आदमी के साथ चिक-चिक करके बीस रुपए काट लिए होंगे। भवनाथ बाबू ने इतने रुपयों में जो किराया तय किया उसके लिए रिक्शेवाले के आगे और उनके पिछवाड़े उनके गृहस्थीपन व बुद्धि के लिए मन ही मन ख़ूब बड़बड़ा रही होंगी। उस आदमी ने अपने अति विनम्र स्वभाव और भवनाथ बाबू के प्रति सम्मान के कारण जितना किराया मिला होगा, मुँह बंद करके ले लिया होगा और चुपचाप चला गया होगा। किंतु नेत्रमणि के लिए यह उचित नहीं कि उस ग़रीब का पैसा काटें। पर उनके आगे मुँह कौन खोले ?

बल्कि इसके लिए उनकी प्रशंसा करनी होगी। महिलाओं की विचित्र बचत और हास्यास्पद मितव्ययिता के बारे में सोचने पर भवनाथ बाबू अपना ग़ुस्सा प्रकट न कर पाकर मन ही मन मुस्कुरा लेते हैं। पाँच रुपए कम में कोई चीज़ ख़रीदने के लिए दस-बीस रुपए रिक्शा किराया ख़र्च करके दूर की दुकानों में जाती हैं। प्रसाधन सामग्री, विशेष छूटवाली साड़ियाँ आदि ख़रीदने में ठगी जाती हैं और अनाप-शनाप पैसे बर्बाद करती हैं; जबकि पुराने अख़बार, पुरानी बोतलें, डिब्बे, अल्युमिनियम के बर्तन इत्यादि बेचते समय दर और कम-ज़्यादा तौल को लेकर झिक-झिक करके नाहक अपना समय बर्बाद करती हैं। सोने के गहने बदलते समय तौल, खाँटी, मिलावटी और ख़रीद-बिक्री की दर को लेकर अपना कितना नुक़सान करती हैं, यह जानते हुए भी परवाह नहीं करतीं। पर अल्युमिनियम के पुराने बर्तन बदलते समय पाँच-दस रुपए के लिए फेरीवाले से महाभारत छेड़ देती हैं। बहरहाल यदि नेत्रमणि ने उस बेचारे के पैसे काटे होंगे, तो उससे फिर कभी मुलाक़ात होने पर लौटा देंगे।

भवनाथ बाबू घर पर फ़ोन करने के बाद कुछ घबरा गए। चावल की बोरियाँ अभी तक घर नहीं पहुँची थीं तो क्या उस मूर्ख को घर नहीं मिला ? फिर लंच क्या करते, घर पर डाँट पड़ने के डर से भवनाथ बाबू स्कूटर पर छूट पड़े। रास्ते भर भगवान का स्मरण करते रहे ताकि उनके पहुँचने से पहले चावल की बोरियाँ घर पहुँच जाएँ। परंतु भगवान कई बार ऐसी छोटी-छोटी प्रार्थनाएँ अनसुनी कर देते हैं। अरे मालिक आप विधाता हैं, बड़े आदमी हैं। आपके लिए यह प्रार्थना नगण्य हो सकती है, भवनाथ बाबू जैसे एक ग़रीब गृहस्थ के लिए तो यह एक बहुत बड़ी प्रार्थना है।

घर पहुँचते ही भवनाथ बाबू को पत्नी के पहले सवाल का सामना करना पड़ा, ''क्या वह आदमी तुम्हें पहचानता है ?''

''हाँ, पिछले पाँच-सात सालों से उससे मेरी मुलाक़ात होती रही है। नमस्ते भी करता था मुझे।''

''घर का पता दिया था उसे ?''

''नहीं, मैं तो उसके साथ-साथ ही चल रहा था। बीच में भीड़ में फँसकर मैं उसे भूल गया और वह रास्ता भटक गया।''

''क्या तुम्हारा नाम उसे मालूम है, कैसे चलेगा उसे तुम्हारे घर का पता ? तुम क्या महात्मा गांधी हो या अमिताभ बच्चन जो तुम्हें देखते ही तुम्हारा नाम-गाँव जान जाएगा !''

''किसी से भी पूछने पर मेरे घर का पता बता देगा...मुझे यहाँ के लगभग सभी लोग जानते हैं।'' अपने बचाव में कहा भवनाथ बाबू ने; पर उनकी बात में दम नहीं था। वास्तव में उसने क्या पूछा होगा किसी से उनके बारे में ? एक साहब को मैं नमस्ते करता हूँ। एक अच्छे साहब हैं। बड़े विद्वान हैं, अच्छा भाषण देते हैं। ख़ुद ही सौदा ख़रीदते हैं। पहले [illegible] चलाया करते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे, अब एक पुराना स्कूटर चलाते हैं। साँवले हैं—ज़्यादा लंबे भी नहीं, ठिगने भी नहीं, बाल अधपके हैं, चश्मा लगाते हैं, फ़ुलपैंट के साथ हाफ़शर्ट, यही सदाबहार पोशाक है...बस, क्या इतने से वे पहचान में आ जाएँगे! इस शहर में ढेरों लोग भाषण देते फिरते हैं, वे क्यों ख़ुद को अनन्य समझते हैं? और फिर उस आदमी ने उनका भाषण सुना भी है या नहीं, उन्हें नहीं मालूम। सिर्फ़ अनुमान लगाते आए हैं इतने दिनों से कि वह आदमी शायद इसीलिए उन्हें विनम्र-प्रणाम करता है। बाक़ी की तो हर चीज़ दूसरे लोगों से मिलती-जुलती है। कैसे घर ढूँढ़ पाएगा बेचारा! फिर सोचा, ''कोशिश की होती तो ज़रूर ढूँढ़ लेता। या फिर उसी चौराहे पर ट्रॉली लिए बैठा रहता, जहाँ से वे साग-सब्ज़ी ख़रीदते हैं। जहाँ अकसर उससे मुलाक़ात होती है...'' दो दिनों तक दिन में दो-चार बार सब्ज़ी मंडी के चौराहे का चक्कर लगाया भवनाथ बाबू ने। वह आदमी नहीं मिला। स्साला, पक्का मुज़रिम है। चावल की बोरियाँ बेचकर शराब पीकर कहीं पड़ा होगा। चौराहे के चावल की दुकानों में पूछा, ''आजकल में किसी ने आपको दो बोरी चावल बेची हैं क्या?'' सबने मना कर दिया।

स्साले सबके सब धोखेबाज़ हैं। क़ुली-मज़दूरों से कम दाम में चावल ख़रीदते होंगे तो मानेंगे कैसे? उस आदमी के बारे में किससे पूछें? वे भी उसका नाम नहीं जानते। हँह, भला उन लोगों का नाम कौन जानता है। साल-दर-साल उनसे लेन-देन करते होंगे, पर उनका नाम नहीं जानते होंगे। ट्रॉली वाला, रिक्शावाला, मज़दूर, क़ुली, इतने से ही काम चल जाता है; पर क्या पूछें उसके बारे में? लोग सुनकर हँसेंगे। फिर भी दो दिनों तक चौराहे पर मिलने वाले ट्रॉली वालों से उन्होंने पूछा, ''एक अधेड़, ट्रॉली चलाता है, मुझे देखते ही प्रणाम करता है। भला आदमी है। किस बस्ती में रहता है जानते हो?'' सभी ने मना कर दिया। एकाध जवान ट्रॉली वाले दाँत दबाकर मुस्कुरा उठे, ''इन्हें किसने प्रणाम किया हमने कब देखा, ये हैं क्या चीज़? नेता या साधु-संन्यासी!'' भवनाथ बाबू को बुरा लगा। 'वह आदमी चावल की बोरियाँ लेकर ग़ायब हो गया' कहने की भी हिम्मत नहीं हुई। उसके दोस्त-यारों के बीच उसकी छवि ख़राब हो जाएगी। हालाँकि उसने जान-बूझकर उन्हें ठगा है, फिर भी पुलिस की नज़रों तक ही वह चोर रहे? सबके आगे ढिंढोरा क्यों पीटें? अंत में थाने पहुँचकर रिपोर्ट लिखवा दी। उस आदमी का चेहरा वर्णन करने के अलावा और कोई चारा नहीं था। थानेदार पहचान के थे। भवनाथ बाबू की थोड़ी-बहुत इज़्ज़त करते हैं। रिपोर्ट लिख ली। वरना थाने में रिपोर्ट लिखवानी भी टेढ़ी खीर है। छोटे-मोटे चोर को पकड़ना तो बिलकुल असंभव है। पर थानेदार ने वायदा किया कि वह आदमी पकड़ा जाएगा।

रिक्शेवालों की जितनी बस्तियाँ हैं, सब पर धावा बोल देने से वह आदमी जाएगा कहाँ? कठोर सज़ा भी देनी होगी। स्साले गाँव से भागकर आते हैं और आते ही रिक्शा का हैंडल थाम लेते हैं। इनका असली व्यापार तो होता है चोरी, ख़ून-ख़राबा, गाँजा, अफ़ीम, ड्रग का कारोबार, बलात्कार, गुंडागर्दी...। शहर साफ़ रखने के लिए पहले इन नीच लोगों को खदेड़ना होगा। भवनाथ बाबू की धड़कनें बढ़ गईं। अनुनय करते हुए बोले, ''मेरी चावल की बोरियाँ भर मिल जाएँ। उस आदमी को सज़ा दिलाना मेरा मक़सद नहीं है। मुझे विश्वास है—वह आदमी पकड़ में आते ही मान लेगा। देखने में धूर्त नहीं लगता...आप उसे मारिएगा-पीटिएगा नहीं प्लीज़...!'' थानेदार मुस्कुराए। बोले, ''ठीक है, यदि मान जाएगा तो हम क्यों बिलावजह उसे पीटेंगे। आप ही जैसे लोगों को ये लोग फिर बुद्धू बनाएँगे! इन ओछे लोगों में मानवीयता जैसी कोई चीज़ नहीं होती।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भवनाथ बाबू दो कारणों से आश्वस्त हो घर लौट आए। पहला था, थानेदार उस आदमी को पकड़ने के लिए उतने सक्रिय नहीं होंगे। शहर में जितनी तेज़ी से ख़ून-ख़राबा बढ़ रहा है, ऐसे में इस छुटभैये ट्रॉली वाले को पकड़ने का समय ही कहाँ निकाल पाएँगे। थानेदार ने जो कुछ कहा, वह तो सिर्फ़ उनकी जीभ के आगे रखी हुई बातें थीं। अच्छा हुआ। वह आदमी पकड़ा भी गया तो चावल की बोरियाँ नहीं मिलेंगी। बेचकर डकार चुका होगा। नाहक ही पुलिस की मार से तिलमिलाएगा। यदि अपनी बदनसीबी से वह पकड़ा भी गया तो थानेदार ज़रूर उनका अनुरोध मानकर उसकी पिटाई नहीं करेंगे। थानेदार उनकी इज़्ज़त करते हैं। वह मूर्ख जो ठहरा कि उनका महत्त्व नहीं समझ सका, पर थानेदार क्या मूर्ख हैं? और सबसे बड़ी राहत तो यह कि नेत्रमणि कुछ शांत हो जाएगी। भर्त्सना की आँच उनकी ओर से हटकर मुड़ जाएगी असमर्थ पुलिस की ओर।

पिछले चार दिनों से मूसलाधार बारिश हो रही थी। कौवे भी घोंसले से बाहर नहीं निकल रहे थे। हालाँकि पुलिस की तत्परता से वह आदमी कल रात पकड़ा गया। घर में पड़ा कराह रहा था बुख़ार से। सब बहानेबाज़ी है। दारू पीकर पड़ा होगा। उसने तुरंत सब कुछ क़बूल लिया। हाथ जोड़कर बोला, ''साहब, उन बाबू को मेरे साथ-साथ चलना था, पर वे आगे निकल गए। लाल बत्ती के कारण मैं रुक गया। हरी बत्ती होने तक वे बाबू ग़ायब हो चुके थे। बहुत ढूँढ़ा साहब! पूरे शहर में ट्रॉली लिए हुए दो दिनों तक भूखा-प्यासा बारिश में भीगता हुआ उन्हें ढूँढ़ता रहा। चावल की बोरियों को पॉलीथिन से ढककर बचाता रहा, पर मैं खाँसी-बुख़ार में पड़ गया। किंतु उन बाबू का पता नहीं लगा सका। कैसे लगाता? उनका नाम तक तो मालूम नहीं, क्या करते हैं नहीं मालूम। किस मुहल्ले में रहते हैं नहीं मालूम। बड़ी परेशानी में पड़ गया था साहब...''

''चुप स्साले, निकाल चावल की बोरियाँ, परेशानी में तू पड़ गया या बाबू जी!''

''मैं तो बुख़ार में पड़ गया साहब जी! पर बाबू जी परेशान हो रहे होंगे, मुझे चोर समझ रहे होंगे—इसी चिंता में घुला जा रहा हूँ। अपने ही एक साथी ट्रॉली वाले को दारू-पानी दिया। दस रुपए भी दिए। बाबू जी को उसने भी देख रखा है। उसने कहा, किसी भी तरह पूछते-पाछते बाबू जी के मकान का पता लगा लेगा। चावल की बोरियाँ लेकर दो दिनों से निकला हुआ है। बारिश की वजह से मुझे आकर ख़बर तक नहीं दे सका। बाबू जी चावल की बोरियाँ अब तक ज़रूर पा चुके होंगे। आपने कष्ट क्यों किया साहब? क्या बाबू जी ने कहा कि मैं चोर हूँ?''

दो-चार पुलिसिया ठोकर लगाकर वे उस आदमी को थाने ले गए। स्साला इतना बड़ा ज़मींदार हो गया है कि दारू-पानी देकर, दस रुपए देकर किसी दूसरे ट्रॉली वाले को बाबू जी की चावल की बोरियाँ देकर भेजा है। वह ट्रॉली वाला अपने घर पर दो दिनों से नहीं है। अर्थात् फरार है। चावल की बोरियाँ लेकर, इसी आदमी के कहने पर। किंतु यह स्साला मानने को तैयार नहीं। चोर मुँहज़ोर होते हैं। कहता है, ''मैं चोर नहीं हूँ, मेरा दोस्त भी ओछी बुद्धि का नहीं है। बाबू जी को अब तक चावल की बोरियाँ मिल चुकी होंगी...''

थानेदार से पिछली रात इतना ही सुना था भवनाथ बाबू ने। यह सुनकर उन्होंने कहा था, आँधी-बारिश तो सचमुच हो रही है। कल तक और इंतज़ार करते हैं। यदि यह आदमी सच बोल रहा है, तो कल तक उसका दोस्त मेरा घर ढूँढ़ ही लेगा...''आपको क्या लगता है? वह आदमी सच बोल रहा है या...।''

''लगता है आप सतयुग के इंसान हैं भवनाथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाबू। आप सोच रहे हैं वह शराबी सच बोल रहा है ? दो दिनों से अपनी रोज़ी-रोटी कमाना छोड़कर उसका दोस्त आपका मकान ढूँढ़ता फिर रहा है ! घर तक नहीं लौटता। समझे बाबू जी, इन शैतानों को हम अच्छी तरह पहचानते हैं। ये झूठे ऐसी-ऐसी बातें कहेंगे कि सुननेवाले को सच जैसी लगे। पर ये लोग हमारी आँखों में धूल नहीं झोंक सकते। बहरहाल हमने उसे पुलिस-हिरासत में रखा है। आपकी चावल की बोरियाँ मिल जाएँगी तो उसे छोड़ देंगे। आप समझ रहे हैं ना बाबू जी, पुलिसवालों की ज़िंदगी बड़ी दौड़-धूप भरी होती है। बारिश-तूफ़ान की परवाह न करके हमने ट्रॉली वालों की सारी बस्तियाँ छानी हैं। जबकि जनता हमेशा हमारे विरुद्ध आग उगलती रहती है...कहती हैं, पुलिस वाले निठल्ले होते हैं। सारे अख़बार वाले तो आप ही के हाथ में हैं। उनसे कहकर ज़रा हमारा दर्द भी जनता को बताएँ। हम तो सदा-सर्वदा आप ही लोगों की सेवा में जुटे रहते हैं... ।''

भवनाथ बाबू ने फ़ोन का रिसीवर रखकर सोचा, तो पुलिस की इस तत्परता के पीछे अख़बार है...आँधी-बारिश में बुख़ार से पीड़ित उस आदमी को पकड़कर थाने में बंद कर रखा है। यदि वह आदमी सच बोल रहा है तो वाक़ई उसके प्रति अन्याय हो रहा है। पर उनकी चावल की बोरियाँ गई कहाँ ?

सुबह-सुबह अख़बार में पढ़ा, उनके नाम-धाम के साथ पुलिस विभाग की तत्परता के बारे में एक छोटा-सा समाचार छपा है। पुलिसवालों की प्रशंसा छपती है तो छपे, पर उनकी चावल की बोरियाँ मिल जाएँ। किंतु वह दिन भी निराशा में ही बीता। बारिश थम गई, लेकिन आसमान में बादल अब भी छाए हुए थे। थानेदार ने फ़ोन किया। यह हरामी बिलकुल नहीं बता रहा, चावल की बोरियाँ इसने कहाँ, किसे बेची हैं। एक ही बात बार-बार दोहरा रहा है, ''चावल की बोरियाँ किसी भी वक़्त बाबू जी के घर पहुँच जाएँगी। बाबू जी का चावल उसने नहीं बेचा है। बड़े अच्छे बाबू जी हैं। वह बाबू जी को कैसे ठगेगा। स्साला चापलूसों का बाप लगता है। चोरों के मुँह से सच आसानी से नहीं निकलती।''

भवनाथ बाबू ने आतुर होते हुए कहा, ''छोड़िए, ग़रीब है, मारिएगा मत। आज शाम तक यदि चावल की बोरियाँ नहीं पहुँचीं तो समझ लेंगे कि वह आदमी भूख की वजह से बेचकर खा गया। उसके बाद उसे छोड़ दीजिएगा। सारे देश में एक से बढ़कर एक चोर हैं। क्या आप सफ़ेदपोश चोर को पकड़ सकते हैं...हालाँकि मैं कृतज्ञ हूँ कि आपने बड़ी तत्परता से मेरे केस पर कार्रवाई की और उस आदमी को पकड़ लिया...आज के अख़बार में समाचार पढ़ा। लोगों को जानना चाहिए कि पुलिसवाले निष्क्रिय नहीं हैं।''

''यही बात यदि आप अपनी क़लम से लिखकर लोगों तक पहुँचा दें तो लोगों का पुलिस पर से टूटा विश्वास लौट आएगा। आपका विश्वास और श्रद्धा ही हमारे लिए प्रेरणा है... ।''

''अवश्य...अवश्य...'' भवनाथ बाबू ने रिसीवर रखते हुए सोचा, पत्नी की बातों में आकर पुलिस को इत्तला देकर उन्होंने ग़लती की है। चावल की बोरियों के दर्शन नहीं, कहते हैं पुलिस की तत्परता के संबंध में लिख दीजिए... ।

शाम से फिर बारिश शुरू हो गई। रात के दस बजे लगने लगा कि आधी रात हो गई। गेट पर खड़-खड़ की आवाज़ आई। टॉर्च लेकर देखा, ट्रॉली में दो बोरी चावल लिए एक आदमी खड़ा है। इस आदमी को उन्होंने देखा है सब्ज़ी-मंडी के चौराहे पर। इसका मतलब वह आदमी सच बोल रहा था। पर यह आदमी पिछले दो दिनों से क्या कर रहा था ? नाहक ही उस आदमी को थाने में रोका गया है बुख़ार में, सिर्फ़ इसी की वजह से...। ट्रॉली वाले ने पॉलीथिन हटाकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चावल की बोरियाँ बाहरवाले कमरे में रखते हुए कहा, ''साहब जी, क़सूर मेरा है। लिंगा भाई ने दारू पिलाई। दस रुपए दिए। मैं और दारू चढ़ाकर होश-हवाश खोकर दो दिनों तक पड़ा रहा किसी और के घर। और फिर बारिश तो रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। आपको इस गली से निकलते एक-दो बार देखा था मैंने। लिंगा को भी इस गली के बारे में बताया था। आपका नाम पता न होने की वजह से चार-पाँच चक्कर काटकर वह लौट गया इस गली से; पर आपका घर ढूँढ़ नहीं पाया। उसके बाद बीमार पड़ जाने पर उसने मुझे भेज दिया...''

''क्या तुम मेरा नाम जानते थे?''

''नहीं साहब, सिर्फ़ 'साहब' के अलावा और कुछ नहीं जानता था। इसलिए लोगों की गालियाँ भले ही सुनता रहा पर सबका गेट खटखटाता रहा। देखता, वह साहब आप नहीं हैं। उनकी चावल की बोरियाँ भी नहीं खोईं। वह उल्लू भी ऐसा ही करता तो आपको कबका ढूँढ़ चुका होता।''

मैंने उस आदमी की बुद्धि की तारीफ़ की। उसके किराए के पैसे उसे दिए; पर लिंगा का किराया ख़ुद जाकर उसे दे आने का मन बनाया। क्योंकि इस आदमी को देने से यह दारू में उड़ा देगा...मेरा पहला कर्तव्य था उस ग़रीब को पुलिस के चंगुल से मुक्त कराना। एक सच्चा आदमी चोर बना तीन दिनों से थाने में सड़ रहा है। मैंने ख़ुद को गुनहगार समझा। रात दस बजे थाने में फ़ोन किया। सुना कि उस आदमी को आधे घंटे पहले छोड़ दिया है। बुख़ार बढ़ जाने की वजह से बीवी-बच्चों का नाम ले-लेकर बड़बड़ाने लगा था। दवा दिलाकर उसे उसके घर छोड़ आए थानेदार साहब। तसल्ली हुई। थानेदार के हृदय में दया-माया है देखकर विश्वास जन्मा। रात को थोड़ी अच्छी नींद आई। सुबह नित्यकर्म ख़त्म करके लिंगा के पैसे लेकर निकल ही रहा था कि कल रातवाला आदमी ट्रॉली लेकर हाँफता हुआ आया, ''इस समय लिंगा भाई के टोले की ओर मत जाइएगा साहब। मामला बहुत संगीन है। कल रात लिंगा भाई ख़ून की उल्टी करके मर गया। सुबह-सुबह उसे जला आए। लिंगा भाई की जोरू कहती है—थानेदार साहब के साथ दो लोग जीप में आकर लिंगा भाई को कराहते हुए हालत में चबूतरे पर डालकर चले गए। उसके बदन और चेहरे पर मार के निशान थे। ख़ून से लिसा चेहरा...घर पहुँचकर ख़ून की उल्टी करने के बाद वह मर गया। सुबह विरोधी दल के कुछ नेता वहाँ पहुँचकर पुलिस के अत्याचार के विरुद्ध उस टोले के लोगों को इकट्ठा करके तूफ़ान मचाए हुए हैं। लिंगा भाई की मौत की क्षतिपूर्ति के लिए एक लाख रुपए का दावा कर रहे हैं। इसके लिए सरकार को ज़िम्मेवार ठहरा रहे हैं।'' मैं वहीं बैठ गया। सोचा, आठ दिन बाद यह हो-हल्ला शांत पड़ जाएगा। क्षतिपूर्ति मिले न मिले विरोधी दल के नेताओं को आगामी चुनाव में इसके लिए उस बस्ती से कुछ वोट ज़रूर मिल जाएँगे। पर उस आदमी का तो सब कुछ ख़त्म हो गया। उसके परिवार की क्षति कौन पूरी करेगा?

उदास होते हुए पूछा, ''पुलिस क्या कह रही है?''

''कह रही है, शराबी था, कलेजा जला हुआ था। उसी रोग से उल्टी करते-करते मर गया होगा। वे लोग तो उसे ज़िंदा छोड़ आए थे उसके चबूतरे पर।''

''अँधेरे ही क्यों जला आए उसे? पोस्टमार्टम करते। सच-झूठ का पता चल जाता।'' नेत्रमणि ने कहा।

''कोई लाभ नहीं साहब! पुलिस जो कह रही है, डॉक्टर भी वही कहते। ऐसे ढेरों अनुभव हैं हमारे। ज़हरीली शराब पीकर इतने लोग मर गए थे हमारे टोले में, क्या कुछ हुआ उसका?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाहक ही लिंगा भाई जैसा देवतातुल्य परोपकारी इंसान बासी लाश बना सड़ता रहता। तो फिर चलता हूँ साहब। आपके वहाँ जाने से कहीं कोई कुछ कहने न लगे, यही सोचकर आपको ख़बर करने दौड़ा चला आया।'' भवनाथ बाबू ने लिंगा ट्रॉली वाले का किराया उसे देते हुए कहा, ''आज ही उसके घर जाकर दे आना।''

भवनाथ बाबू काँपते हुए बैठ गए बिस्तर पर। लेट गए चित। और कुछ सोच नहीं पाए। इतना बड़ा अपराध! देश के कितने बड़े-बड़े चोर-डकैतों को गद्दी पर बिठाकर फूल-मालाएँ पहनाते हैं हम; पर वह ग़रीब आदमी, सच्चा आदमी पुलिस की हिरासत में मार खाकर ख़ून की उल्टियाँ करते-करते मर गया! शायद इस पाप का कोई प्रायश्चित नहीं है। लिंगा का ख़ून पुलिस ने किया है या स्वयं भवनाथ बाबू ने? हाँ, यह ख़ून नहीं तो और क्या है? उन्हीं की ग़लती से लिंगा रास्ता भटक गया, सर्दी-बुख़ार में पड़ा, गिरफ़्तार होकर थाने गया और अंत में मार खा-खाकर मर गया। क्या क़सूर था उसका? क्या सिर्फ़ सीधे-सीधे सीने में चाक़ू भोंककर ख़ून किया जाता है? लोग गुंडा लगाकर सुपारी देकर ख़ून कराते हैं। भवनाथ बाबू ने पुलिस लगाकर अपने पत्रकार-व्यक्तित्व की सुपारी देकर एक निर्दोष, सच्चे, असहाय आदमी का ख़ून करवा दिया। उनका कलेजा तार-तार हो रहा था ग्लानि और अपराध-बोध से। लिंगा का ख़ून एक बार हुआ, वह मर गया। बाक़ी के जीवन में भवनाथ बाबू का ख़ून हर रोज़ होगा। अपने पाप-बोध से रोज़-रोज़ तिल-तिल मरेंगे मोक्षहीन पश्चात्ताप की आग में। हर रोज़ जो ख़ून-ख़राबा होता है, अख़बारों में जितना छपता है, वास्तविक संख्या उससे कहीं अधिक होती है। ख़ूनी भी तो आदमी ही होते हैं। क्या वाक़ई वे लोग बाक़ी की ज़िंदगी शांति से बिता पाते हैं? नहीं— अपने पकड़े जाने के भय, अपराध-बोध और ग्लानि से वे भी हज़ारों बार मरते रहते हैं। उनके जैसे कुछ हत्यारे सबूत के अभाव में क़ानून द्वारा दंडित होकर पाप-बोध के कुंभीपाक नरक में जीवन बिताते हैं—ऊपर से चेहरा कठोर करके अपने साथ कपटपासा खेलते रहते हैं ज़िंदगीभर। लिंगा की तरह के कुछ निर्मल, सच्चे पर ग़रीब लोग बिना क़सूर के मारे जाकर स्वर्गवासी हो जाते हैं। लिंगा की अमर आत्मा की तो सद्गति हो गई होगी—इसमें संदेह नहीं। दुर्गति और नरकवास तो अब से उनके बाक़ी जीवन का कर्मफल होगा। स्वर्गलोक न जाने कहाँ है? किंतु भवनाथ बाबू जान चुके हैं, नरकवास तो मनुष्य के अपने किए हुए कर्मों का फल होता है।

बोरियों का चावल बारिश की बौछार से सीलकर फफूँद गया। खाने लायक़ नहीं बचा। इसलिए नेत्रमणि ने उसका क्या किया, भवनाथ बाबू ने नहीं पूछा। भवनाथ बाबू के ख़ून में अचानक शर्करा बढ़ जाने के कारण उनका भात खाना बंद हो गया। अब वे दोनों जून रोटी खाते हैं। जब से भवनाथ बाबू का भात खाना बंद हुआ है, गाँव से चावल आना भी बंद है। किसके लिए आएगा?

पहले की तरह अब वे मार्किट नहीं जा पाते। दूर पड़ता है। मधुमेह और रक्तचाप ने उन्हें दोनों ओर से जकड़कर सहसा बूढ़ा बना दिया। आँखों से अब साफ़ दिखाई नहीं देता। इसलिए बरसात में किसी ट्रॉली पर सामान लदकर पॉलीथिन से ढके हुए जाते देखकर उनकी धड़कनें बढ़ जाती हैं।...पूछते हैं, ''कौन बेचारा मर गया? किसका शव ढोकर ले जा रहे हो ट्रॉली पर? ज़रूर कोई ग़रीब होगा, वरना ट्रॉली में क्यों ले जाते?'' ऐसी ग़लती एक बार नहीं, हज़ारों बार करके अपना मज़ाक़ उड़वा चुके हैं। पर आदत नहीं छोड़ते।

लेखन-कार्य और भाषण देना एकदम बंद। डॉक्टर ने मना किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ममता कालिया

फिर भी प्यार

हम जिस गेस्ट हाउस में ठहरे हैं उस पर कई बारिशों की मार पड़ चुकी है। पहली दूसरी तीसरी ही नहीं, अनेक बारिशें, जिनके पानी की ओक छत की नालियों के रास्ते उसकी दीवारों पर निशान छोड़ती गई है। गेस्ट हाउस के द्वार पर स्वागतम् लिखा है लेकिन वहाँ स्वागत जैसा कुछ नहीं है। बाहर बेतरतीब क़तारों में पौधे हैं, एक कार पोर्च में खड़ी है जिसके अगले दोनों टायर पिचके हुए हैं। अंदर झाड़ू लग रही है। अख़बार के स्टैंड पर खड़े दो लड़के अख़बार पलट रहे हैं।

कमरा देखकर कोठरी की याद आती है। कोठरी से भी छोटे इस कमरे में दो बिस्तर, एक मेज़-कुर्सी, एक पंखा काफ़ी कौशल से फिट किया गया है। बाथरूम कुछ बड़ा है लेकिन हमारे लिए कष्टदायक है। यही एक समय है जब भारतीय पद्धति रास नहीं आती। मेरे घुटने मुड़ना भूल चुके हैं।

दूसरे कमरे की व्यवस्था हो जाती है। यह बेहतर है—साफ़, सुविधाजनक और ठंडा।

"किसी को वंचित कर तो नहीं मिला है यह ?"

"नहीं।"

मैनेजर की आँखों में पिछली रात की नींद भरी है। रजिस्टर में नाम लिखते हुए वह उबासियाँ ले रहा है।

कुछ लड़के लड़कियाँ मिलने आते हैं। उनकी बातों में पूरा शहर देख लेती हूँ। वे कहते हैं।

"आँचल मिलने आएगी। उसने कहा है।"

"अभी क्यों नहीं आई ?"

"ख़ाली नहीं थी।"

यह तो सुना था दिल्ली जाकर उसने नाम बदल लिया है। यह नहीं सुना था कि क्या रख लिया है। मुझे लगा पहला नाम ज़्यादा अच्छा था।

अपने शहर की लड़की थी वह्निशिखा। थोड़ी-थोड़ी हर चीज़ में कुशल। पढ़ाई, अभिनय, नृत्य, संगीत और खेल। थोड़ी सुंदर। ज़्यादा स्मार्ट। माता-पिता के निषेधों से आक्रांत। बीस साल की उम्र में क्रांति कर डालने की इच्छुक। छुट्टी की दोपहर में हमारे घर

हिंदी कथाकार ममता कालिया का जन्म 1940 में हुआ। इनकी उपन्यास, कहानी, कविता की लगभग 25 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। कई संस्थाओं से पुरस्कृत हैं। संपर्क : बी-135, लाजपत नगर 1, नई दिल्ली 110024

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बैठकर माथापच्ची करती। किस तरह जल्दी से जल्दी बदली जा सकती है दुनिया।

हम कहते, "इतनी जल्दी क्या है! दुनिया रोज़ थोड़ी-थोड़ी बदलती है। इसे देखो और प्रतीक्षा करो।"

वह्निशिखा कहती, "नहीं आंटी, मैं इतनी देर इंतज़ार नहीं कर सकती। आप साहित्य में बदलाव की बातें करते हैं लेकिन जीवन में अपने टूथपेस्ट का ब्रांड भी नहीं बदलना चाहते।"

उसकी जुमलेबाज़ी से हमारा मनोरंजन हो जाता।

कभी वह पूछती, "किस चीज़ का असर समाज पर सबसे अधिक पड़ता है, कहानी, कविता या नाटक का?" उसे बहुत-सी कविताएँ कंठस्थ थीं।

हम रस्मी जवाबों से उसे शांत करना चाहते कि समाज समग्रता में ही प्रभाव ग्रहण करता है।

और विद्यार्थियों से हमें ख़बर लगी थी कि बी.ए. के बाद उसने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया था।

हमारे जीवन में विद्यार्थी पंछियों की तरह आते और उड़ जाते। हम अपनी पुरानी आराम-कुर्सियों से उठकर कहाँ जाते। वे ही जब-तब लौट आते। ख़ैरियत लेते, ख़ैरियत देते। बहुत दिनों बाद नवीन के पास आकाश का पत्र आया था कि दुनिया में सिर्फ़ दो अच्छी लड़कियाँ थीं। एक से आपने बहुत पहले शादी कर ली, दूसरी से मैंने पिछले दिनों की है। वह्निशिखा आपको हैलो कह रही है।

हमें एक झटका-सा लगा। हमें तो यह भी नहीं पता था कि कहानीकार के रूप में इतने लंबे समय से जमा हुआ आकाश अभी तक अविवाहित था।

उम्र का फ़र्क़ कोई चीज़ नहीं होता। संसार के जितने महानायक हैं सबकी प्रेमिकाएँ उनसे बहुत छोटी थीं अथवा बहुत बड़ी। आकाश कहता और वह्निशिखा क़ायल हो जाती।

"शादी के बाद लड़कियों का जीवन एकदम बदल जाता है। मैं नहीं चाहती कि मैं ऐसी बनूँ।" वह्नि कहती और आकाश क़ायल हो जाता।

आकाश के परिवार ने उन दोनों को स्वच्छंद छोड़ दिया। वे क्यों बनें खलनायक! लड़की के माँ-बाप आशंकित और आतंकित थे। प्रेम-विवाह की आकस्मिकता उन्हें स्वीकार्य नहीं थी। पर उनकी राय कौन पूछता था। वह्नि तो घर आना भी नहीं चाहती।

वह बताती, "आजकल वे एक कहानी पर काम कर रहे हैं। मैं आसपास रहती हूँ लेकिन उन्हें डिस्टर्ब नहीं करती। टीवी भी चलाती हूँ तो उसकी आवाज़ कम करके। और तो और मैं ज़ोर से साँस भी नहीं लेती कि लिखने में डिस्टर्ब न हो।"

जानकार दोस्त पीठ पीछे हँस देते—अकेले यही लेखक है क्या!

हम तो प्रेम कहानी भी घर की बमचख में लिख लेते हैं। बच्चे सिर पर नगाड़ा बजाते हैं, नौकरानी बाथरूम में कपड़े कूटती है, पत्नी फ़ोन पर गुटरगूँ करती है, सब झेलना पड़ता है।

युवतर लेखकों में आकाश सबसे ज़्यादा मूडी और मनमौजी था। कई बार महीनों कुछ नहीं लिखता। कभी दिन-रात इस क़दर लेखन में डूबता कि जो पत्रिका खोलो, आकाश की कहानी या उपन्यास-अंश। एक बार मिला। दवा की दुकान से सुआलिन की गोलियाँ ख़रीद रहा था। वह्नि को खाँसी आ रही है। थिएटर वर्कशॉप में उसे कल से हिस्सा लेना है।

आकाश ने वह्नि की महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करने के लिए कई कोशिशें कीं। हज़ारा अकादमी की फ़ीस भरकर उसकी अधूरी पड़ी नृत्य की ट्रेनिंग पूरी करवाई। शास्त्रीय गायन सिखाने के लिए असीम गुरु जी घर जाने लगे। अभिनय के क्षेत्र में वह्नि का नाम अब तक जाना जाने लगा था। कई बार उसका रंग मंडल शहर से बाहर भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रस्तुतियाँ देता। आकाश पत्नी की सफलता पर मगन हो जाता।

ज़रूर आगे की कहानी टुकड़ों में घटित हुई होगी। लोगों को टुकड़ों का ज्ञान नहीं।

आकाश जितना संवेदनशील था उतना ही फक्कड़ भी। जिन दिनों उसका दिमाग़ किसी रचना में जुटा रहता वह घर और शहर में रहता लेकिन अन्य दिनों में उसकी यायावरी जाग जाती। वह अपना झोला उठा चल पड़ता जाने-अनजाने क़सबों की ओर। किसी मित्र का ध्यान आ जाए तो वह फ़ोन करने की बजाय ख़ुद ही पता लगाने निकल जाता। माता-पिता भाई और भाभी उसके स्वभाव से वाक़िफ़ थे। लेकिन वह्नि चिंतातुर हो जाती। पहले वह मित्र मंडली को फ़ोन करती, ''आकाश कहीं चले गए हैं। मेरा जी घबरा रहा है। कोई अनहोनी न हो जाए!''

आठ-दस बार ऐसा होने पर सारे दोस्त निश्चिंत हो गए। उन्हें लगा आदत के मुताबिक आकाश जाता है तो आ भी जाता है। ड्रामा करते-करते वह्नि हर बात को ड्रामाई बनाने की अभ्यस्त हो गई है।

वह्नि को लगने लगा जैसे आकाश उसी से बचने के लिए बार-बार घर से निकलता है।

वह अपने को कमरे में बंद कर लेती। घर की दिनचर्या में उसकी भूमिका ऐसे दिनों में कुछ भी नहीं होती।

माँ समझातीं, ''जब शादी की है तो तुम्हारा संबंध सिर्फ़ आकाश से नहीं पूरे परिवार से है। हम सब हैं न तुम्हारे पास।''

वह्निशिखा रुआँसे चेहरे से माँ की बात सुनती। उसे घर बियाबान नज़र आता। फिर शुरू होता फ़ोन का सिलसिला। अपना मोबाइल कान से सटाए वह कहीं-न-कहीं अपने जीवन साथी की टोह लेती रहती। आकाश लौटकर खीझता, ''तुमने मुझे पिंटू समझ रखा है जो पूरे भारतवर्ष में फ़ोन खटखटा देती हो।''

आकाश का भतीजा पिंटू साढ़े चार साल का था और उसे हिदायत थी कि वह जहाँ जाए विपतराम सेवक को साथ लेकर जाए।

उसकी सूरत देखते ही वह्निशिखा खिल जातीं। सारी शिकायतें भूल जातीं। उसे अपने नृत्य के आगामी कार्यक्रम याद आते। वह अगले नाटक में अभिनय करने के लिए हामी भर देती।

माँ कहती, ''जब यह नहीं होता तू बिसूरती फिरती है। जब यह आता है तुझे पंख लग जाते हैं। अब तो घर बैठ!''

वह्नि को जैसे पासपोर्ट मिल जाता। यहाँ जा, वहाँ जा। मासूमियत से हँस देता आकाश उसकी चपलताएँ देखकर। वह्नि के प्रति उसके मन में प्रेमी, पति और पिता की मिलीजुली अनुभूतियाँ होतीं। जब वह रात में अपने नाटक के संवाद याद करती, आकाश उसके सिर पर अपने चार कहानी-संग्रह रख उसे स्टेज पर चलने का अभ्यास करवाता। कभी वह उसे मैकफ़र्सन लेक के ढलान पर ले जाता और ज़ोर-ज़ोर से डायलॉग बोलने के लिए उकसाता।

आकाश में उपस्थित चंद्रमा की कलाओं की तरह जीवन में भी शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मँडराते रहते हैं।

अचानक कब क्या हुआ कि राजधानी के एक थिएटर ट्रूप के बुलावे पर वह्निशिखा निकली तो ऐसी कि उसका अता-पता भी नहीं मिला बरसों।

वह आकाश जो हमेशा घुमंतू बादल बना रहता था, वह्नि की प्रतीक्षा में पर्वत की तरह निश्चल हो गया।

वह रोज़ अलमारी खोलकर उसकी साड़ियों और सलवार सूटों को स्पर्श करता और अपने आप से कहता, ''जैसे मैं बिना बताए चला जाता था, वह भी चली गई है ताकि मैं उसकी तड़प जान सकूँ। वह लौट आएगी।'' उन्हीं दिनों उसे बंबई की एक संस्था ने सम्मानित करने के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुलाया। मन बिलकुल नहीं कर रहा था। अंदर गहरा पराजय का बोध था। ऐसे समय अपनी जय-जयकार सुनने का कोई औचित्य नहीं था।

भाई बोले, ''तुम्हें यहाँ डॉक्टर कुंदनलाल ने कहा है कि एड़ी की चोट की जाँच बंबई या दिल्ली में करवाओ। चले क्यों नहीं जाते। एक पंथ दो काज हो जाएँगे।''

बड़े भाई की बात की अवमानना आकाश ने कभी नहीं की।

हृदय में प्रतीक्षा की रागिनी बजती रही। वह बंबई मेल में सवार हो गया। वहाँ नए प्रशंसक तो मिले ही, पुराने दोस्तों ने भी गले लगाया। ओह कितना सुकून है इन स्पर्शों में। काश वह्नि भी यहाँ मेरे साथ होती, उसने दुगनी प्यास से सोचा।

जब उसने सभागार में कहानी-पाठ किया उसे निरंतर लगता रहा, वह्नि यह कहानी पाठ करती तो ज़्यादा सार्थक और प्रभावी होता। उसने आयोजकों से कहा, ''आज के कार्यक्रम की प्रेस विज्ञप्ति दिल्ली के अख़बारों में अवश्य भेजिएगा।''

मन के कोने में उम्मीद थी कि उसके सम्मान की ख़बर पढ़ते ही वह्निशिखा दौड़ी आएगी। उसके एक-एक शब्द पर वह कैसी निहाल होती थी।

कई दोस्तों ने मिलकर एलीफ़ेंटा केव्स देखने का कार्यक्रम बनाया। गया तो बेमन से आकाश लेकिन अरब सागर अद्‌भुत छाप छोड़ गया मन पर। कुछ देर के लिए उदासी तिरोहित हो गई।

एलीफ़ेंटा पहुँचकर सब मोटर बोट में खड़े हो गए उतरने के लिए। तभी मोटर बोट को हल्का-सा झटका लगा एक दूसरी मोटर बोट का। आकाश थोड़ा लड़खड़ा गया और सीट पर लुढ़क गया। सीट के पीछे का उखड़ा हुआ लोहा कुहनी पर चोट कर गया। एक इंच लंबी घिरीट लग गई उसे।

आकाश एकदम बिखर गया। हालाँकि वह सम्माननीय अतिथि था, पर किसी का ध्यान उस पर नहीं था। सभी पिकनिक की मस्ती में थे।

''देखिए कुहनी में ख़ून छलछला रहा है। किसी के पास दवा होगी क्या?'' उसकी ओर सरसरी तौर पर देख, सब मुस्कुरा दिए। उनकी नज़र में चोट गंभीर नहीं थी। हल्का-सा छिल गया था।

आकाश ने आयोजन के प्रतिनिधि से कहा, ''आप फ़र्स्ट एड बॉक्स लेकर नहीं आए?''

तभी एक महिला ने अपना पर्स खँगालकर वैसलीन की नन्ही-सी डिब्बी ढूँढ़ निकाली।

उसने आकाश को वैसलीन पकड़ाई। आकाश से डिब्बी खुल नहीं रही थी। उसने असहाय नज़र से महिला की ओर देखा।

महिला अपने पति की ओर ध्यान दे रही थी जो बड़े कठोर ढंग से उसे देख रहा था।

आकाश ने बिना लगाए वैसलीन वापस कर दी, ''इससे कुछ नहीं होगा। बैंड-एड मिल जाती तो अच्छा था।''

एलीफ़ेंटा के प्रवेश मार्ग पर सिर्फ़ खाने-पीने और छोटी मूर्तियों की 38 दुकानें थीं।

गुफाओं की सैर में ख़ासा हो-हल्ला रहा। लेकिन आकाश इस सबसे असंपृक्त बार-बार अपनी कुहनी सहलाता रहा। उसकी आँखों में बुद्ध से भी गहरी उदासी थी। पत्नी का ध्यान एक भी मिनट उसके ज़ेहन से नहीं उतरता था। वह्नि साथ आकर कितना ख़ुश होती यही उसे बार-बार लगता।

नवीन सहित चंद हितैषियों ने उसे सुझाया कि वह अपना मन अगली कहानी, अगली योजना या भविष्य के प्रेम-प्रसंग पर लगाए।

आकाश ने कहा, ''भविष्य हमेशा प्रसन्न और प्रफुल्ल लोगों का होता है। मेरे हिस्से में तो बस रात भर करवटें हैं और यह चिलकती चोट।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसे सुनने वाली लड़कियों का मन बड़ा गीला हो रहा था।

गीतांजलि ने कहा, ''अगर मैंने साड़ी पहनी हुई होती तो शरत् की नायिका की तरह अपना आँचल फाड़कर तुम्हारे पट्टी बाँध देती। पर क्या करूँ मैं तो जींस पहनकर आ गई।''

सब हँसे लेकिन आकाश तड़प गया।

''मुझे किसी के आँचल की चाह नहीं मैं तो जीते जी आग की लपटों में घिर जाना चाहता हूँ।''

साथियों ने कहा, ''साला ध्यान खींचने के लिए स्टंट कर रहा है।''

जब तक वे वापस लौटे शाम हो चुकी थी। गेटवे ऑफ़ इंडिया बिजली के बड़े हंडों की रोशनी में नहाकर, परिचित होते हुए भी पराया लग रहा था। उसकी दीवार से सटे बहुत से जोड़े बैठे थे।

ऊपर पहुँचते ही आकाश ने कहा, ''अरे मेरे कमरे की चाबी! गिर गई कहीं लगता है!''

चाबी क्या, उस लांच को भी ढूँढ़ना आसान नहीं था जो इन लोगों को लेकर गया था।

''आप ठहरें, मैं अभी आया।''

आकाश फिर सीढ़ियाँ उतर गया। सब ऊपर से देखते रहे। सब थके हुए थे। मोटर बोट में चाबी ढूँढ़ पाना दुष्कर कार्य था। अन्य बहुत से लोग उसमें सवार थे।

काफ़ी देर आकाश का कोई पता नहीं चला।

सभी साथी ऊबने लगे। देशमुख ने हेमंत से कहा, ''तुम उसे ढूँढ़कर लाओ। कहना चाबी की डुप्लिकेट होटल में होती है।''

नवीन ने कहा, ''जितना परेशान वह लग रहा था, कहीं जल-समाधि ही न ले ली हो!''

सिंह बोले, ''जिसकी पत्नी छोड़कर चली जाती है। उसकी कैसी दशा हो जाती है, आकाश इसका आईना है।''

तभी हेमंत आकाश को लिए वापस ऊपर आया। सबको तसल्ली हुई।

''कहाँ रह गए थे?'' नवीन ने चिढ़कर पूछा।

जवाब हेमंत ने दिया, ''कहीं नहीं ये आख़िरी सीढ़ी पर बैठे सिगरेट पी रहे थे। देखिए पैंट के पाँयचे गीले हो रहे हैं।''

''और चाबी?''

आकाश का मूड कुछ अच्छा था। मुस्कुराया और कहा, ''चाबी मेरी जेब में ही मिल गई। आजकल मेरी चीज़ें बहुत जल्दी गुम हो जाती हैं।''

गीतांजलि ने कहा, ''उतनी ही जल्दी मिल भी जाती हैं।''

आकाश ने पास जाकर उसके हाथ थाम लिए, ''गीता जी आपके मुँह में घी-शक्कर। काश मेरी सब खोई हुई चीज़ें वापस मिल जाएँ!''

वापसी में एक जगह केमिस्ट की शॉप में जाकर आकाश ने बैंड-एड की पूरी पाँच पट्टियाँ खरीदीं। बाहर टोली के लोग कुछ आगे बढ़ गए थे। थोड़ी देर बाद ही उन्हें पता चला कि आकाश तो साथ है ही नहीं। झुँझलाते हुए लोग वापस मुड़े। हेमंत ने कहा, ''ज़रूर केमिस्ट के यहाँ ही होंगे।'' बीच फ़ुटपाथ पर ही आकाश मिल गया। कुछ देर पहले का सहज भाव तिरोहित था। उसके पीछे मिडी पहनी हुई एक लड़की लगातार बोल रही थी, ''ए मैन प्लीज़। हम तुमको बोला न!''

ग्रुप के लोकल साथी फ़ौरन माजरा समझ गए। उन्होंने आकाश से पूछा, ''क्या हुआ?''

आकाश ने परेशान हाल में बताया, ''हमने तो इनसे सिर्फ़ बैंड-एड चिपकाने के लिए कहा था। यह शॉप के बाहर खड़ी थीं। ये हमें कहीं ले जाना चाहती हैं!''

गीतांजलि ने आगे आकर लड़की से कहा, ''तुम्हें ग़लतफ़हमी हुई है। अपना समय ख़राब न करो।''

लड़की ने हताश नज़रों से सबकी ओर देखा और वापस मुड़ी। आकाश ने पैंट की जेब में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाथ डालकर सौ का नोट निकाला और उस अजनबी लड़की से कहा, ''सुनिए, यह आप रख लीजिए!''

गीतांजलि ने एतराज़ किया, ''यह तुम क्या कर रहे हो ?''

आकाश ने एक तरह से लड़की के हाथ में नोट ठूँस दिया। होटल तक सब इस बात पर लोट-पोट होते रहे कि आकाश लूटे बिना ही लुट गया।

आकाश ने कहा, ''ऐसी बेजा बातें मत कीजिए आप। उसने हमारी नर्सिंग की थी। आप तो हमारे लिए ठहरे भी नहीं। आपको बताएँ। उसके हाथों का स्पर्श इतना कोमल था, लगा जैसे तितली ने हमारी कुहनी को छुआ।''

''फिर तुम्हारे पीछे कैसे पड़ गई वह ?''

''हमसे ग़लती हुई। हमने शुक्रिया करते हुए कहा कि तुम्हारा स्पर्श बिलकुल हमारी प्रिया जैसा है। उसने पूछा, आपकी प्रिया कहाँ है ? हमने कहा, पता नहीं कहाँ गई। हमसे पूछकर भी नहीं गई। बस चली गई। अपने सपने पूरे करने। इसके बाद वह लड़की कहने लगी आप मेरे साथ चलिए। मेरा घर पास ही है।''

''साले आज तो तुम्हारा उद्धार अपन कर दिए, कौन कब तक बचाएगा तुम्हें!'' सिंह ने कहा।

इतने क़रीब से आकाश की बौखलाहट देख लेने के बाद जब-तब उसकी चिंता हो जाती। दोस्तों से ख़बर मिलती कि वह अभी भी बेचैन है। बहुत कम बोलता है, लिखता तो और भी कम है। दाढ़ी बढ़ा ली है, बाल जटाओं जैसे रूखे और लंबे हो गए हैं। उसे देखकर यही लगता है : ''पहले फिराक़ को देखा होता/अब तो बहुत कम बोले हैं।''

एक बुधवार आँचल आई। अपना चश्मा साफ़ करना पड़ा। इस बीच वह थोड़ी स्थूल हो गई थी और थोड़ी संभ्रांत। चेहरा चमक रहा था पर आँखें उदास थीं। कपड़ों में कलफ़ था पर चप्पलों पर धूल। कमरा बेतरतीब था। मैंने सुझाव दिया कि अतिथि कक्ष में बैठा जाए।

उसने मना कर दिया, ''बहुत दिनों से किसी घर में नहीं बैठी। यही बैठेंगे।''

मुझे लगा मेरे साथ-साथ उसकी स्मृति में वे पुराने कमरे भी लौट रहे हैं जिनमें दरवाज़ों पर तौलिए लटके होते और मेज़ पर किताबें फैली होतीं। अख़बार के पन्ने खुलकर यहाँ-वहाँ फड़फड़ाते और चाय के प्याले तख़्त के नीचे मिलते।

उसने अपने माता-पिता की ख़ैरियत ली। मैंने उसके माता-पिता की ख़ैरियत दी। उसने शहर का हाल पूछा। मैंने शहर का हाल बताया। उसने अपने कॉलेज के प्रोफ़ेसरों को याद करना शुरू किया।

मेरी सहनशक्ति टूट गई। मैंने कहा, ''मैं तुम्हें इलाहाबाद का पंचांग नहीं दिखा सकती! जिस एक की तुम्हें याद आनी चाहिए, बस उसी का ज़िक्र तुम्हारे फ़साने में नहीं है!''

आँचल खड़ी हो गई मेरी तरफ़ पीठ करके, ''क्यों आनी चाहिए मुझे याद उस एक की जिसने मेरी इच्छाएँ नहीं समझीं। उसने यह जानना नहीं चाहा मैं कैसा जीवन चाहती हूँ। उसने मुझे घर में डाल दिया एक फ़र्नीचर की तरह। कहानियों में परिवर्तन की बातें करता रहा और घर की किसी रंग उड़ी दीवार को बदलना नहीं चाहा उसने।''

स्टेज पर मैं चाहे जितने नाटक देखूँ। असल ज़िंदगी में कोई डायलॉगबाज़ी करे तो मेरा मन कहता है 'शटअप'। डायलॉग मारना हम भी जानते हैं पर दूसरों पर रहम करते हैं।

''बैठ जाओ, चाय पियो और स्वस्थ मन से सोचो तुम क्या चाहती थीं ?''

''मैं एक ख़ुशहाल घर चाहती थी; क़ायदे का पति और क़रीने का जीवन।''

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"ऐसा क्यों है कि हर लड़की प्रेमी तो बेक़ायदा चाहती है और पति बाक़ायदा। आकाश वही था जिससे तुमने प्रेम किया।"

"आंटी शायद यह भी ग़लत है। सही तो यह है कि उसने मुझसे प्रेम किया।"

"और तुमने?"

"मैंने प्रेम होने दिया। दरअसल मैं एकदम कच्ची थी। उसकी कहानियाँ पढ़कर समझती रही इन सबकी नायिका मैं हूँ। मैं उससे चमत्कार की उम्मीद रखती रही।"

"इसमें उसका तो कोई क़सूर नहीं था। सज़ा तो वह पा गया।"

मैंने उसे संक्षेप में बंबई वाले प्रवास की बातें बताईं। वह हँसने लगी। इस हँसी में वह ख़ुशी शामिल थी जो तब होती है जब हमें पता चलता है कि कोई अब भी हमारे प्रेम में बँधा है। स्वयं बंधन मुक्त होकर भी हम अपने प्रिय के प्राण बाँधे रखना पसंद करते हैं।

न चाहते हुए भी मैं उद्धव की भूमिका निभा रही थी। मुझसे किसी ने कहा नहीं था। "तुम्हारे बिना वह ख़ैरियत से नहीं है। हो सकता है वह किसी ख़तरे में पड़ जाए। उसके साथ कोई हादसा हो सकता है। उसका रक्षाकवच एकदम खुला हुआ है।"

"और मेरा! आप उसकी पैरवी कर रही हैं। कभी सोचा आपने मैंने कैसे काटा यह समय। किसने मेरी रक्षा की! इस शहर में रहना आसान नहीं था।"

"तुम किसी थिएटर ग्रुप में थीं?"

"वह तो पुरानी बात है। वहाँ का अतिचार देखकर जी घबरा गया। ठीक है, बड़ा ग्रुप था वह। साल में तीन शो तो विदेश में होते थे। लेकिन वह ड्रामे की दुकान ही था। अपनी स्त्री कलाकारों के बारे में वहाँ निर्देशक ऐसे बोला करते थे कि तबीअत भड़भड़ा जाए। वे कहते, "विदेश यात्रा में इन कलाकारों का मीटर हर दम डाउन रहता है।"

"तुम्हें इन ख़तरों का अंदाज़ रहा होगा?"

"मुझे अपने दरवाज़ों पर ज़्यादा भरोसा था। मैंने ग्रुप छोड़ दिया। नया ग्रुप ढूँढ़ना आसान नहीं होता। बीच के दिनों में मैंने बी.एड. पूरा कर लिया। नोएडा के स्कूल में पढ़ा रही हूँ। अपना छोटा-सा रंगमंडल बनाया है। अभी सिर्फ़ ग्यारह कलाकार हैं। सब मेरी तरह अंशकालिक। हम शनिवार और इतवार को थिएटर करते हैं।"

"यह सब तुम वहाँ भी कर सकती थी। इतने साधारण परिवर्तन के लिए तुमने बेचारे आकाश को ज़्यादा सज़ा दे डाली।"

"आप इतने रवायती ढंग से मत सोचिए। ठीक है यह मेरी सीमा थी। इससे ज़्यादा परिवर्तन मैं नहीं कर पाई। पर आकाश की सामर्थ्य तो अपार थी। उसने क्यों नहीं किया परिवर्तन जो मुझे अच्छा लगता? क्यों वह घर के खूँटे से बँधा रहा। क्यों उस छोटे शहर में मगन रहा? वह कहानी लिखने का दम भरता है क्या उसे नहीं पता लड़की सुरक्षा के साथ थोड़ा जोखिम भी चाहती है, घर के साथ थोड़ा बाहर भी।"

आँचल बोले जा रही थी। वह्निशिखा भी चुप नहीं थी।

सिर्फ़ मैं चुपचाप सोच रही थी ऐसा क्यों होता है कि दो लोग आपस में प्रेम करते हैं पर इकट्ठे नहीं रह पाते। हालात ऐसे होते हैं कि या तो वे रहेंगे या प्रेम!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रमेश उपाध्याय

कुदाल

पढ़ा-लिखा एक नौजवान बहुत परेशान था। उसे नौकरी नहीं मिल रही थी। उसके ग़रीब माँ-बाप उसे ताने देने लगे थे, ''हमने अपना पेट काट-काटकर तुझे पढ़ाया, हमारा नहीं तो अपने छोटे भाई-बहनों का ही कुछ ख़याल कर! अरे, सरकारी नौकरी नहीं मिलती, तो किसी प्राइवेट नौकरी में ही लग जा। जब तक कोई अच्छी नौकरी नहीं मिलती, कोई छोटी-मोटी नौकरी ही कर ले। कहीं मेहनत-मज़दूरी ही कर ले। नहीं तो बोझा ढोकर ही कुछ कमा लाया कर... !''

प्रथम श्रेणी में एम.ए. पास उस नौजवान को आख़िरी बात बहुत बुरी लगी। इतनी बुरी कि वह सचमुच बोझा ढोकर कुछ कमाने के लिए रेलवे स्टेशन जा पहुँचा। वह कई मुसाफ़िरों का सामान उठाने के लिए दौड़ा। कइयों से उसने विनती की। कइयों के आगे गिड़गिड़ाया। यहाँ तक कि एक मुसाफ़िर के आगे तो झूठ भी बोल गया, ''साहब, दो दिनों से भूखा हूँ! अपना सामान मुझे उठाने दीजिए और मज़दूरी जो मन में आए दे दीजिएगा।'' मुसाफ़िर को उस पर दया आ गई। बोला, ''चल, ठीक है। यह सामान गाड़ी में चढ़ा दे।'' नौजवान सामान उठा ही रहा था कि एक क़ुली वहाँ आ गया। क़ुली ने नौजवान के हाथों से सामान छीनकर उसे एक झापड़ मारा और कहा, ''भाग साले! तू यहाँ कहाँ से आ गया? क़ुली हम हैं, तू फूट यहाँ से! फ़ौरन स्टेशन से बाहर निकल जा, नहीं तो तुझे पुलिस में दे दूँगा। ग़ैरक़ानूनी काम करता है और हमारे पेट पर लात मारता है!''

आक्रमण इतना आकस्मिक और अप्रत्याशित था कि पढ़ा-लिखा नौजवान उस अनपढ़ क़ुली से डर गया। अधेड़ और मरियल-से क़ुली के मुक़ाबले जवान और ताक़तवर होते हुए भी वह उसके झापड़ का जवाब नहीं दे पाया और घबराकर भाग खड़ा हुआ। स्टेशन से बाहर निकलकर भी वह बड़ी दूर तक भागता चला गया और सड़क के किनारे बने एक पार्क में घुस गया।

वह पार्क के एक निर्जन कोने में पड़ी पत्थर की ख़ाली बेंच पर जा बैठा। कुछ देर हाँफता-काँपता सन्न-सा बैठा रहा। फिर उसे अचानक ऐसा रोना आया कि वह हथेलियों में चेहरा छिपाकर

प्रसिद्ध कथाकार रमेश उपाध्याय का जन्म 1942 में हुआ। इनकी उपन्यास, कहानी एवं नाटक की लगभग 30 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। हिंदी अकादमी तथा उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से पुरस्कृत हैं। संपर्क : 107, साक्षरा अपार्ट-मेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भैंकार के साथ रोने लगा।

थोड़ी देर बाद ही उसने किसी को कहते सुना, ''ए लड़के! तुम्हें रोना ही है, तो ठीक तरह से रोओ। तुम सहानुभूति चाहते हो न? मैं दे सकता हूँ। लेकिन तभी दूँगा, जब तुम अच्छी तरह से रोकर दिखाओगे।''

नौजवान ने एकदम चुप होकर झटपट आँसू पोंछे और देखा कि उसके ठीक सामने एक आदमी खड़ा है, जिसका बाक़ी शरीर तो वैसा ही है, जैसा हर आदमी का होता है, लेकिन चेहरे की जगह एक मुस्कुराता-सा प्रश्नचिह्न खड़ा हुआ है।

नौजवान डरकर चीख़ने ही वाला था कि उस आदमी ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, ''डरो नहीं, मैं कोई भूत-प्रेत नहीं हूँ। मैं तुम जैसा ही एक मामूली इंसान हूँ। बस, मेरा चेहरा थोड़ा भिन्न है। पर इसमें डरने की क्या बात? हर इंसान का चेहरा दूसरे इंसान से भिन्न होता है। हू-ब-हू एक जैसी शक्ल-सूरत वाले दो व्यक्ति केवल डबल रोल वाली हिंदी फ़िल्मों में होते हैं। वरना जुड़वाँ बच्चों में भी कुछ-न-कुछ फ़र्क़ होता ही है। भिन्नता भय का कारण नहीं होनी चाहिए। वह तो भिन्न पहचानों के बीच पारस्परिक आदर का सबब होनी चाहिए।''

''तुम कौन हो और क्या कह रहे हो? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है!'' नौजवान ने कहना चाहा, पर कह नहीं सका।

''सुनो।'' उस आदमी ने पत्थर की उस बेंच पर नौजवान के निकट बैठते हुए कहा, ''रोना कोई बुरी बात नहीं है। दुख में सभी रोते हैं। रोना-हँसना तो इंसान होने की निशानियाँ हैं। वह इंसान ही क्या, जिसे रोना और हँसना न आता हो! लेकिन तुम जिस तरह से रो रहे थे, उस तरह से रोना ग़लत है। ऐसे रोने से दूसरे प्रभावित नहीं होते और वे तुम्हें सहानुभूति देने के बजाय तुम पर हँसते हैं। कोशिश करो कि तुम्हारे रोने पर लोग तुम पर हँसें नहीं बल्कि तुम्हारे दुख में शामिल होकर तुम्हारा दुख दूर करने की सोचें।''

नौजवान ने प्रश्नवाचक दृष्टि से उस आदमी की तरफ़ देखा तो पाया कि अब उसके चेहरे की जगह वह मुस्कुराता-सा प्रश्नचिह्न नहीं, बल्कि चौड़ी मुस्कान वाली एक आश्वस्ति है, जो उसकी तरफ़ दोस्ती का हाथ बढ़ा रही है। नौजवान ने मानो उस बढ़े हुए हाथ को अपने हाथों में थामकर पूछा, ''क्या तुम मेरा दुख दूर करने आए हो?''

''नहीं, मैं तुम्हें यह बताने के लिए आया हूँ कि कला वही है, जिसका वांछित प्रभाव पड़े। मेरा ख़याल है कि रोना भी एक कला है। अगर तुम दूसरों को अपने रोने से प्रभावित करना चाहते हो, तो तुम्हें कलात्मक ढंग से रोना आना चाहिए।'' नौजवान का कंधा थपथपाते हुए उस आदमी ने कहा।

''लेकिन मैं जो रो रहा था, किसी को प्रभावित करने के लिए नहीं।'' नौजवान ने उस आदमी का हाथ अपने कंधे पर से हटाते हुए कहा, ''मैं तो बेरोज़गारी का मारा यहाँ एकांत में अकेला बैठा रो रहा था।''

''स्वांत:सुखाय!'' उस आदमी ने व्यंग्यपूर्वक पूछा।

''नहीं, स्वांत:दुखाय।'' नौजवान ने रोषपूर्वक उत्तर दिया।

''देखो, न तो स्वांत:सुखाय कोई हँसता है न स्वांत:दुखाय कोई रोता है। इंसान का हँसना-रोना हो या गाना-बजाना, दूसरों से बोलने-बतियाने के लिए ही होता है। एकांत में और सिर्फ़ अपने लिए कोई नहीं रोता। सोचो, तुम यहाँ पार्क में आकर ही क्यों रोए? किसी जंगल में जाकर या पाखाने में घुसकर क्यों नहीं रोए? अवचेतन में ही सही, तुम चाह रहे होगे कि कोई तुम्हें रोते हुए देखे और सहानुभूति देने आए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और देखो, तुम सफल रहे। मैंने तुम्हें रोते देख लिया और मैं आ गया।''

''पर मुझे किसी की सहानुभूति नहीं, एक नौकरी चाहिए! कहीं भी, कैसी भी!''

वह आदमी हँसा और बोला, ''तुम्हें देने के लिए मेरे पास कोई नौकरी तो नहीं है—और इतनी अधिक सहानुभूति भी नहीं कि न चाहने वालों को लुटाता फिरूँ—लेकिन तुम चाहो तो मैं तुम्हें अच्छे ढंग से रोना सिखा सकता हूँ।''

''अजीब आदमी हो! रोना भी क्या सीखने-सिखाने की चीज़ है?'' नौजवान ने बेरुखी से कहा, लेकिन अब वह उस आदमी में रुचि लेने से स्वयं को रोक नहीं पा रहा था।

उस आदमी ने नौजवान की टिप्पणी को नज़रअंदाज़ करते हुए कहा, ''देखो, रोना कई तरह का होता है। मसलन, छोटा बच्चा भूखा होने पर माँ का ध्यान खींचने के लिए कैसे रोता है?...ऐसे!''

उसने रोकर दिखाया और नौजवान को उसके चेहरे की जगह एक नन्हा शिशु दिखाई दिया।

''लड़का घर में बाप से पिटने पर कैसे रोता है?...ऐसे!''

उसने रोकर दिखाया और नौजवान को उसके चेहरे की जगह एक शरारती लड़का नज़र आया।

''लेकिन वही लड़का स्कूल में मास्टर से पिटने पर कैसे रोता है?...ऐसे!''

उसने रोकर दिखाया और नौजवान को उसके चेहरे की जगह एक शर्मसार लड़का नज़र आया।

''गाँव की कोई ग़रीब औरत विधवा हो जाने पर कैसे रोती है?...ऐसे!''

उसने रोकर दिखाया और नौजवान को उसके चेहरे की जगह गाँव की एक ग़रीब विधवा विलाप करती दिखाई पड़ी।

''और शहर की अमीर आधुनिका विधवा होने पर कैसे रोती है?...ऐसे!''

उसने रोकर दिखाया और नौजवान को उसके चेहरे की जगह हिंदी फ़िल्मों की एक हीरोइन रोती दिखी।

''राजस्थान में किसी सामंत के मरने पर किराए पर बुलाई गई रुदाली कैसे रोती है?...ऐसे!''

उसने रोकर दिखाया और नौजवान को उसके चेहरे की जगह 'रुदाली' फ़िल्म की नायिका नज़र आई।

''और पंजाब में स्यापा करने वाली औरत कैसे रोती है?...ऐसे!''

उसने रोकर दिखाया और नौजवान को उसके चेहरे की जगह एक पंजाबी स्त्री दिखाई देने लगी, जो अपनी छाती पर दुहत्थड़ मारकर स्यापा कर रही थी।

नौजवान कब अपना दुख भूल गया, उसे पता ही नहीं चला। वह उस आदमी को तरह-तरह से रोते देख रहा था और ठहाके लगाकर हँस रहा था। वह इस तरह दिल खोलकर एक मुद्दत से नहीं हँसा था। उस आदमी ने उसे इतना हँसाया, इतना हँसाया कि उसकी आँखों में ख़ुशी के आँसू आ गए।

तब उस आदमी ने रोने की कला का प्रदर्शन बंद कर दिया और पैंट की जेब से सिगरेट का पैकेट और माचिस निकालकर नौजवान से पूछा, ''पियोगे?''

नौजवान सिगरेट पीने लगा था और धुआँ उड़ाना उसे अच्छा भी बहुत लगता था। लेकिन जेबख़र्च के लिए बाप से छिपाकर दिए हुए माँ के पैसों को धुएँ में उड़ाने में उसे शर्म-सी आती थी। इसलिए वह जब-तब एक सिगरेट ख़रीदकर पी लिया करता था। सामने सिगरेट देखकर उसे ज़बर्दस्त तलब लगी, लेकिन उसने मना कर दिया, ''नौ, थैंक्स!''

''अरे, पियो! मुझे पता है, तुम पीते हो!'' उस आदमी ने मुस्कुराते हुए कहा।

नौजवान ने सिगरेट ले ली और धन्यवाद देकर सुलगा ली। एक कश लेकर उसने उस आदमी से पूछा, ''तुम कौन हो?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''भूत!'' उस आदमी ने कहा और हँस पड़ा।

''ख़ैर, तुम जो भी हो, अभिनेता बहुत अच्छे हो!'' नौजवान ने सच्चे मन से उसकी प्रशंसा की।

उस आदमी ने मुस्कुराते हुए कहा, ''तुमने शेक्सपीयर को पढ़ा है? नहीं पढ़ा, तो कोई बात नहीं। मैंने भी ज़्यादा नहीं पढ़ा। लेकिन उसने कहीं कहा है कि दुनिया एक रंगमंच है और हम सब उस पर होने वाले नाटक के अभिनेता। मेरे आने से पहले तुम यहाँ पत्थर की इस बेंच पर बैठे क्या कर रहे थे? भैं-भैं करके रोने का तुमने ऐसा शानदार अभिनय किया कि मुझे दर्शक बनकर आना पड़ा।''

''मैं अभिनय नहीं कर रहा था।'' नौजवान ने ज़ोर देकर कहा, ''मैं सचमुच रो रहा था।''

''और मैंने जो तरह-तरह से रोकर दिखाया, वह क्या झूठमूठ का रोना था?''

''और नहीं तो क्या!''

''अच्छा, तो मेरा झूठमूठ का रोना देखकर अभी जो तुम ज़ोर-ज़ोर से हँस रहे थे, वह भी क्या झूठमूठ का हँसना था?''

''नहीं, वह तो मैं...''

''अगर तुम मेरा रोना देखकर सचमुच हँस रहे थे, तो मेरा रोना झूठमूठ कैसे हुआ? मैं अभिनेता नहीं हूँ, पर इतना जानता हूँ कि अभिनय भी एक यथार्थ है, क्योंकि वह प्रभावित करता है। दूसरों को ही नहीं, ख़ुद अभिनेता को भी। इसलिए अभिनय दूसरों की नक़ल उतारना नहीं, बल्कि एक मौलिक रचना करना है और मौलिक रचना किसी की भौंडी नक़ल नहीं, एक कलात्मक यथार्थ होती है।''

नौजवान चक्कर में पड़ गया। उसकी समझ में नहीं आया कि वह आदमी आख़िर क्या कहना चाहता है। वह आदमी शायद उसकी उलझन समझ गया। हँसकर बोला, ''ख़ैर, इस बात को छोड़ो। यह बताओ कि तुम कहाँ तक पढ़े हो?''

''एम.ए. पास हूँ प्रथम श्रेणी में।''

''और बेरोज़गार घूम रहे हो! तुम्हें मालूम नहीं कि शहर में एक नया कॉलेज खुला है और उसमें तमाम विषयों के लैक्चरर्स की ज़रूरत है? तुम आज ही वहाँ जाकर फ़ॉर्म-वॉर्म ले लो और आवेदन कर दो। मेरा ख़याल है, तुम्हें नौकरी मिल जाएगी।'' कहकर उस आदमी ने ढेर सारा धुआँ उगला और उस धुएँ में ही ग़ायब हो गया।

''भूत!'' नौजवान ने भयभीत होकर सोचा।

''भूत नहीं, भविष्य!'' दूर झाड़ियों के पास से आवाज़ आई।

नौजवान ने उधर देखा, लेकिन वहाँ उड़ती हुई कुछ रंग-बिरंगी तितलियों के सिवा उसे और कुछ नज़र नहीं आया। वह कुछ देर स्तब्ध-सा बैठा रहा, फिर उठा और शहर में नए खुले कॉलेज की तरफ़ चल पड़ा।

उसे नौकरी मिल गई। कुछ समय बाद उसकी शादी भी हो गई। दो साल बाद वह एक लड़की का और फिर दो साल बाद एक लड़के का बाप भी बन गया।

अब जब कभी उसकी पत्नी या बच्चे किसी बात पर रोने लगते, वह हँसते हुए कहा करता, ''ए, तुम्हें रोना ही है, तो ठीक तरह से रोओ!... अच्छी तरह से रोकर दिखाओ!...रोना भी एक कला है।...अगर तुम दूसरों को अपने रोने से प्रभावित करना चाहते हो, तो तुम्हें कलात्मक ढंग से रोना आना चाहिए।'' फिर वह बरसों पहले पार्क में मिले उस आदमी की तरह अलग-अलग क़िस्मों का रोना दिखाकर पत्नी और बच्चों को हँसाया करता।

एक बार उसके कॉलेज के वार्षिकोत्सव में छात्रों ने माँग की कि शिक्षक भी मंच पर आकर अपना-अपना कोई आइटम पेश करें। उस नौजवान शिक्षक की बारी आई, तो उसने बरसों पहले पार्क में मिले भूत की नक़ल करते हुए तरह-तरह से रोकर दिखाया। कॉलेज के छात्र,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिक्षक, कर्मचारी और अधिकारी उसका रोना देखकर ख़ूब हँसे। वह हीरो हो गया। फिर तो कॉलेज में जब भी कोई फ़ंक्शन होता, उससे माँग की जाती कि वह अपना रोने वाला आइटम पेश करे। और वह ख़ुशी-ख़ुशी तरह-तरह से रोकर दिखाता और सबको ख़ूब हँसाता।

धीरे-धीरे कॉलेज के बाहर शहर में भी उसकी ख्याति फैली और वह रोकर हँसाने वाले कलाकार के रूप में प्रसिद्ध हो गया। पहले उसे छोटी-छोटी महफ़िलों में, फिर बड़ी-बड़ी पार्टियों में अपना आइटम पेश करने के लिए बुलाया जाने लगा।

शुरू-शुरू में वह भूत की नक़ल करता था और उतनी ही तरह के रोना रोकर दिखाता था, जितने भूत ने उसे दिखाए थे। बाद में उसने उनमें और भी कई तरह के रोने जोड़ लिए। मसलन, अमुक-अमुक नेता कैसे रोएँगे या अमुक-अमुक अभिनेता कैसे रोएँगे।

पहले वह शौक़िया तौर पर ही रोता था, पर जब उसे रोकर दिखाने के पैसे मिलने लगे, तो वह प्रोफ़ेशनल कलाकार बन गया। उसकी माँग बढ़ने लगी, तो उसने अपनी फ़ीस भी बढ़ा दी। पहले वह कहीं से भी बुलावा आने पर किसी भी कार्यक्रम में चला जाता था। मगर अब वह तथाकथित बड़े लोगों के कार्यक्रमों में ही जाता, जहाँ उसे मुँहमाँगी फ़ीस मिलती।

फिर वह तथाकथित बड़े लोगों की फ़रमाइश पर भी रोकर दिखाने लगा। मसलन, उससे कहा जाता कि अब फलाँ नेता या फलाँ अभिनेता की तरह रोकर दिखाइए, तो वह उसी तरह रोकर दिखा देता। उसका प्रदर्शन हमेशा बढ़िया रहता। लोग ख़ूब हँसते, ख़ूब तालियाँ बजाते और उस पर ख़ूब पैसा लुटाते।

अब लोग उसे सर या प्रोफ़ेसर कहकर नहीं, कलाकार जी कहकर पुकारने लगे। कॉलेज में पढ़ाने का जो वेतन उसे मिलता था, उससे कहीं ज़्यादा आमदनी अब उसे रोकर हँसाने की कला से होने लगी। उसने अपना मकान बनवा लिया, कार ले ली, बच्चों को पढ़ने के लिए विदेश भेज दिया और पत्नी को क़ीमती कपड़ों-गहनों से लाद दिया।

मगर कहते हैं, सब दिन एक समान नहीं होते। एक दिन क्या हुआ कि जब कलाकार एक बड़े नेता के बेटे की शादी की दावत के समय हो रहे रंगारंग कार्यक्रम में अपना आइटम पेश कर रहा था, उस नेता ने अपने प्रतिद्वंद्वी नेता गुंडाराम का नाम लेकर उससे कहा, ''कलाकार जी, यह दिखाइए कि आगामी चुनाव में मुझसे हार जाने पर गुंडाराम जी कैसे रोएँगे?''

कलाकार ने तुरंत फ़रमाइश पूरी कर दी और गुंडाराम की ऐसी नक़ल उतारी कि लोग हँस-हँसकर लोटपोट हो गए। ख़ूब तालियाँ बजीं। ख़ूब नोट बरसे।

अगले दिन गुंडाराम ने, जिसकी नक़ल कलाकार ने उतारी थी, अपने घर पर एक दावत का आयोजन किया और कलाकार को अपना आइटम पेश करने के लिए बुलाया। कलाकार ने ख़ुशी-ख़ुशी निमंत्रण स्वीकार कर लिया। लेकिन उसकी पत्नी को लगा कि दाल में कुछ काला है।

''सुनिए, आप आज वहाँ मत जाइए।'' पत्नी ने उससे कहा, ''मुझे कुछ डर-सा लग रहा है। कल आपने उन नेता जी का जो मज़ाक़ उड़ाया है, उससे वे ज़रूर नाराज़ हो गए होंगे। न जाने क्या कर बैठें! उनका तो नाम ही गुंडाराम है! कहीं ऐसा न हो कि...''

''क्या बात करती हो!'' उसने पत्नी की पूरी बात सुने बिना ही कहा, ''गुंडाराम जी नाराज़ हुए होंगे तो मुझसे नहीं, अपने प्रतिद्वंद्वी से। हम तो कलाकार हैं। आज अगर वे अपने प्रतिद्वंद्वी का मज़ाक़ उड़ाने को कहेंगे, तो हम उसका भी मज़ाक़ उड़ा देंगे। हमें उनकी आपसी रंजिश से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्या ? हमें तो अपना आइटम पेश करना है।''

''फिर भी...''

''फिर भी क्या ?...सब जानते हैं कि प्रोफ़ेशनल लोगों की किसी से कोई निजी दोस्ती या दुश्मनी नहीं होती। जो पैसा देगा, उसके यहाँ जाएँगे। जो जैसी फ़रमाइश करेगा, पूरी करेंगे।''

लेकिन कलाकार ज्यों ही गुंडाराम के घर पहुँचा, वहाँ मौजूद बहुत सारे लोग चिल्लाने लगे, ''रुदाला आ गया! रुदाला आ गया!''

कलाकार ने रुदाली शब्द तो सुना था, रुदाली नामक फ़िल्म भी देखी थी, लेकिन रुदाला पहली बार सुना। अपने लिए यह संबोधन उसे बहुत बुरा लगा। शुरू में उसे लगा कि उसे रुदाला कहने वाले लोग मूर्ख और असभ्य हैं, कला और कलाकार की क़ीमत नहीं जानते; लेकिन जब उसे आमंत्रित करने वाले नेता गुंडाराम ने भी उससे ''आओ जी, रुदाला जी'' कहा, तो उसका माथा ठनका।

उसने देखा कि खाना-पीना तो हो रहा है, पर कोई गाना-बजाना नहीं हो रहा है। एक तरफ़ मंच तो बना हुआ है, पर ख़ाली पड़ा है। उससे न तो किसी ने बैठने को कहा, न कुछ खाने-पीने को पूछा। एक गुंडा-सा लगने वाला मुस्टंडा उसे हाथ पकड़कर मंच पर ले गया और ऊँचे स्वर में बोला, ''देवियो और सज्जनो, जिनका आपको इंतज़ार था, वो रुदाला जी आ गए हैं। अब ये एक घंटे तक ख़ुद अपना स्यापा करके आपका मनोरंजन करेंगे!''

''यह क्या बदतमीज़ी है!'' कलाकार बौखला गया। लेकिन उसकी बात किसी ने नहीं सुनी। वहाँ उपस्थित लोग, जिनमें से कुछ विशेष रूप से बुलाए गए बदमाश लग रहे थे, गले फाड़कर हँस रहे थे, सीटियाँ बजा रहे थे और शोर मचा रहे थे।

''मैं यह नहीं कर सकता!'' कलाकार ने स्वयं को आमंत्रित करने वाले नेता को पुकारकर कहा, ''गुंडाराम जी, यह सब क्या है?''

''क्या है?'' नेता ने सबको सुनाते हुए कहा, ''कलाकार जी, आपको हमने मुफ़्त में नहीं बुलाया है। जैसे आप औरों की फ़रमाइशें पूरी करते हैं, वैसे ही हमारी फ़रमाइश भी पूरी करें।''

नेता की इस बात पर वहाँ उपस्थित लोगों ने तालियाँ और सीटियाँ बजाई। कई लोग आइटम-आइटम चिल्लाने लगे, तो मंच पर कलाकार के पीछे खड़े मुस्टंडे ने ज़ोर से कहा, ''अबे, शुरू कर! एक घंटे तक छाती पर दुहत्थड़ मार-मारकर अपना स्यापा कर!''

एक घंटे बाद कलाकार वहाँ से बाहर निकला, तो उसकी हालत चुल्लू भर पानी में डूब मरने जैसी हो रही थी। ऐसा अपमान उसका कभी नहीं हुआ था। उसे लग रहा था कि अब वह किसी को मुँह दिखाने लायक़ नहीं रहा। उसे अपनी कार में बैठने की भी सुध नहीं रही। आँसुओं से धुँधलायी आँखों और डगमगाते पैरों के साथ वह पैदल ही चल पड़ा।

रात थी, कोहरा था और सड़क सुनसान थी। कलाकार गिरता-पड़ता-सा चला जा रहा था कि अचानक कोई उसका रास्ता रोककर खड़ा हो गया।

कलाकार उससे लिपट गया और रोते हुए बोला, ''तुमने मुझे यह कैसी कला सिखा दी, मेरे गुरु!''

भूत या वह जो भी था, बोला, ''पगले, मैंने तो एक रोते हुए लड़के को हँसाया था। मुझे क्या मालूम था कि तुम मेरी नक़ल करने लगोगे और उनको हँसाकर पैसा कमाने लगोगे, जो दूसरों को रुलाते हैं।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी कविता

अश्वघोष

महँगाई की मार

महँगाई की विकट मार से
आहत, आँगन की किलकारी

एक नहीं है खेल-खिलौने
कैसा है यह जादू-टोना
सिर्फ़ गूँजता है कानों में
निष्प्रभ राग, राग दरबारी

क़द में छोटे, अक्ल में कच्चे
बौने-से लगते हैं बच्चे
जहाँ खड़े थे वहीं खड़े हैं
रुकी अचानक ही बढ़वारी

नींद न आती सपने आते
सपनों में सपने खो जाते
परियों ने भी आना छोड़ा
सपने भी लगते सरकारी

आहत, आँगन की किलकारी।

बंजर जैसी

बंजर जैसी लगती है अब
धरा उसूलों की

चेहरे पर चेहरे दिखते हैं
रुपयों में रिश्ते बिकते हैं
माला बनने से वंचित है
हसरत फूलों की

अपवादों की लाठी थामे
चित्रफलक पर हैं हंगामे
अनुमानों में खेल रही है
दृष्टि बबूलों की

जाने-माने कवि अश्वघोष का जन्म 1941 में हुआ। कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, उत्तर प्रदेश प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय से पुरस्कृत हैं। संपर्क : 7, अलकनंदा एनक्लेव, जनरल महादेव सिंह रोड, देहरादून 248001
फ़ोन : 0135-2625099

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चिंताओ की गठरी लादे
थके हुए हैं नेक इरादे
अहसासों में दर्ज हो रही
गिनती भूलों की।

प्यार कर

बुझते दिए को
प्यार कर

आज तक इसने दिया
आलोक तुझको
यह चला अब यह चला
तू रोक इसको
चेतना में प्राण का
संचार कर

जब तलक स्नेह था
जलता रहा
रोशनी की शक्ल में
ढलता रहा
अहसान का बदला चुका
उपकार कर

तिल-तिल जला यह
सिर्फ़ तेरे वास्ते
दूर तक रोशन किए
इसने अँधेरे रास्ते
खो न दे अब रोशनी
यह हार कर।

जाने कैसे चूक गए

जाने कैसे चूक गए
अनुमान जीवन के
पंथ तो पहले चूका
फिर चूक गया पाथेय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मन–मुकुर में बिलबिलाया
आत्मधर्मी नेह
खो गए जाने कहाँ
सम्मान जीवन के

है अँधेरा ही अँधेरा
दूर तक आकाश में
दिख रहीं गहरी दरारें
भोर के विश्वास में

बुझ गए संताप में
दिनमान जीवन के

ख़्वाब है, सच्चाई है,
अलगाव है, क्या है ?
आह्लाद है, अनुवाद है,
बदलाव है, क्या है ?

संवेदना को ढूँढ़ते
उपमान जीवन के।

ताबूतों में धरे हुए

ताबूतों में धरे हुए क्यों
हमको ख़बर नहीं
चेहरे अमलताश–से लगते
क़द्दावर कचनारों के
कर्तव्यों की हथकड़ियों से
हाथ बँधे अधिकारों के

ख़ुद से ही हम डरे हुए क्यों
हमको ख़बर नहीं

दृश्य झर गए दरियाओं के
पत्थर रह–रहकर चौंकाएँ
सूनेपन में तैर रही हैं
बेबस, आँखों की नौकाएँ

तन–मन से हम परे हुए क्यों
हमको ख़बर नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मौसम के कोड़े खा-खाकर
काया अपनी हुई गिलहरी
गर्मी हठधर्मी दिखलाए
जाड़ा जोड़े रोज़ कचहरी

घाव हमारे हरे हुए क्यों
हमको ख़बर नहीं!

हट गए तो हट गए

हट गए तो हट गए
अब पैर लीकों से

लीक तो चलती रही पर
हम सदा ठहरे रहे
मौसमों के व्यंग्य हमने
रोज़ सीने पर सहे

गति नहीं संगति में आई
उन तरीक़ों से

ज्ञान की गठरी उठाए
भीड़ के बाज़ार में
जाल में मछली सरीखे
फँस गए तकरार में

हमको धोखा ही मिला
अकसर शरीफ़ों से

मन तो बातें कह न पाया
तन ने सब बतला दिया
जाने किसके मशविरे पर
अहम् ने बदला लिया

झर गई संवेदना
संपूर्ण, गीतों से।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मृदुला प्रधान

धड़कनों की तर्जुमानी...

धड़कनों की तर्जुमानी
अब किताबों में रखा है,
मैंने भी वह शीत चखा है।
नील-स्वप्न, स्वच्छंद, सुवासित
पंख जहाँ खुलते थे,
तरुण मलय के पत्तों पर
किरणों के रस
घुलते थे,
अनिल द्वार पर
दस्तक देकर
सौरभ रख जाता था,
कलियों का परिधान
इत्र के
मेले में आता था,
स्वर्ण-सुरा की मदिरा
पी-पीकर
गुलाब खिलते थे,
अलि-गुंजन की
लय सुन-सुनकर
धूप-छाँव बुनते थे,
प्रथम पहर के
अमृत से
शचैल-स्नान होता था,
रात, सितारों की
महफ़िल में
आमंत्रण रहता था,
कभी बसंती
द्रुम-दल के
पीछे-पीछे
हल्के-हल्के से
पाँव रखा है,
मैंने भी वह
शीत चखा है।

मृदुला प्रधान का जन्म 1947 में हुआ। कई कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। संपर्क : डी-191, ग्राउंड फ़्लोर, साकेत, नई दिल्ली 110017
मो. 9810908099

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विनोद बिहारी लाल

चेहरा

वह जो क्रॉसिंग पर रुके ऑटो में
बैठा शांत, हल्की-सी मुस्कान का
भ्रम पैदा करता हुआ, चेहरा देख रहे हो
मैं उसे जानता हूँ
उसके भीतर पहाड़ जैसी लहरें उठती हैं
और अनुपस्थिति तटों पर पछाड़ खाती
फेन और फुहार में बिखर जाती हैं
एक विकल और उदास करने वाले शोर के साथ
पर वह सतह को बचाए रखता है

मुझे सही तो नहीं मालूम
पर शायद उसने सुन लिया हो
जब बेटे की बहू कह रही हो उसे हरामज़ादा
या बेटे की माँ को चुड़ैल
या फिर धमका रही हो बेटे को
ज़िद्दी लव मैरिज के बाद
कि वह उसका और उसके माँ-बाप का
क्या कर सकती है
अपने क़ानूनी अधिकारों के तहत

यह भी हो सकता है
कि ऐसा कुछ भी न हुआ हो
और वह केवल ईश्वर से प्रार्थना कर रहा हो
कि उसकी पत्नी को उससे तनिक पहले उठा ले
ताकि वह अकेली बहू-बेटे के हाथों न पड़ जाए
और उसके चेहरे की शांति
प्रार्थना के क्षणों में ईश्वर-सान्निध्य की शांति हो।

विनोद बिहारी लाल का जन्म 1939 में हुआ। इनके आलेख, कविताएँ, समीक्षाएँ आदि प्रकाशित होते रहे हैं। संपर्क : 18, शुभ निकेतन, ए 4, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063 फ़ोन : 011-25250293

राजेंद्र निशेश का जन्म 1944 में हुआ। इनकी व्यंग्य-संग्रह, कविता-संग्रह, बाल गीत-संग्रह की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। हरियाणा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हैं। संपर्क : 2698, सेक्टर-40 सी, चंडीगढ़ 160036 फ़ोन : 0172-2694329

राजेंद्र निशेश

बिश्नो दाई

मचा हुआ है कोहराम
कि बिश्नो दाई अब नहीं रही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं रही किसना गाँव की शान।
बिश्नो दाई देती थी
जच्चा और बच्चा को
नई जान।

कहते हैं कि उसके हाथ में था जादू,
अपने हाथ के स्पर्श से ही
जान जाती थी जच्चा के पेट में
बच्चे के हालात
और पूरे नौ महीने तक
देती थी अपनी ममता का प्रसाद।
न जाने क्या था उसमें
बड़े-बड़े वैद्य-हकीम जो नहीं जान पाते
अपने महँगे परीक्षणों से
वह जान जाती
अपने हाथ के मात्र स्पर्श से।
लेकिन लेशमात्र भी नहीं था
उसमें छल-कपट का भाव
और नहीं करती थी कोई ग़लत काम।

लेकिन बिश्नो दाई अब नहीं रही,
आत्महत्या या गला घोंटकर उसकी हत्या
कुछ भी नहीं निकलने वाला
पुलिस की तफ़्तीश से।
सुना है कि दो दिन पहले
लाया था नंबरदार का बेटा
किसी कमसिन अनब्याही लड़की को
उसके अनचाहे गर्भ से मुक्ति दिलाने,
और बिश्नो दाई ने
कर दिया था साफ़ इनकार
अपने हाथों को पाप से रँगने से।

पूरा गाँव जानता है
कि यह बिश्नो दाई की मौत नहीं
इंसानियत की मौत है!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सत्येंद्र कुमार रघुवंशी

रस्सियाँ

रस्सियों को अफ़सोस है
वे इस सावन में
पेड़ों तक नहीं पहुँच पाईं

नहीं पहुँच पाईं हवाओं तक
नहीं पहुँच पाईं मल्हारों तक
नहीं पहुँच पाईं चिड़ियों के विस्मय तक

क़ैद रहीं
बड़ी-बड़ी इमारतों में ही

छत की कड़ियों पर ही
टँगी रहीं
लोहे के पाइपों पर ही
लटकती रहीं

नहीं देख पाईं इस बार
बारिश में भीगते हुए बाग़
पत्तों से टपकती हुई बूँदें
बादलों का अटूट बादलपन

नहीं भीग पाईं ख़ुद भी
महीन झींसियों में

रस्सियों को अफ़सोस है
वे इस बार
सावन को नहीं कर पाई कृतार्थ
लड़कियों में नहीं बाँट पाईं खिलखिलाहटें
आसमान को खोलकर नहीं दिखा पाईं
अपनी एक-एक पींग।

सत्येंद्र कुमार रघुवंशी का जन्म 1954 में हुआ। इनकी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। संपर्क : एम.आई.जी.-1, गवर्नमेंट ऑफ़िसर्स कॉलोनी, सेक्टर-ई, अलीगंज, लखनऊ 226020, मो. 9415077077

एक तिल तुम्हारी आवाज़ में भी

एक तिल तुम्हारी आवाज़ में भी है
एक लट है तुम्हारी ख़ामोशी में भी

एक अरगनी तुम्हारी चेतना में भी है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक खिड़की है तुम्हारी धड़कनों में भी
एक मुँडेर तुम्हारी आत्मा में भी है

एक कोयल तुम्हारे सन्नाटों में भी है
एक हरसिंगार है तुम्हारी ऋतुओं में भी
एक बारिश तुम्हारी गुनगुनाहट में भी है

एक हिरनी तुम्हारे वेग में भी है
एक निर्झर है तुम्हारी शिलाओं में भी
एक मरमर तुम्हारी फुनगियों में भी है

एक कौंध तुम्हारी टीसों में भी है
एक भिनसार है तुम्हारी दुश्चिंताओं में भी
एक पूरब तुम्हारे अहसासों में भी है।

कुँआरी लड़कियाँ

घर के काम से फ़ारिग़ होकर
इतवार के दिन लड़कियाँ
निगाह दौड़ाती हैं वैवाहिक विज्ञापनों पर

वे कविताएँ नहीं पढ़तीं
जल्दी से पलट देती हैं कहानी का पन्ना
परहेज़ करती हैं लेखों से और ललित निबंधों से

हाथ में पेंसिल लेकर
वे बड़े ध्यान से पढ़ती हैं
कुँआरों, विधुरों और तलाक़शुदा पुरुषों की ज़रूरतें
और ख़ुद को बार-बार परखती हैं
उनके द्वारा तय की गई कसौटियों पर

किसी को चाहिए लंबी, गोरी और सुंदर कन्या
किसी को चाहिए कॉन्वेंट शिक्षित वधू
किसी को चाहिए संभ्रांत और प्रतिष्ठित परिवार की लड़की

किसी को जाति के बंधन पसंद नहीं
जबकि कोई सजातीय पत्नी का ही इच्छुक है
किसी को दहेज़ से चिढ़ है
जबकि कोई चाहता है शीघ्र और उत्तम विवाह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो लड़कियाँ लंबी नहीं हैं और गोरी नहीं हैं
और देखने में साधारण हैं
और केवल हिंदी जानती हैं
और मामूली परिवारों में जनमी हैं
वे बार-बार जाती हैं
ज्योतिषियों के पास

जाती हैं
भाग्य बताने वाली चिड़ियों के पास

जाती हैं
उन दुकानों तक
जहाँ पच्चीस रुपए में आसानी से मिल जाता है
वार्षिक राशिफल

जाती हैं
शहर के हर अच्छे फ़ोटोग्राफ़र के पास
कहीं भेजने लायक़ एक फ़ोटो खिंचवाने के लिए

ऊँघते हुए लोग

देखो
इधर-उधर गिरती अपनी देह को
कैसे सँभाल रहा है
ऊँघता हुआ आदमी

देखो
कितनी ख़ामोशी से वह
पूरा करना चाह रहा है
अपना सफ़र
अजनबी कंधों पर लुढ़के बग़ैर ही

उसकी तंद्रा में भी एक समझदारी है
उसके आलस्य में भी एक अनुशासन है

अख़बार उसके हाथ से छूटकर
नीचे नहीं गिर रहा
चश्मा उसके चेहरे पर
मज़बूती से टिका है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शायद यह किसी भागदौड़ के बाद का क्षण है
शायद यह किसी बड़ी थकान से लड़ने की तैयारी है

क्या ऊँघते हुए लोग
हिचकोलों के दौरान
इसी तरह रखते हैं
ख़ुद को शांत और व्यवस्थित

क्या ऊँघते हुए लोग
आसपास के शोर और तेज़ आवाज़ों के बीच
इसी तरह चुपचाप जुटाते हैं
अपने अंदर की सारी ताक़त

ये ऊँघते हुए लोग
कहाँ से लाते हैं
सार्वजनिक स्थानों पर
इतनी निश्चिंतता से ऊँघने का हुनर

ऊँघते हुए लोग
ऐन मौक़े पर तेज़ी से उठकर
कैसे उतर पड़ते हैं
अपनी मंज़िल पर अचानक।

हरीश करमचंदाणी

अच्छे आदमी की हँसी में...

एक अच्छे आदमी की तुलना में
बुरा आदमी ज़्यादा किया जाता है याद
जबकि अच्छा आदमी आपका ही नहीं सबका भला चाहता है
उसकी याद हरदम रहनी चाहिए दिल में
क़ायदे से तो
मगर ऐसा नहीं होता
बुरे आदमी का ज़िक्र बार-बार आ जाता है
बात कहीं से भी शुरू हो अंत तक आते-आते
वह कहीं-न-कहीं से आ ही जाता है आपकी बातों के बीच
उसे कोसते हुए उसे जीवित बनाए रखते हैं हर समय
यानी वह अचेतन में बैठा होता है आपके

हरीश करमचंदाणी का जन्म 1954 में हुआ। हिंदी और सिंधी में कविता, व्यंग्य आदि प्रकाशित होते रहे हैं। संपर्क : 9/913, मालवीय नगर, जयपुर 302017

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माना उसके कई कृत्य होते हैं ऐसे
कि आपका क्रोध में उफनना वाजिब है
मगर बताइए जनाब ऐसा करके आप अपना
नुक़सान ही तो कर रहे होते हैं
और मज़े की बात यह कि यह आप जानते हैं
मगर भूल जाते हैं हर बार जब उसे देखते हैं
और फिर किसी-न-किसी बहाने ले आते हैं
अपनी बातचीत में
तब वह अच्छा आदमी फिर साबित करता है अपनी अच्छाई
वह कहता है, भाई तुम कहो तो उसका इलाज कर दिया जाए
पर बेहतर होगा उसे छोड़ दे उसके हाल पर
आख़िर हर बुराई का अंत तो होता ही है न
आप उसका आशा से भरा चेहरा देखते हैं
उसकी हँसती आँखों में अपने लिए दर्द देखते हैं
और इंतज़ार किए बिना बुराई के अंत होने तक का
उस अच्छे आदमी के साथ-साथ आप भी हँसने लगते हैं

आप नहीं चाहते अच्छा आदमी आपके कारण हो दुखी।

पीयूष दईया

तामसी : सांतहंता

एक नीला नाम! अनाम। तकलीफ़तपा। ताना सुनता। जनकझिझका। निश्छल। उसे भाग देना नहीं आता न जानना। अबोध। अथक तुतलाता। गूँथता अभय। जीना। ककहरा सीखता। बीतते से बिंधा। संधिरेशों से बुना। प्रदत्तपारपाता। पारा-पारा पलता। अपारदर्शी। वहनधारी। पहले-पहल गधे की ढेंचू ढेंचू करता अब लिखता है ढेंचू ढेंचू। हुआँ हुआँ करते साबितनवीसों के दिए घावों से घमासान करता। घायल। जुगनूजमुरा। हेकड़ी हाँकता न रस्मी रेवड़ चराता। कक्षापूत। चँदोबा चाहता। जुगतजाल से बचता बाल बाल। कल से आया कल को जाता कल कल करता विकलवासी। गले कुछ भी उतर नहीं सका सो सहमति का स्वाँग भरने से इनकार करता। दृश्यालेख से ओझल। दर्जदरारों से रिसता हस्बेमामूल। ताड़पत्रों पर मार्ग तलाशता सांतहंता। तन्वंगी तामसी के तलुओं में बहते बहेलिये बादलों को अपने सफ़ेद हो चले बालों से आहुति देता। बिना उम्मीद के चारा डालने को समझने लगता। सबसे ऊँचे

पीयूष दईया का जन्म 1973 में हुआ। इनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। संपर्क : द्वारा श्री संदीप मेहता, सिद्धार्थ लेकसिटी, रायसेन रोड, आनंद नगर, भोपाल (म.प्र.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दरख़्त पर झीने-से सरसराता। बिना चाप कि राल टपकते देख सके। यूँ चिलका पड़ते आभासी को ओट के सियाह से बचा लेता, अचरज के अतर्कित से।

अँधेरा : जड़ों का घर

पीठ कोरे पिता, देखो। मैं, अब मूकमूँछ हूँ।
छल-चिह्नों से छूटते हुए।
इस जन्म में दीमक लग गई है, अहैतुक में फफूँद। काठ के सिफर ढोते मेरे सारे शब्द समाप्ति की मालगाड़ी जैसे हैं। हृदय में फ़ालिजग्रस्त, कलपते खोपड़ी में। अँधेरा जो जड़ों का घर है। क्या उन्हें कभी अपनी केंचुल बदलते देखा जा सकता है ? कौन जाने। मेरा तो कोई पूर्वज नहीं, मैं निर्वंश हूँ। अकेला, एक लाश जैसा। तीन में न तेरह में सुतली की गिरह में। आसमान का सफ़ेद कोढ़ जो रात में हकलाता-सा चमकता है। टोक की तरह। टिमदिप टिमदिप। अदेय दाने। आँसू का बाहुल्य।
चूते चूते छिटक गया हो जैसे।
अन्यत्र को आँख देते जब चुग लिए दाने ऐबदार हो।

राधेश्याम तिवारी

शेष कुशल है

चारों ओर मची हलचल है
शेष कुशल है।

आई बाढ़ भरा है पानी
अपनी भी बह गई पलानी
राहत के पीछे भी छल है
शेष कुशल है।

गाँव छोड़ अखिलेश गया है
कुछ करने परदेश गया है
इस चिंता में मन पागल है
शेष कुशल है।

बाबा-अम्मा देख न पाते
दुख से अपनी मौत बुलाते

राधेश्याम तिवारी का जन्म 1963 में हुआ। इनकी कविताएँ एवं आलोचनात्मक आलेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। एक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ है। संपर्क : एफ़-119/1, फ़ेज़-2, अंकुर एनक्लेव, करावल नगर, दिल्ली 110092 मो. 9313565061

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इनकी खटिया में खटमल है
शेष कुशल है।

मंत्री हैं अब राजा-रानी
असली राजा भरता पानी
संसद के भीतर जंगल है
शेष कुशल है।

परिवर्तन अब नारों में है
उपलब्धि अख़बारों में है
नालों में ही गंगाजल है
शेष कुशल है।

विजय नाहटा

दीठ की थाठ

दीठ की थाह तक
रेत के मंज़र-दर-मंज़र
लिखता हूँ तुम्हारा नाम
गोरी पीतवर्णी रेत की देह पर
आत्मा से निकाल बाहर
ख़ुद को सजाता हूँ।
पर, यह क्रुद्ध, पगलाई-सी हवा
लिखता मैं जो बार-बार
प्यार की इबारत
मिटाए जा रही हर बार उसको
मनोयोग से, अविराम।
आभार!
यही कि होने दिया उसने
मुझको हर बार
बार-बार।

विजय नाहटा का जन्म 1964 में हुआ। दो कविता-संग्रह प्रकाशित। उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य संस्थान से पुरस्कृत। संपर्क : बी-92, स्कीम 10-बी, गोपालपुर, बाईपास रोड, जयपुर 18, मो. 9414391211

संध्या

संध्या में तब्दील होते दिवस में
तुम्हें याद करता हूँ मैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

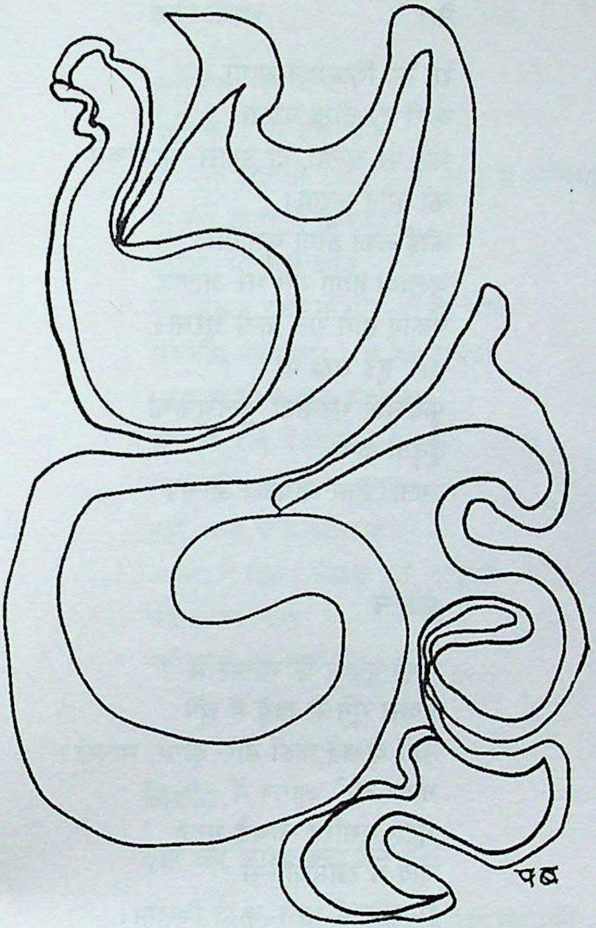

कल सुबह जब मैं जागूँगा नींद से
यह कहते हुए कि
मैंने कल तुम्हें याद किया था।
यह जो घट रहा
उसके लिए इस समय
महज़ यह भी कहा जा सकता है कि
मैं कल सुबह
तुम्हारी याद को
इतिहास की तरह पढ़ूँगा।
आश्वस्ति यही कि—
भूत-भविष्य-वर्तमान
सभी में तुम जो हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रेत

रेत का विकराल सागर
कहीं दूर दीख पड़ता
धोरे पर चूल्हा; दो उदास-से पत्थरों
की ओट करता।
कोई रुका होगा मुसाफ़िर
जलाया होगा रात भर अलाव
पकाए होंगे रोटे बाटी चूरमा।
बुझी हुई राख पर
फुदकती भटकती फूलचुहिया
ढूँढ़ती दाना
आना! फिर यायावर आना।

दुपहर

गाढ़ी दुपहर के सन्नाटे में
उदास सूने से खड़े हैं झूँपे
नहीं दीखते कहीं ढोर-डाँगर, मानखे।
गोबर लीपे आँगन में
धूल-धूसरित चीथड़े गूदड़े
याद में ख़ामोशी-से
सिसकियाँ भरते, करते विलाप।
लौट आएगा फिर गृहस्वामी
पलायन कर गया जो
इस महाकाल में
इन झोंपड़ों—बस्ती को छोड़
दूर किसी परदेश ढोर-डाँगर औ' अपनी
टाबरी के संग।

नवंबर की पीली धूप में
फिर जल उठेगा चूल्हे से धुआँ
फिर दौड़ने लगेगा
किलकारियाँ भरता जीवन
फिर-फिर खिल उठेंगी
पूस की ठिठुरती
दूधिया चाँदनी सजी रात।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निपथ

अग्निपथ-सा ये थार
नहीं कहीं दूर तक हरा
दो-एक झुलसी टहनियों के आर्त से अभिमान
के बूते खड़ी ये खेजड़ी।
विरल-सी भले छाँव
पर, बैठता पंथी तनिक-सी देर नीचे
सुस्ताता, खोलकर जल की सुराही
गटकता मीठा हेम-सा जल
जल में जल उँड़ेलता
प्यास में प्यास लय करता।
नहीं, उगा चाहे बाहर हरा
आत्मा में खिल-खिल उठा अनुराग
भीतर भरा-भरा
नहीं चाहे दूर तक हरा।

निशांत

देश का नाम क्या है?

कितनी सदियों से प्रतीक्षारत है यह खिड़की
यह दरवाज़े
यह कुर्सी
और उसके ऊपर घूमता हुआ पंखा

एक चिड़िया की आँखो में इंतज़ार बैठे-बैठे बूढ़ा हो गया
इमारत खो चुकी अपनी आत्मा
पूरे फ़र्श पर एक उपजाऊ पृथ्वी का क़ब्ज़ा हो चुका है
पिछले कई-कई वर्षों से कुछ नहीं हुए इस उपजाऊ पृथ्वी पर

अँधेरे में कुछ नहीं डोलता
दिन के उजाले में सिर्फ़ चिड़िया की आँख दिखलाई पड़ती है
कमरे में सिर्फ़ दिन होता है—रात होती है
और कुछ नहीं होता
कई गुलाब खिलते हैं और मुरझा जाते हैं।

निशांत की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। संपर्क : द्वारा मिठाईलाल, 42/1, जी.के. जी. रोड, भाटपाड़ा, उत्तर 24 परगना 743123 (प. बंगाल)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक दिन
वे अपने जहाज़ों पर लादकर लाए हल
थोड़े-से बीज
थोड़ा-सा ही खाद
और थोड़ी-सी ही सभ्यता-संस्कृति
वे खिड़की से आए
पूरे कमरे में दहाड़ता रहा जहाज़ का इंजन

पहले सभ्यता और संस्कृति
फिर बीज
फिर हल
और लहलहा उठी पूरी कायनात
वे सबसे सभ्य देश के प्रथम नागरिक थे
जिन्होंने सिखाया
बंद कमरे में सभ्यता-संस्कृति की खेती करना
हमारे देश-देशवासियों को

हमारे देश का नाम क्या है ?

सत्ताईस की उम्र में

कई दिनों बाद
जब सब कुछ सामान्य चल रहा था
अचानक लड़का असामान्य-सा कुछ महसूसने लगा अपने अंदर

संबंध मतलब ज़रूरतों का समझौता
ज़रूरत मतलब दोस्ती प्यार पैसा
ज़रूरतों की अहमियत और उसका दर्शन
अभी-अभी जाना है उसने

एक छद्म ओढ़े
किताबों में प्रेम और संवेदनाओं की बड़ी तार्किक व्याख्या थी
जिसमें एक लेखक के साथ एक संवेदनशील फ़िल्म भी जुड़ी थी

लड़का बेरोज़गार था
ज़िंदगी के नेगेटिव में सिर्फ़ एक गहरा रंग भरा था
आत्महत्या के बारे में कई बार सोच चुका था
प्रेमिका के साथ टहलते हुए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेम संबंध पैसा
जीवन सफलता ऐसा
साहित्य फ़िल्म कैसा
ये सारे उत्तर थे प्रश्न की तरह
या सारे प्रश्न थे उत्तर की तरह
लड़का कुछ समझ नहीं पा रहा था

लड़का कुछ नहीं समझ पा रहा है
उसकी उम्र सत्ताईस साल है
अचानक असामान्य-सा कुछ महसूसने लगा है अपने अंदर
बीच सड़क पर टहलते हुए

दूर से देखने पर
वह बेरोज़गारी और आत्महत्या के बारे में सोचते हुए
टहलते हुए दिख रहा है।

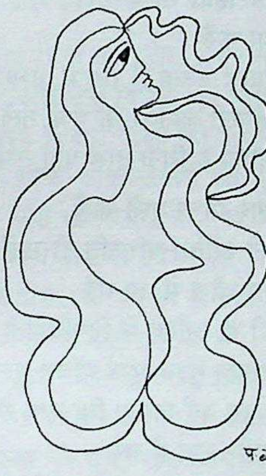

अट्ठाईस की उम्र में

सचमुच यही उसके प्रेम करने की सही उम्र है
जहाँ उसके सपनों में लहलहा रहा है
एक पवित्र सूर्ख़ लाल गुलाब

इसी उम्र में दिल से निकलती है सच्ची प्रार्थना
जिसे क़बूल करने से हिचकिचाता है समाज
इसी उम्र में खुलते हैं डैने जिससे तौलना पड़ता है सारा आकाश
इसी उम्र में पैर में लग जाते हैं चक्के
जिससे नापनी पड़ती है सारी पृथ्वी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण उम्र होती है
जहाँ सबसे ज़रूरी होता है एक अनुभवी प्रेमी का अनुभव
पर अफ़सोस अपने अनुभव को सबसे श्रेष्ठ और सबसे पवित्र
बताते हुए हम ठगे जाते हैं
कभी-कभी हम जीत जाते हैं और जश्न मनाते हुए
रंगे हाथों पकड़ लिए जाते हैं अपने अंदर ही
यहाँ तन हावी नहीं होता मन पर
मन बहुत ही हल्का पारदर्शी और पवित्र होता है इस उम्र में
तन की बात ही नहीं करता मन

ऐसी स्थितियों से गुज़र चुका हूँ मैं
जहाँ सिर्फ़ दो आँखें और दो बातें ही महत्त्वपूर्ण होती हैं
इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होता है
सपने में लहलहा रहे सूर्ख़ पवित्र लाल गुलाब
का लहलहाते रहना
पर क्या करूँ
जब सुबह उठता हूँ रात में भभोड़ दिए गए
एक जंगली जानवर के पंजों तले अपने क्षत-विक्षत शव को लिए
तब लगता है बिना तुम्हें पाए तुम्हें प्रेम करना एक नाटक करना है

कई बार सोचा तुम्हें कहूँ
प्रेम की अंतिम परिणति दो रानों के बीच होती है
हर बार बीच में आ गई
तुम्हारी दो आँखों में दिपदिपाती हुई पवित्रता
लहलहाता हुआ सूर्ख़ पवित्र गुलाब
और ऐसा क्यूँ लगता कि गंगा से नहाकर माँ के
साथ लौट रहा हूँ घर
शायद तुम्हारे अंदर मेरी माँ भी है

एक बार इसी पवित्रता से डरकर
एक और पवित्रता की खोल ओढ़े तुम्हें निमंत्रित कर बैठा था
'चलो शादी कर लें।'
'नहीं, पढ़ाई पूरी हो जाने के बाद।'
तुम्हारे सामने अंदर का जानवर न जाने क्यों शांत ही रहता है
उस दिन उस समय भी शांत रहा
जबकि रात में बिस्तर पर एक बार और वह हिंसक हो उठा था
मैं मजबूर-लाचार हो 'प्यार' 'पवित्रता' जैसे शब्दों से क्षमा-याचना
माँगता रहा अपने को भभोड़वाते हुए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तुम क्या जानो
एक अट्ठाईस साल के उम्र के लड़के की ज़रूरत
जो अपनी उम्र चौबीस साल बतला रहा हो
आख़िर तुम्हारी उम्र कम है
और इस उम्र से मैं भी गुज़र चुका हूँ।

उनतीस की उम्र में

जीवन जटिल होता जा रहा है
एक साँस लेता हूँ
कई आफ़तें एक साथ (साथ) अंदर चली जाती हैं
साँस छोड़ते वक़्त
कुछ भी बाहर नहीं जाता
एक ख़ाली-ख़ाली-सा निःश्वास बाहर जाता है
खोखले विश्वास के सहारे

ज़िंदा रहना एक बोझ बन गया है
तेज़ और तेज़ दिमाग़ की माँग है चारों तरफ़
मध्यम दिमाग़ वालों की जगह कहीं नहीं है
एक ठीक-ठाक नौकरी का जुगाड़ करना
इस सदी की सबसे बड़ी खोज है
अस्वस्थ आदमी स्वस्थ जीवन जीता है
और अस्वस्थ नहीं हो पाने के लिए ईश्वर को कोसता है एक युवा
इच्छाओं के सागर अनंत हैं
कई बार 'आत्महत्या के लिए घर वाले दोषी नहीं हैं' का
अंतिम पत्र लिख लेने के बावजूद फाड़ने पड़े हैं
प्रेमिका को मुक्त करने का अंतिम निश्चय करने के बावजूद
पार्क में निश्चित समय पर उपस्थित रहा हूँ
नौकरी पाना, प्रेम करना और आत्महत्या करना तीनों सरलतम
कार्य नहीं हैं
समझने लगा हूँ

अंततः लालच भारी पड़ जाता है

जीवन, ज़िंदा इच्छाएँ, प्रेम और कोमल शब्दों पर
और तो और कवि, उसका मैं और हम—
आप भी पकड़ लिए जाते हैं
अनंत इच्छाओं के सागर में
जटिल होते हुए जीवन में बोझ की तरह।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्मिता झा

इमलि डिकिंसन* के लिए

जब बरामदे में
पापा जी के क़दमों की चाप
तालबंदी करते हैं,
मेरी धड़कनें ख़ामोश हो जाती हैं
सबसे अच्छे/बुरे क्षणों में
संवादशील होना चाहती हूँ...
पर वे 'पोलस्टार' हैं...।

अभिव्यक्ति चाहती हूँ
सुख-दुख का संप्रेषण भी
मेरी सहमती कविताएँ
चिलकती हैं मन में
साँसों में घुटती हैं
पलकों से लुढ़कती हैं
सहमी-सी कविता
और सहमती है...
मुझ तक ही रहती है...
कविताओं के रोल बनाकर
शेल्फ़ में किताबों के पीछे
छिपाती हूँ...।
क्यों... ?
पता नहीं आपको ?
औरतें कविताएँ नहीं लिख सकतीं ?

मैं बंद हूँ 'होम-स्टीड' में।
मेरा कोई दोस्त नहीं।
प्रेम नहीं करती मैं।
टेबू है यह।

स्मिता झा का जन्म 1980 में हुआ। पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविताएँ प्रकाशित होती रही हैं। संपर्क : मैथिल चौक, मिरचाई बाड़ी, कटिहार-854105

* इमलि डिकिंसन (Emily Dickinson) (1830-1886) अमेरिकन कवयित्री थी, जिनकी सिर्फ़ सात कविताएँ उनके जीवन में प्रकाशित हो पाई थीं, पर मरणोपरांत छह महीने में उनकी कविता पुस्तक छह बार पुनः मुद्रित की गई, 1920 तक वे अमेरिका की प्रतिष्ठित कवयित्री बन गईं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्जनाएँ नहीं तोड़ती।
ईश्वर से प्रेम करती हूँ।

यौवन चूक जाने की लकीरें
ज्यों ही बनती हैं मुझ पर
मौत का प्रिय आलिंगन मिलता है...।

मैं मुक्त हूँ,
'होम-स्टीड' से,
वर्जनाओं से,
देखती हूँ...
यूरोप में
अफ्रीकी, एशियाई देशों में
पढ़ी जा रही हैं मेरी कविताएँ...!
इमलि डिकिंसन की कविताएँ...!
बिना शीर्षक के,
अंकों से सूचित कविताएँ...।
कविताएँ और कविताएँ...।

तो क्या... ?
अब औरतें...!
कविताएँ... ?
असंशोधित कविताएँ लिख सकती हैं... ?

बहुत कुछ कहना चाहती हूँ तुमसे

बहुत कुछ कहना चाहती हूँ तुमसे...
अगर मेरी बातें,
बातों में छुपी खुली सच्चाई
'मिडिल क्लास' की न लगे
'हाई-सोसायटी' की
रंग-बिरंगी चमकती रोशनी में—
अपने बदन की नुमाइश
करती हुई—
अश्लीलता की हद तक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक उत्तेजक मुस्कान के रंगीन पन्ने
बिखराती हुई...
आख़िर तुम क्या साबित करना चाहती हो... ?
कभी...इस बाज़ार के
ग़लीज़ अँधेरे में
अपनी सिसकती बेबसी के
क़िस्से सुनाती हुई,
दर्द और घुटन के
एक अंतहीन खोह में
पीली तितली-सी उड़ती हुई
हवाओं को रुलाती थी...

और आज...
'बोल्ड एंड ब्यूटीफ़ुल'
बनकर
इस तरह से
नज़र आती हो
जैसे...

चखो तो

देखो तो,
मेरी हँसी को
क्या इनमें
चौंधते-चमकते बिजलियों की
दमक है... ?

चखो तो,
मेरे आँसुओं को
क्या इनमें
बिछड़ते, बिफरते सागरों का
नमक है... ?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेम

प्रेम के लिए...
रखी थी बचाकर/सहेजकर
अपनी शोख...चंचल नादानियाँ
अपनी आँखों का सुरमई रंग...

सपनों की एक छोटी-सी नाव...
मौसम, फूल, लतरें, दरख़्त
और नीला खुला आकाश
गेंदा फूल, वन-चमेली, वन-जूही से महकते शब्द...

बचाना चाहती हूँ
सुखद...सनास पलों के लिए
कुछ खट्टी-मीठी यादें
ज़िंदगी जीने की ज़िद
कनेर के पीले फूलों में रँगीं
दोपहरें और शामें...

प्रेम के लिए
सब कुछ बचाना चाहती हूँ...
सब कुछ!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजस्थानी उपन्यास

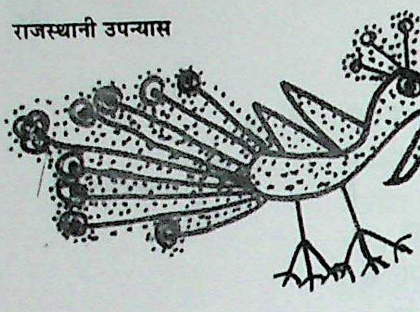

विजयदान देथा

मरवण

बरसों पुरानी बात है पूँगलगढ़ नामक एक प्रसिद्ध राज्य था। वहाँ का राजा पिंगल अपनी प्रजा को संतान की तरह प्यार करता था। बचपन से ही कृष्ण भगवान के समान राजा को गायें चराने-पालने का शौक़ था। अपनी देख-रेख में चरवाहों से चारा डलवाता, पानी पिलवाता। गर्मियों में अच्छी तरह नहलवाता। सर्दियों में गायों-बछड़ों की पीठ पर आथरे बँधवाता। एक सौ आठ गायों में कमी पड़ने पर अदेर पूर्ति करवा लेता। सभी गायें बगुलों की तरह सफ़ेद-बुर्राक़। साँझ-सकारे राजा पिंगल उनका मुँह देखकर ही खाना खाता। सौभाग्य से उमादे देवड़ी जैसी गुणवती रानी। इंद्र की अप्सरा के उनमान बेहद रूपवंती। निर्मल, धीमा स्वभाव। किसी भी डावड़ी या हाजरिए के लिए कठोर शब्द क्या निकल जाए! राज्य की तमाम प्रजा माँ के समान उसका आदर करती।

एक बार उस राज्य में लगातार दो बरस ऐसा भयंकर अकाल पड़ा कि अधिकांश प्रजा ढोर-डाँगर लेकर मालवा की ओर चल पड़ी। दयावंत राजा ने प्रजा के लिए ख़ज़ाना ही खुलवा दिया। ज़रूरत मुताबिक प्रत्येक घर के लिए उधार की व्यवस्था करवा दी। हर व्यक्ति के कंठ से यश के आखर हवा में गूँजने लगे—राजा हो तो ऐसा हो...। रानी हो तो ऐसी हो...।

राजा पिंगल और उसका कुटुंब तो सात अकाल का सामना मज़े से कर सकता था, पर गायों के लिए चारे की तंगी होने लगी। उन मूक जानवरों की अबोली व्यथा राजा-रानी से बिलकुल ही बर्दाश्त नहीं हुई। ज़रूरत मुताबिक माल-असबाब, पचासेक सिपाही, बीसेक घोड़े, तीसेक चाकर और कुछ दासियाँ लेकर बूढ़े पुष्कर जाने की तैयारी होने लगी। जोशी ने पंचांग देखकर शुभ मुहूर्त की मांगलिक वेला बता दी थी। बूढ़े पुष्कर में घास-चारे व पानी की इफ़रात थी। एकाएक छोटे भाई गोपालदास को गढ़ की पूरी ज़िम्मेदारी सौंपकर राजा-रानी पूर्णतया मुक्त हो गए थे। जब छोटे भाई से गलबहियाँ मिलकर पिंगल राजा ने प्रस्थान किया, तब सवा-घड़ी दिन मुश्किल से चढ़ा था। रानी उमादे देवड़ी और पिंगल राजा एक ही रथ में बैठे। गायों के गले में बँधे टकोरों की सम्मिश्रित मीठी टनकार ऐसी सुहानी लगती, जैसे माँ की गोद में लेटी मरवण को

राजस्थानी हिंदी के चर्चित रचनाकार विजयदान देथा का जन्म 1926 में हुआ। हिंदी में कहानी, कविता, निबंध और आलोचना की लगभग 35 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। राजस्थानी में कहानी, बाल कहानियों की पुस्तकों के अतिरिक्त *बाताँ री फुलवाड़ी* 12 खंडों में प्रकाशित है। साहित्य अकादेमी, भारतीय भाषा परिषद् तथा अन्य कई संस्थानों से पुरस्कृत हैं। संपर्क : रूपायन संस्थान, बोरूंदा 342604, जोधपुर (राज.)
फ़ोन : 02930-244112

अनु. स्वयं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

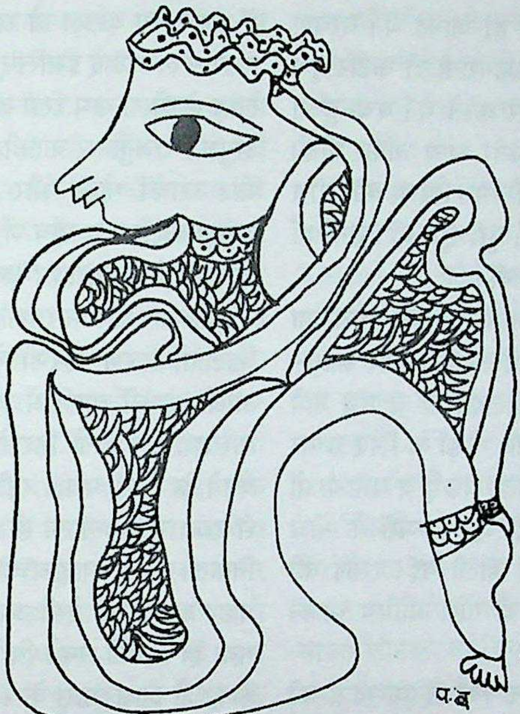

लोरी सुना रही हो। डेढ़ बरस की अबोध बिटिया माँ को टुकुर-टुकुर देख रही थी। काली-स्याह भौंहें और बरौनियाँ। हिरणी जैसी सुहानी आँखें। वीर-बहूटियों की तरह सुकोमल और गुलाबी होंठ। विस्मित दृष्टि, किंचित् खुली हुई, मानो गुलाब की कली खिलने के लिए आतुर हो। उसकी मौन वाणी के वे अकथ्य आखर राजा-रानी को स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। रेशम की झुगला-टोपी पहने शिशु ने इस तरह होंठ मुलमुलाए कि रानी ने अदेर कंचुकी उघाड़कर स्तन थमा दिया। घूँघट खींचकर आड़ा पल्लू कर दिया। घूँघट के भीतर दो चेहरे टिमटिमा रहे थे। एक माँ का और दूसरा उमादे की बाल्य सूरत का, जब वह फ़क़त डेढ़ बरस की थी। और दूसरी ओर मरवण युवती होने पर हू-ब-हू माँ के साँचे में ढल जाएगी। राजा पिंगल ने माँ-बेटी का ऐसा जीवंत चित्र देखकर मुँह मोड़ लिया, मानो अधिक समय तक उस आनंद को इकट्ठा करने की ख़ातिर उसके पास पर्याप्त ठाँव नहीं हो!

उस अनहद हर्ष के झूले पर झूलते हुए दिन अस्त होने में कितना समय लगता है! घड़ी भर पहले सूर्य का अथाह उजाला धरती पर समा नहीं रहा था और घड़ी भर पश्चात् उसका अनंत उजाला जाने कहाँ गुम हो गया? गर्व-गुमान किसी का भी स्थिर नहीं रहता। जब पश्चिम दिशा की गोद में सूरज ही सोने लगा, तब मरवण क्यों जागती रहती! दूध पीते-पीते अपने-आप ही उसकी पलकें मुँदने लगीं। रानी उमादे ने गोद में सोते नन्हे-मुन्ने शशि को गद्दी पर सुलाकर, रथ रोकने के लिए कहा। राजा-रानी दोनों नीचे उतरे। आषाढ़ सुदि दूज का नया चाँद निहारकर एक-दूसरे की सूरत निहारी। फिर एक-एक गाय का मुँह देखकर न जाने किसको सिर नवाया! जिसका मतलब किसी ने भी किसी से नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूछा, मन-ही-मन दोनों ही जानते थे। मरवण के जन्म की ख़ुशी में राजा-रानी दो कटोरे दूध और फलों का ही आहार करते थे। बचा हुआ दूध डावड़ियाँ, सिपाही और अन्य चाकर पीते। बाक़ी घोड़े-घोड़ियों के निमित्त। राज्य की ग़रीब जच्चाओं के लिए घी की पूरी छूट थी। रानी माँ ख़ुद अपने हाथों से डालतीं।

सप्तमी की सुबह राजा पिंगल का लवाजमा बूढ़े पुष्कर पहुँचा। मैदान समतल और साफ़-सुथरा करने के बाद छौलदारियाँ व तंबू ताने गए। तीसरे दिन गायों और घोड़ों के लिए छप्पर तैयार हो गए, खूँटों सहित। बछड़े व बछियाओं के लिए छोटे छप्पर। दो-एक छप्परों के नीचे मीठे पानी की मूणें भर डाली गईं। रसोई की व्यवस्था अलग से कर दी गई। आमिष भोजन के लिए सख़्त प्रतिबंध।

संयोग कुछ ऐसा बना कि तीनेक खेतों की दूरी पर नरवरगढ़ के राजा नल का पड़ाव था। इकलौता पुत्र साल्हकुँअर, तीन बरस का। रानी दमेती ने राजकुँअर के जन्म पर बूढ़े पुष्कर की मन्नत मानी थी सो शुभ-मुहूर्त की मांगलिक वेला जेठ सुदि तीज को ही वहाँ डेरा डाल दिया। आधे भादो तक पुष्कर के दरीख़ाने आनंद-उत्सव। राजा नल का ठाट-बाट निराला ही था। सारे दिन तापड़धिन्न का माहौल। पर दारू-मांस वहाँ भी निषिद्ध। रानी का सख़्त आदेश था। पहुँचे हुए संत के आशीर्वाद से सात बरस पश्चात् रानी की कोख उघड़ी थी। पूज्यवान संत ने शुरुआत में किसी तीर्थ पर राजा-रानी दोनों को ही शपथ दिलवाई थी। जब कुँअर पँखुड़ियों से बाहर आया, तब दाई माँ नज़र उतारते होंठों-ही-होंठों में गुनगुनाई थी कि दूसरे बच्चों के लिए तो विधात्री नौ या दस महीने ही कारीगरी रचती है। पर इनके लिए पूरे सात बरस कारीगरी की, तब कहीं ऐसा अतुल्य स्वरूप गढ़ा गया। करोड़ों में एक। छप्पर छाने और तिमंज़िली हवेली बनाने में समय का दख़ल तो रहता ही है! किसी की नज़र न लग जाए इसलिए असल नाम की जगह लाड़ से ढोला नाम रखा और वाक़ई उस नाम के अनुरूप राजकुँअर काफ़ी भोला ही दिखने लगा था। उसकी भोली और अबोध मुस्कुराहट के कारण ढोला नाम ख़ूब जँचा। सोना और सुहागा एक ही ठोर कम ही मिलता है।

एक बार धाय मारवणी को गोद में खिलाती-खिलाती हिरण-हिरणी के पास आकर उनसे आधी-अधूरी वाणी में बातचीत कर रही थी। मारवणी उन दोनों हिरणों को देखकर उन पर बैठने के लिए मचल रही थी कि जोग-संजोग से राजा नल अकेला ही घूमते-घामते उधर से निकला। अकस्मात् बच्ची की सलोनी सूरत पर नज़र अटकी तो ऐसी अटकी मानो जादू ही हो गया हो। इतनी नन्ही बिटिया और ऐसा अथाह रूप, जो आस-पास के सघन पेड़ों में समा नहीं रहा था। हिरणों का जोड़ा स्थिर भाव से उसकी ओर एकटक निहार रहा था। वैसा अप्रतिम बाल-रूप निहारकर तो पत्थर भी सजीव हो जाए! कुछ देर बाद राजा को चेत हुआ तो वह धीरे-धीरे बच्ची की ओर आने लगा, जैसे गहरी नींद में कोई सपना देख रहा हो। पास आते ही गोद में लेने की मंशा से उसने बाँहें पसारीं। धाय भी असमंजस में पड़ गई कि वहीं खड़ी रहे या अपनी राह लगे। लेकिन बड़े आश्चर्य की बात कि मारवणी उस अजनबी की ओर इस तरह मचली, जैसे जन्म से ही उसे अच्छी तरह पहचानती हो। राजा ने भी बिना पूछताछ किए उस चंद्र-शिशु को गोद में उठाया और अपने पड़ाव की ओर चुपचाप चलने लगा, जैसे इसी उद्देश्य से घूमने निकला हो। धाय के साथ-साथ हिरणों का अबोध जोड़ा भी रवाना हो गया। न धाय ने कुछ भी पूछताछ की और न अपरिचित मानुष ने ही कुछ बताया। जैसे हिरणों की तरह वे भी गूँगे हों। डेरे के पास पहुँचते ही धाय की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुध-बुध लौटी कि नरवरगढ़ के राजा नल का पड़ाव सुना था, वही तो नहीं है?

राजा नल सीधा रानी के पास आया। रानी उस समय राजा के नाश्ते की ख़ातिर चाँदी की थाली में परोसगारी कर रही थी। चाँदी के कटोरे में गाढ़ा दही। एक तासली में चार-पाँचेक पूड़ियाँ और दूसरी में कैर-साँगरी का साग, जिसका राजा को बड़ा चाव था। जिन्हें मारवाड़ या जैसलमेर के गड़रिए हर साल लाकर देते थे। मूँगों के उनमान छोटे कैर और धागों जैसी पतली-पतली साँगरियाँ। राजा की गोद में गुलाब जैसी गुलाबी बच्ची को रानी देखती ही रह गई। एक बार हिरणों की आँखों में नज़र गड़ाकर वह तेज़ क़दमों से गई और अपनी गोद में ढोले को लेकर आई। दोनों के चेहरे नज़दीक करके बारी-बारी से निहारने लगी तो धाय का धीरज भी चूक गया। होंठों-ही-होंठों में फुसफुसाई, "आपके पास ही हमारा भी पड़ाव है। पिंगल राजा की रानी उमादे की बिटिया..."

रानी बीच में ही बोली, "मैं तो देखते ही पहचान गई कि ऐसा चाँद का टुकड़ा और किसका हो सकता है, जो मेरे ढोले से चौगुना ख़ूबसूरत हो...!" फिर राजा से कहने लगी, "पोकर जी की मन्नत ऐसी सुफल होगी, सपने में भी नहीं सोचा था! अब तो लगता है कि हम स्वार्थ के पदचिह्नों को खोजते हुए यहाँ आए हैं। वरना ऐसा संयोग कैसे बनता?" फिर धाय की ओर मुँह करके पूछा, "इसका नाम..."

"मरवण...।" मानो धाय का मुँह अमृत से छलक उठा हो।

"ढोला और मरवण...मरवण और ढोला। वेमाता (विधात्री) की मंशा का कभी-कभार यों पता चलता है! जैसे एक-दूसरे के लिए ही दोनों का जन्म हुआ हो। यों तो नरवरगढ़ की दमेती रानी बेहद धीरज वाली थी। मगर मरवण के बहाने ऐसा अचीता सपना देखने पर उसे एक क्षण की ढील भी बर्दाश्त नहीं हुई। राजा की ओर देखती हुई बोली, "चलो, पिंगल राजा के डेरे पर चलें। राजा-रानी से मरवण को ढोले के लिए माँगें...।"

"हम अपनी ओर से चलकर...।" राजा हैरान होते हुए कुछ कहना चाहता था पर रानी की उतावली का कोई पार नहीं था। मानो मरवण की माँग करते ही दोनों बच्चे क्षण भर में भरपूर युवक बन जाएँगे। बोली, "यह आपसी बड़प्पन का सवाल बिलकुल नहीं है। सीधे संयोग का मसला है...।"

"पर किसी ज्योतिषी से मुहूर्त तो पूछ लें...!"

"किसी को कुछ भी पूछने की दरकार नहीं है। वेमाता की इच्छा का साफ़ पता चलने पर बेचारे ज्योतिषियों की क्या बिसात! कलेवा भी वापस लौटकर कीजिएगा। समझना कि नवरात्रि का उपवास ही किया।"

"तुम्हारे उछाव के सामने कलेवे का क्या मोल...! तुमने सोच लिया है तो देर करने में सार ही क्या...! किंतु घर में अच्छी तरह विचार तो कर लें...।"

रानी के पाँवों पर तो मानो चींटियाँ चिपक गई हों! एक-एक क्षण पहाड़-सा महसूस हो रहा था। रूखी वाणी में जवाब दिया, "ईश्वर की इच्छा पर विचार करना हमें शोभा नहीं देता। बेकार बातचीत करने के लिए आपको यही समय मिला! साथ चलते हों तो चलिए, वरना मैं अकेली ही काफ़ी हूँ...!" रानी का मन वश में नहीं रहा तो मरवण को अपनी गोद में लेकर तीन बोसे लिए, जैसे तीनों लोक उसकी गोद में समा गए हों! फिर राजा कब पीछे रहने वाला! अन्य किसी को भनक तक नहीं पड़ने दी। रानी से दो क़दम आगे चलने लगा। सिर्फ़ धाय की पीठ पीछे, हिरणों के नैसर्गिक लवाजमे के साथ, पिंगल राजा के डेरे पहुँचे! राजा-रानी दोनों ही सोच रहे थे कि आज धाय ने इतनी देर क्यों कर दी!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमेशा तो एक पलक की भी देर नहीं करती। माँ का दूध पीने के बाद मरवण को घुमाने के लिए समय पर जाती और समय पर लौट आती। पखवाड़े में एक बार भी अबेर नहीं हुई। क्या आज सुरंगी तितलियों को उड़ते देखकर या कोयल की मीठी राग सुनकर हरे सुग्गों की टिव-टिव तान सुनकर अभी तक नहीं अघायी...! कि अचानक माँ की प्रतीक्षारत नज़र नरवरगढ़ के राजा-रानी पर पड़ी। धाय के दोनों हाथ ख़ाली थे। पास आते ही पता चल गया कि रानी की गोद में मरवण और राजा की गोद में कोई दूसरा शिशु किलोलें कर रहा है। उम्र में मरवण से कुछ बड़ा। पीछे हिरणों का वही चिर-परिचित जोड़ा, जो उनके डेरे में सर्वत्र निश्शंक घूमता है। मरवण उनसे अच्छी तरह हिली हुई थी।

पास आते ही नरवरगढ़ की रानी अपनी पहचान बताए बिना ही मीठी वाणी में बोली, ''आप

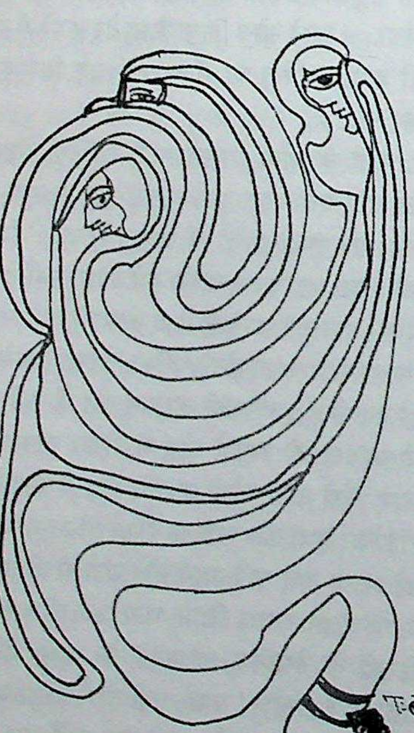

दोनों से एक अमूल्य रत्न माँगने आए हैं, बहुत आस सँजोकर।''

रानी उमादे ने उनकी मंशा भाँप ली। माँ के पारदर्शी अंतस् में कुछ भी छिपा नहीं रहता। सहज भाव से उत्तर दिया, ''आना तो हम दोनों को पहले था, उसकी जगह आप दोनों ने इतनी बड़ी बात सोची! आज का सूरज हमारे सौभाग्य में अचानक इतना अथाह उजास फैलाएगा, ऐसी आशा नहीं थी। हम दोनों हाथ जोड़कर मरवण के लिए वर माँगने की आज्ञा चाहते हैं।''

''पहले हमारी साध पूरी कीजिएगा, फिर आपकी माँग पर विचार करेंगे...।'' नरवरगढ़ के राजा रानी ने मुस्कुराते हुए अपने मन की बात प्रकट की।

रानी उमादे ने उनसे भी अधिक उत्साह से कहा, ''दोनों की मंशा का मतलब एक ही है। आपकी मंशा में हमारी साध शामिल है और हमारी मंशा में आपकी साध एकदम घुली हुई है। शायद वेमाता ने यही अंक लिखे हों। तभी तो पोकर जी जैसे बड़े तीर्थ में अपना मिलना हुआ।'' एक साथ पाँच-सातेक मोर टहूके, मानो उमादे की अमृतवाणी का समर्थन कर रहे हों।

तब नरवरगढ़ की रानी ने कहा, ''हमने यही बात सोचकर यहाँ आने की पहल की। सचमुच आज ही यह अहसास हुआ कि दुनिया के सभी मानुस किसी अदीठ हाथ की कठपुतलियाँ हैं, वो जैसे नचाए वैसे ही नाचना पड़ता है। आज का दिन जितना शुभ और मांगलिक है, उतना कोई दिन नहीं होगा। आपका 'सावा' क़बूल किया। आज साँझ को ही वेमाता की मंशा के अनुरूप भाँवरों का दस्तूर संपन्न करें। मरवण के इस बेजोड़ रूप की ख़ातिर देवता भी तरसते होंगे, फिर ऐसी जोखिम झेलने की हमारी क्षमता नहीं है। साँझ को ही बारात लाकर प्रवास के यथायोग्य आपके डेरे हाज़िर होंगे...।''

पिंगल राजा ने बीच में ही अरदास की,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''विवाह के लिए आपके योग्य व्यवस्था की ख़ातिर तीन-चार दिन की और इजाज़त मिल जाती तो अच्छा होता... !''

राजा नल ने तत्काल वैसा ही जवाब दिया, ''जिस बड़ी शक्ति को समूची दुनिया के अच्छे-बुरे का ध्यान है, उसी के अदीठ हाथों में यह ज़िम्मेवारी सौंप दें तो अपना अच्छा-बुरा अपने-आप तय हो जाएगा। बातचीत के मोह में ऐसा शानदार मुहूर्त चूकना ठीक नहीं है, मेरा मन यही साख देता है। जब अपने विचारने से यह काम नहीं हुआ तो अबोध बच्चों के अनुसार एकदम सादा विवाह करें तो और भी संगत रहेगा। ऐसा उत्तम विचार मेरे मन में अभी-अभी उपजा।''

''आपके मन में उपजा सो एकदम सही है। आपके कहने से हमारा मन भी इसी बात की साख भर रहा है...।'' उमादे देवड़ी ने विनम्रता-पूर्वक यह बात प्रकट की।

फिर क्या देर! नरवरगढ़ के राजा-रानी तो तय करके ही आए थे। रानी का संकेत पाकर राजा नल ने मरवण की गोद भरवाने का दस्तूर किया। उस अबोध अनजान बच्ची के लिए तो वह गुड़ियों का खेल ही था। दो-तीन बार मुस्कुराकर चुप हो गई। उम्र के साथ-साथ ही सब बातें धीरे-धीरे समझ में आती हैं। कैसा भी तीसमारखाँ क़ुदरत की प्रक्रिया को फलाँग नहीं सकता!

नरवरगढ़ के राजा-रानी की इच्छा पूर्ण होते ही वे अपने डेरे आए। किंतु इस बार हिरणों का जोड़ा उनके पीछे-पीछे नहीं चला। परिचित डेरे में ही रुक गया। अबोध होते हुए भी मरवण उनके नेह को भली-भाँति समझती थी। मगर होंठों से व्यक्त करने लायक़ वाणी उसे अभी तक मिली नहीं थी। फिर भी उनकी पीठ पर बैठने की ख़ातिर वह माँ की गोद से ज़बरन मचलने लगी। तब माँ की ममता ने बेटी का मन रखने के निमित्त दोनों की पीठ पर बारी-बारी से बिठाया तो वह मुस्कुराने लगी। मानो सूरज की पहली किरण उसके होंठों से उगी हो।

जो धाय मरवण को गोद में खिलाते-खिलाते नल राजा के डेरे तक गई, उसी को विवाह की सारी ज़िम्मेदारी सौंप दी गई। जैसा आदेश था, उसमें कुछ भी कमी नहीं रही। बूढ़े पुष्कर में ही एक अधेड़ सुथार से तोरण बनवा लिया। आले-गीले बाँस कटवाकर चँवरी मँडवाई। माँडने उकेरे। निहायत सादे ब्याह में कुछ भी झंझट नहीं था। सेर मूँगों से भी ब्याह संपन्न होता है और सेर अमूल्य मोतियों से भी।

किसी भी ज्योतिषी को पूछे बिना ही गोधूलि वेला में काँसी के बड़े थाल में तीन बरस का दूल्हा बैठा था। उसकी धाय के दोनों हाथ थाल को सँभाले हुए थे। मरजीदान खवासण ने दूल्हे को अच्छी तरह सँभाल रखा था और उधर डेढ़ बरस की दुल्हन ममतामयी धाय के हाथों सँभली हुई थी।

धम-धमाधम ढोल की गति के साथ काँसी की निरंतर रणकारों से सभी के मन में आनंद-उछाह समा नहीं रहा था। एक बार तो उस अचीती गूँज और रणकारों के परिणाम-स्वरूप दूल्हा-दुल्हन दोनों ही एक साथ चौंके कि यह क्या बला है... ! जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो अपने-आप ही मुस्कुराने लगे, मानो उनसे कुछ भी छिपा न हो। पर वाक़ई सब कुछ छिपा हुआ ही था। आख़िर मरवण तो धमाधम का वह तमाशा सुनकर रोने लगी। मगर दूल्हे पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ा। वह इधर-उधर चारों तरफ़ देखता हुआ मंद-मंद मुस्कुराने लगा। बच्चों के विवाह में उनके अनुरूप ही वक़्त लगता है। सभी बारातियों ने पिंगल राजा की माकूल व्यवस्था के लिए जी भरकर सराहना की।

नरवरगढ़ के राजा-रानी को तो ढोला की मन्नत के लिए पुष्कर आना ही था, इसलिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समधियों के पड़ाव दो-तीन बार गोठ-मजलिस करके, गले मिलकर वापस चले गए। लेकिन पिंगल राजा को तो पूरे लवाजमे के साथ अकाल का सामना करना था। सो बूढ़े पुष्कर की शरण में किसी बात की कमी नहीं थी। गायों के झुंड की मस्ती का तो कोई पार ही नहीं था। क़दम-क़दम पर पानी और हरी घास। मज़े से रँभाने लगीं। बछड़े कूदते-फाँदते और किलोलें करते। खीझे हुए ऊँट बलबलाते। हिनहिनाते घोड़े अपनी मनमानी करते। सभी नौकरों एवं दासियों की आब दमकने लगी। दूध-दही, घी-मक्खन और छाछ की बहुतायत के ठाट ही निराले थे।

चौमासे की गड़-गाज में जेठ महीना लगते ही बादल ऐसे जमकर बरसे कि पेड़-पौधे और घास मगन हो गए। पूँगल राज्य के पाँच-सात ऊँट-सवारों ने उम्दा बरसात के शुभ-समाचार दिए तो आषाढ़ ढलते ही सारे लवाजमे ने अपने राज्य की राह ली। गोपालदास जैसे स्वामीभक्त छोटे भाई के पुख़्ता समाचार आने के बाद कैसी ढील! राजा-रानी के पाँवों पर तो चींटियाँ चिपटने लगीं! साधे सावन तक तो राज्य की तमाम प्रजा राजी-ख़ुशी अपने-अपने ठौर- ठिकाने आ पहुँची। राह चलते जन-जन के मुँह से राजा-रानी का यश गूँजने लगा—राजा हो तो ऐसा! रानी हो तो ऐसी! इंतज़ाम हो तो ऐसा!

रानी उमादे ने तो आते तक़ाज़ों-पर-तक़ाज़े किए तो राजा ने पुख़्ता हामी भरने के बाद सातवें दिन विश्वासपात्र गड़रिए के हाथ काग़ज़ भेजा—अकाल का मौज़-मस्ती से सामना करके हम सभी राजी-ख़ुशी अपने राज्य में पहुँच गए हैं। यहाँ के समाचार मंगलदायक हैं, आशा करते हैं कि आपके भी मंगलदायक होंगे। पोकर जी के बड़े धाम आपकी बहुत मेहर-मया रही। राजकुँअर ढोला जी का ख़ूबसूरत चेहरा आँखों के सामने हरदम घूमता रहता है, जैसे हवा में ठौर-ठौर चाँद-ही-चाँद उगे हों। समय पर किसी का भी अंकुश नहीं चलता, वह तो अपनी मौज़-मरजी से सरकता है! इसलिए धीरज रखने के अलावा दूसरा चारा ही क्या है!

वापस हाथों-हाथ उसी गड़रिए के हाथ समाचार भिजवाए। राजकुँअर ढोले की बजाय राजा-रानी की आँखों के सामने मरवण की सूरत एवं उसकी मुस्कान हवा में घूम रही थी। यदि उनका वश चलता तो तीसरे दिन ही पंद्रह बरस उलट जाते। मगर क़ुदरत के सामने राजाओं को भी हार माननी पड़ती है। लेकिन अखंड सुहागवती आशा का महातम अपार है, अन्यथा एक क्षण ठेलना भी असंभव हो जाता। आशा का मतलब ही जीवन है और जीवन का आसरा ही आशा है!

शुरू-शुरू में सप्ताह में, पंद्रह दिन, फिर दूसरे-तीसरे महीने, होली-दिवाली; फिर बरस-दर-बरस समाचार मिलते रहते। समय के चमत्कार का अंततः ऐसा ही सहज परिणाम होता है! उत्साह की हिलोरें कम होती रहती हैं। नरवरगढ़ का स्वामी राजकाज में व्यस्त हो गया। पूँगलगढ़ के दरबार में कामकाज का कोई अंत ही नहीं था। और रानी उमादे को मरवण की ममता के वशीभूत दिन निकलने और अस्त होने की भी सुधि नहीं थी। जब वह झमरक-झमरक घुटनों के बल चलने लगी तो माँ को यह महसूस होता कि समूची धरती, पेड़-पौधे और क़ुदरत इसी तरह घुटनों के बल चल रही हैं। नौ लाख सितारे और चाँद-सूरज भी धीरे-धीरे सरक रहे हैं। जब उसके गुलाबी अधरों से पहला अक्षर निकाला—माँऽऽऽ माँ, तब उसके अंतस् का आनंद हवा की गति से सर्वत्र घुल-मिल गया। जब वीर बहूटियों की तरह दोनों पाँवों में घुँघरुओं की छमाछम बजती तब उसके कानों में ऐसा महसूस होता, जैसे ठौर-ठौर राम जी की चिड़िया चहक रही हैं! घुँघराले बालों का स्याह मुकुट ऐसा लगता कि गुलाब के इर्द-गिर्द भँवरों का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

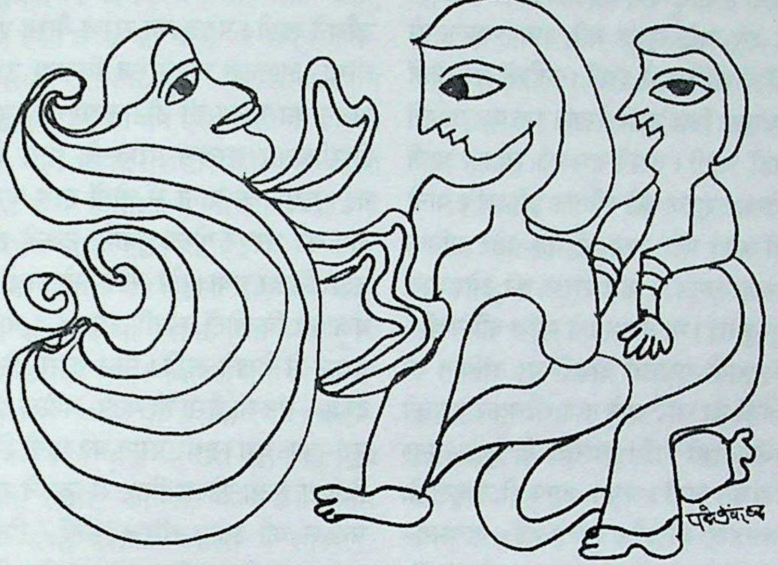

झुंड इकट्ठा हुआ हो! कभी-कभार रानी उमादे इस तरह ऊहापोह में घिर जाती कि भगवानं की भक्ति का महातम बड़ा है या माँ के मन की ममता का महातम बड़ा है? कहीं ममता का दूसरा नाम ही तो भक्ति नहीं है? पहले पूजा-पाठ के बिना पानी का घूँट ही गले नहीं उतरता था, अब किशन-भगवान की भक्ति का समय घटते-घटते एकदम ही समाप्त हो गया! मरवण की ममता के मारे समय ही नहीं मिलता था।

एक दिन राजा पिंगल ने अचरज से पूछा, ''जुकाम-बुख़ार में भी पूजा-पाठ का टकोरा कभी बंद नहीं होता था, सो आजकल उसकी रणकार भी सुनाई नहीं देती। ऐसी अनहोनी बात कैसे हो गई...?''

पति के मुँह से ऐसी बात सुनकर उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा। लेकिन दूसरे ही क्षण माकूल जवाब सूझा, ''पूजा-पाठ के ढर्रे बदलते रहें तो भक्ति का स्रोत सूखता नहीं! वरना स्रोत के अभाव में भक्ति सजीवन नहीं रहती...।''

''ऐसा गुरु तुम्हें कौन मिला?'' सब जानते-बूझते भी राजा रानी के मुँह से सुनना चाहता था।

''मरवण...मरवण...! दूसरा गुरु कहाँ खोजती!'' रानी ने निःसंकोच जवाब दिया। सच बताने में कैसा संकोच!

जब चंदन का गाडूला लेकर, उसकी कोख से ज़न्मी मरवण चानण-चौक में घूमर लेने लगी तो रानी को ऐसा भरम हुआ कि तैंतीस करोड़ देवी-देवता उसके आँगन में एकत्रित हो गए हैं। जब वह हिरणों की जोड़ी के साथ बाग़ में आई तो सुओं के क़बीले ने उसका अभिवंदन किया। कोयलों के कुटुंब ने आम की डालियों पर जमकर बधावा गाया। कहीं सचमुच क़ुदरत ही तो शिशु का स्वाँग लेकर प्रत्यक्ष प्रकट नहीं हो गई? धाय माँ पर पूर्ण विश्वास के बावजूद माँ के हिवड़े में उमंगें लहराने लगीं तो वह उस सपने का पीछा करती अजाने ही उसके पीछे चलने लगी। सपना भी कैसा अद्वितीय था कि मानो तीनों लोकों की बेजोड़ छवि बाग़ में एकत्रित हो गई हो! बाल-मन के जँचने की अपनी मौज! मरवण गाडूला लुढ़काती डगमग-डगमग पानी के पास आकर रुक गई। बरसात का पानी एक ठौर इकट्ठा होकर सोने-सा दमक रहा था। मरवण नज़र गड़ाकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निहारने लगी। जाने क्या सोचकर उसने ऊपर देखा। पर सर चढ़े सूरज की तप्त ज्वाला से उसकी आँखें चौंधियाने लगीं। आँखों पर दोनों हथेलियाँ धरकर फिर ऊपर देखा। इस बार आँखों में चौंध नहीं जागी। उसने दमकते शीतल पानी की ओर देखा। सूरज की शीतल प्रतिछवि पानी में तैर रही थी। एक बार माँ की ओर तनिक झाँककर ऊपर गगन में जड़े सूरज की ओर हाथ बढ़ाकर मुस्कुराई। मानो दमकते सूरज की नन्ही-सी फाँक उसके गुलाबी अधरों पर अंकित हो गई हो! थोड़ी देर बाद जाने क्या सोचकर उसकी मुस्कान अस्त हो गई। ललाट में कुछ-कुछ सलवटें खिंचने लगीं। अपने-आप ही गाडूले के सहारे राजमहल की ओर रवाना हुई—डगमग-डगमग। वह सोचने में इस क़दर डूबी थी कि उसने न तो माँ की ओर देखा और न धाय की ओर! अचानक पाँव कुछ धीमे पड़ने लगे। चुपचाप चानण-चौक में आकर रुक गई। आँखों पर हथेली का छज्जा बनाकर ऊपर देखने लगी। सूरज भी उसकी ओर देख रहा था। धाय और रानी उमादे दबे पाँव उसका पीछा करती ठहर गईं। मरवण ने मुड़कर देखा—माँ से नज़र मिलते ही वह खिलखिलाकर हँसने लगी, जैसे कोई निराली बात सूझी हो। फिर गाडूला छोड़कर वह खड़ी रही। अपने-आप ही एक-एक पाँव आगे धरती हुई, उनके सामने बढ़ने लगी। माँ और धाय की ख़ुशी का पार नहीं रहा। जैसे वे स्वयं दूसरी बार चलना सीख रही हों। यदि गगन का चाँद इस तरह चलने लगे तो कैसा जँचे!

मरवण धाय का हाथ पकड़कर सीधी रसोई में पहुँची। पछीत पर रखी ताँबे की परात की ओर हाथ बढ़ाते हुए उसे नीचे उतारने का इशारा किया। मरवण के कहे अनुसार धाय ने चौक के बीच परात रख दी। किनारों तक पानी भरा ही था कि मरवण की मंशा भाँप गई। ऊपर दमकता सूरज परात के पानी में झलमल-झलमल तैरने लगा। मरवण बारी-बारी से दोनों का तप-तेज़ जाँचने लगी। परात का सूरज कैसा शीतल और धीमा, आकाश का सूरज कितना उत्तप्त, मानो अगन का गोला ही हो! तत्पश्चात् कुछ गहराई से सोचकर मरवण परात के पास आकर बैठ गई। परात के पानी में दोनों हाथ घुमाने लगी। ताप का भरपूर गोला टुकड़े-टुकड़े होकर चारों तरफ़ बिखर गया। गोरे-गोरे नन्हे हाथों से तालियाँ बजाकर किलोलें करती-सी माँ व धाय की ओर गुमान से देखने लगी। फिर दूसरे ही क्षण ऊपर देखा—वह तो वैसा ही गोल-मटोल और साबुत। पूरा-का-पूरा। इधर परात का पानी थिर होने पर बिखरा हुआ गोला फिर से जुड़ने लगा। किंतु मरवण को इतना धीरज कहाँ? फिर पानी में हाथ घुमा दिया। फिर परात की पक्रिमा करने लगी तो काफ़ी देर तक रुकी ही नहीं। जब सूरज पूरा-का-पूरा जुड़कर अपने-आप गोला बनकर दमकने लगा और ठंडी नज़र उठाकर मरवण की ओर देखकर मुस्कुराने लगा तो मरवण ज़ोर से ताली बजाकर कहने लगी, "माँ, आज से सूरज मेरा दोस्त बन गया। जब मन होगा मेरे साथ खेलने के लिए नीचे बुला लूँगी!"

धाय और माँ दोनों ही हैरान कि ऐसी निराली बात मरवण के मन में कैसे उपजी? धाय रानी माँ से बोली, "अब तो मेरी बात का आपको ज़रूर विश्वास होने लगेगा कि मरवण ने इतनी देर से बोलना और चलना क्यों शुरू किया? दिमाग़ में कहीं कुछ क़सर तो नहीं रह गई? और मैं चुनौती के भाव से हमेशा कह रही थी कि जो शिशु जितना ही अधिक बुद्धिमान और प्रतिभाशाली होगा वह उतनी ही देरी से बोलना सीखेगा। अभी क्या हुआ है, समय आने पर पता चलेगा कि मरवण जैसी बच्ची करोड़ों में एक पैदा होती है। इसकी मंद-मंद मुस्कान में तो जैसे गीता का समूचा ज्ञान झलमला रहा हो। देखने वाली आँखें चाहिए बस!"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रानी उमादे ने अपने मन की बात कही, ''दुनिया में ऐसी कौन-सी माँ है जो अपने जाये-जन्मे को सबसे अधिक सुंदर और समझदार न मानती हो। यदि माँ का मन ऐसा न हो तो उसका नाम माँ ही नहीं पड़ता। संसार की सभी माँओं का मन एक जैसा ही होता है, अपना बच्चा उन्हें सबसे प्यारा व लाड़ला लगता है।''

मरवण के साथियों की मंडली धीरे-धीरे बढ़ने लगी। दूज का चाँद भी उसका मित्र और पूनम का चाँद भी उसका मीत! नवलख तारों के साथ-साथ अनगिनत जुगनू भी उसके मित्र। तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूल भी उसे उतने ही प्रिय लगते। तोते, तीतर, कोयलें, कौवे, मोर और फाखताएँ—सभी उसकी मंडली में शामिल। बरखा की बूँद-बूँद से उसका वैसा ही प्यार। चाँदनी की किरण से वैसा ही स्नेह।

मरवण को पाँचवाँ बरस उतरने लगा तो राजा-रानी विचार करने लगे कि अब मरवण की उम्र विद्या सीखने लायक़ हो गई है सो राज्य के पंडित-विद्वानों से चुनकर सर्वोत्तम गुरु के हाथों इसे सौंप दें। जन्म देने वाले माँ-बाप तो संतान की काया को पालते-पोसते हैं। गुरु शिष्य का मन, मस्तिष्क और आत्मा सँवारता है। गुरु का महातम माँ-बाप से कहीं बढ़कर होता है।

लेकिन मरवण के लिए तो जैसे सारी बातें पहले से ही सोची हुई हों। गुरु जी की चर्चा शुरू होते ही उसने मुस्कुराते हुए कहा, ''इतनी जल्दी भी क्या है? अभी तो प्रकृति ही मेरे लिए सच्ची गुरु है। उसकी गोद में जब तक पूरी खेल न लूँ, तब तक मेरा मन कहीं और नहीं लग सकता। धाय माँ की अप्सराओं, राजा-रानियों, राजकुँअर-राजकुँअरियों, सेठ-साहूकारों, चोर-डकैतों, भूत-पलीतों और डायन-चुड़ैलों से फिलहाल पूरी पहचान ही कहाँ हुई? आखर-बारहखड़ी से पहले पाताल लोक, इंद्रलोक एवं नागलोक की जानकारी ज़रूरी है। यह धाय माँ तो सब जगह परिक्रमा दे चुकी है। पहले इसकी बातें तो जी-भरकर सुन लूँ। विद्वान-पंडितों से पहले हमजोली सहेलियों की मंडली में ज़्यादा ज्ञान मिलेगा। अब उनके बिना मेरा कहीं भी जी नहीं लगता।''

फिर धाय माँ की ओर देखकर कहने लगी, ''सच बताना, खापरिया चोर से तो रात को ही मिलना हुआ। दुनिया का कोई गुरु उसकी अकल तक नहीं पहुँच सकता...!''

राजा, रानी और धाय-माँ तीनों को ही अत्यधिक अचरज हुआ कि ऐसी गहरी बातें उसके मन में कहाँ सहेजकर रखी हुई थीं, किसी को भी भनक तक नहीं पड़ी। आज उससे चर्चा करने पर उसके बाल अधरों से ऐसा अमृत बरसा, जिसकी सपने में भी कल्पना नहीं थी। पिछला जन्म हो-न-हो किसी पूज्यवान ऋषि-मुनि का ही होना चाहिए, इसमें कोई संदेह नहीं। माँ-बाप को अपने बच्चों की बहुत देर से पहचान होती है!

न समय के चमत्कार का पार था और न क़ुदरत के करिश्मे का! देखते-देखते मरवण कब आठ बरस की हो गई, माँ को पता तक नहीं चला। रोज़ देखने से तो तिल जितनी भी बढ़ती नज़र ही कहाँ आई...तो क्या आठ बरस एकदम ही उलट पड़े? कोख के करिश्मे से जनमी बेटी को अब माँ के साथ की बजाय सहेलियों की संगत कहीं ज़्यादा सुहानी लगने लगी! उनकी संगत का लगाव ही ऐसा है कि खाने-पीने तक की सुधि नहीं रहती। जब सहेलियों की मंडली की तुलना में माँ का साथ अखरने लगा तो रानी से कुछ भी छिपा नहीं रहा। एकबारगी थोड़ी देर के लिए माँ का मन उचट अवश्य गया। फिर अपने-आप ही समझ ठिकाने आ गई। क़ुदरत की तरह उमादे की समझ का भी कोई पार नहीं था। माँ के जीवन का आधार ही सबसे अलग होता है। उसका मन अधिकांशतया संपत्ति,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिंहासन और माया से तुष्ट नहीं होता। या तो ममता का आधार जुड़ने पर या भक्ति का केंद्र जुटने पर। ममता का पलड़ा हल्का पड़ने पर पूजा-पाठ का स्रोत फिर उमगने लगा। कृष्ण भगवान की शरण, फिर से टकोरे की टनकार सुनाई पड़ी तो राजा को अधिक अचरज नहीं हुआ। रंग-महल की पीलजोतों के बढ़ते उजाले में राजा की शंका जगमगाई तो उससे पूछे बिना नहीं रहा गया, ''पूजा-पाठ और धूप-ध्यान की ख़ातिर फिर से अचानक भक्ति-भाव कब जागा... ?''

एकबारगी तो रानी भी असमंजस में पड़ गई। कुछ भी जवाब नहीं सूझा, लेकिन सिर्फ़ निमिष भर के लिए। फिर कहने लगी, ''जब से मरवण को अपनी समझ पर भरोसा होने लगा और मेरी बजाय सहेलियों की संगत उसे अच्छी लगने लगी, तब से। उसकी समझ का तो कहीं ओर-छोर ही नज़र नहीं आता। तब मैंने भी अपनी खोई हुई राह फिर से पा ली।''

राजा को पूरा संतोष नहीं हुआ। अपनी गुणवती रानी से राजा को अधिक लगाव था। उस पर पूरा विश्वास था। मन की रज़ामंदी न होते हुए भी पूछा, ''मरवण के प्रति अथाह ममता को भुलाकर, पूजापाठ में पहले की तरह तुम्हारा मन रम तो जाएगा... ?''

सवाल जितना आसान था, उसका जवाब उतना सरल नहीं था। एक गहरा निःश्वास खींचकर कहा, ''जीने का आधार जुटाने के लिए ज्यों-त्यों मन तो रमाना ही पड़ता है...! मगर अबोला अदीठ स्नेह, प्रत्यक्ष रू-ब-रू नेह की बजाय अधिक भारी होता है!''

रानी की बात एकदम सही थी, फिर भी राजा को चुहल सूझी, ''अब मेरे लिए तुम्हारे मन में अधिक लगाव नहीं है। पहले तो गढ़ में रहते हुए भी थोड़ा दूर होने पर तुम्हारी आँखों का पानी कभी सूखता ही नहीं था, पर अब वैसी बात नहीं रही।''

रानी को जैसे किसी ततैये ने डंक मारा हो। राजा की आँखों में झाँका तो उसकी अपनी आँखें छलक उठीं। न रानी को और न राजा को यह समझ में आया कि वे आँसू मरवण के लिए थे या राजा के लिए या कि ख़ुद अपने लिए! भारी गले से बोली, ''ऐसी नासमझ मैं कभी नहीं थी कि अपने वियोग की ख़ातिर ऐसी ओछी बातें सोचती रहूँ। समय की मनमानी पर किसी का ज़ोर नहीं चलता। क़ुदरत की लीला क़ुदरत ही जाने!'' राजा ने फिर विवाद नहीं किया।

मरवण के लिए सहेलियों की मंडली अपनी देह से कभी जुदा महसूस नहीं होती थी। आँखें, कान, नाक, हाथ-पाँव और उँगलियों की तरह सभी सहेलियाँ उसकी गोरी काया से जुड़ी हुई थीं। क्या तो दीवान की दोनों बेटियाँ, सेनापति की बेटियाँ, ख़ज़ाँची की बेटी, नगर-सेठ की बेटी, धाय-माँ की बेटी, राज-खवास की बेटी और माली की बेटी इत्यादि। मात्र बरस-सवा-बरस की छोटी-बड़ी। दीवान की बड़ी बिटिया उससे दस महीने बड़ी थी। सभी सहेलियाँ मरवण का लिहाज़-आदर रखती थीं। लेकिन मरवण के लिए उस विभेद का कुछ भी अर्थ नहीं था। वह उन्हें समझाती कि सभी बच्चे अपनी मर्ज़ी के मालिक होते हैं। वे किसी को भी छोटा-बड़ा नहीं मानते। मगर सहेलियाँ कुछ समझना ही नहीं चाहती थीं, तब क्यों समझ में आता? आख़िर उसे ही हार माननी पड़ी। लेकिन अपने मन में वह किसी से भी स्वयं को बड़ा नहीं समझती थी, वे न मानें तो उनकी मर्ज़ी।

झुरनी, घूमर, आँधल-घोटा और कबड्डी में कौन छोटा, कौन बड़ा! पर कौशल, चतुराई और दाँव-पेच अपने-अपने। इन सब खेलों में राज-खवास, धाय-माँ और माली की बेटियाँ सबसे तेज़ और अव्वल रहती थीं। इसलिए मरवण उनका मान रखती, उन्हें बड़ा मानती लेकिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भीतर-ही-भीतर छटपटाती कि वह उनसे जीते, एक बार तो जीते। मगर उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। एक बार राज-सेठ की बिटिया अपनी हवेली से सुरंगी चौपड़, हाथी दाँत की गोटियाँ, शतरंज और चंदन की मोहरें लेकर आई। तीन दिन तक मरवण ने उसके साथ खेलते हुए सारी चालें और दाँव-पेंच अपने मन में जमाए। फिर तो मरवण ने एक बार भी किसी सहेली को जीतने नहीं दिया।

रानी उमादे अपने नित्य-नियम में भले ही व्यस्त हों, पर बच्चों के खान-पान का पूरा ध्यान रखती थीं। तीन दासियाँ आठों पहर कलेवा, खाना, ब्यालू के निमित्त सपने में भी चूक नहीं करती थीं। और न मरवण और उसकी सहेलियाँ उनका कहा टालतीं। फिर भी खाने-पीने की बजाय खेलने का उत्साह बहुत अधिक था। बचपन की उम्र ऐसी ही होती है।

खेल-कूद में भी समय बीतता है, सोने पर भी वह चलता रहता है और जागने पर भी वह रुकता नहीं है। विश्राम समय के भाग्य में ही नहीं लिखा! उसकी गति-मति में न क़ुदरत का कोई दख़ल और न ईश्वर-परमेश्वर का ही। वह तो पूर्णतया स्वतंत्र और इकरंगा है! क़ुदरत की गोद में रमते-खेलते मरवण दस बरस की हो गई। एक बार संयोग से मरवण सपने में किसी सुनहरी पोथी के पन्ने उलटने-पलटने लगी। न तो एक भी अक्षर उघड़ा और न एक ही चित्र ने अपना रंग खोला। सवेरे आँखें मलती-मलती वह माँ के पास आई। गंभीर स्वर में कहने लगी, ''माँ, नींद में सोते-सोते मैंने एक सुनहरी-पोथी के पन्ने पलटे। न तो एक अक्षर भी उघड़ा और न एक चित्र ही मुझसे खुला। मैं आज से ही पढ़ना चाहती हूँ। सीखना-समझना चाहती हूँ। मेरे गुरु जी को जो भी हिदायतें देनी हैं, दे देना।''

रानी उमादे को इसी अमोलक घड़ी का इंतज़ार था। मुँह से तो बोलकर कुछ भी नहीं कहा किंतु नीचे झुककर मरवण के दमकते ललाट पर दो चुंबन जड़ दिए।

समय की गति, उसकी मनमानी और उसकी इकडंकी चाल सारे संसार में एक-सी रहती है। न किसी का लिहाज़, न किसी के प्रति रोष और न किसी भी तरह का पक्षपात। उधर नरवरगढ़ में समय, हवा, धूप और चाँदनी को देखते-निहारते ढोला की क़द-काठी जाने कब बढ़ गई और जाने वह कब अतिशय सुंदर, स्वस्थ और भरपूर युवक बन गया, तो राजा-रानी के आश्चर्य व आनंद का पार नहीं रहा! फिर भी उसकी बजाय, मरवण के साथ उसके ब्याह की आतुरता और हर्ष-उन्माद कहीं बसा हुआ था। वे खुली आँखों से भी वही सपना देखते और मुँदी आँखों से वही सपना देखते कि समूची दुनिया में न तो ऐसा लाजवाब ब्याह हुआ और न आगे कभी होगा। देखने वाले लोग-बाग़ जब तक ज़िंदा रहेंगे, चाहने पर भी भूल नहीं सकेंगे। लेकिन एकाएक लाड़ला राजकुँअर ढोला तो अपनी मर्ज़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का मालिक होने पर सारी दुनिया को ही भुला बैठा था। उसे न तो सूरज के उगने का ध्यान था और न अस्त होने का। वह तो यही समझ रहा था कि सूरज तो उसकी पलकों पर ही उगता है, तपता है और अस्त होता है! उसके सपनों की चाह के अनुसार ही चंद्रमा अपनी सोलह कलाएँ रचता है! सोलहवाँ बरस क्या उतरा, जैसे सोलह चाँद और सोलह सूरज उसकी आँखों में जगमगाने लगे, जिनकी चकाचौंध में उसे राजा-रानी के सपनों की चर्चा सुनने का भी समय नहीं मिला। जाँझरके दो घड़ी रात रहते यार-दोस्तों के साथ क़ुदरत की विभिन्न छवियाँ निहारने के लिए घोड़े दौड़ाता ही रहता। वापस राजमहल लौटने की कोई पाबंदी नहीं थी। कभी-कभार तो आधी रात भी ढल जाती। पाँचों मित्रों का वश चलता तो वे आकाश-गंगा में घोड़े झोंक देते! चंद्रमा के घेरे में घोड़ों को घूमर नचवाते। जहाँ भी मन करता पेट का भाड़ा चुकाकर बेफ़िक्र हो जाते! नरवरगढ़ के राज-घराने की भनक मिलते ही सेठ-साहूकारों और अमीर-उमरावों के बीच सत्कार करने की होड़ मच जाती। नए-नए पर्वत, नई-नई नदियाँ, भाँति-भाँति के गाछ-बिरछ। भाँति-भाँति के पंछी-जानवर। जहाँ-कहीं भी पहुँचते, मनुष्यों की बजाय क़ुदरत उनकी मनुहार करती। बलैयाँ लेती। राजा-रानी ने कुलच्छनों की, दुर्व्यसनों की या बदफैली की सुगबुगाहट नहीं सुनी तो निश्चिंत हो गए। पोकर जी के पवित्र धाम बचपन के विवाह की मांगलिक बात आज कहें, कल कहें का सुनहरा सपना नवलख तारों के झूले पर झूलता रहा, टलता रहा और वे बेजोड़ विवाह की अमिट लालसा में रात-दिन बदलते रहे।

कहावत की सच्चाई में कभी चूक नहीं होती कि बाड़-काँटों के भी कान होते हैं, फिर अनंत, असीम और अविराम हवा से क्या बात छिपी रहती! मालव देश की राजकुँअरी मालवणी के अपूर्व सौंदर्य की सौरभ हवा में इस तरह खुली हुई थी कि साल्हकुँअर के एक राजपूत मित्र ने उस रूप की भनक सुन ली। मित्र तो मित्र ही होता है, उनके बीच कैसा दुराव! आख़िर राजकुँअर के कान में मंत्र फूँककर वह आश्वस्त हुआ। उस मनचाहे सपने की तलाश में नरवरगढ़ के घोड़े मालव देश की राह धूल उड़ाते हुए अप्रतिहत वेग से आगे बढ़ने लगे। घोड़ों की अनवरत टापों के आगे कैसी दूरी! गाछ-बिरछ सामने दौड़ते हुए बलैयाँ लेने के लिए आतुर रहते।

मालवगढ़ के अनुपम बाग़ में ही पड़ाव डाला। नहाए-धोए। इत्र-फुलेल की महक चारों तरफ़ फैल गई। सहेलियों की मंडली के साथ मालवणी भी झूलने आई। जब हवा में फैली परिचित सुगंध मालवणी की देह में घुली तो वह आश्चर्यचकित रह गई। उससे भी बेहतर मिट्टी का अप्रतिम इत्र किसके पास है? मालवणी के बेजोड़ रूप की झलक पाने की ख़ातिर उजाले के स्वामी सूरज को भी ठेठ ऊपर तक चढ़ना पड़ा! गहर-घुमेर बरगद की सघन हरियाली बेधकर शायद एकाध किरण मुश्किल से मालवणी की आभा छू सकी!

मालवणी की सहेलियों ने ढोला के साथियों से पूछताछ की तो उन्होंने कुछ भी नहीं छिपाया। मन की बात होंठों पर आई कि राजकुँअरी के रूप की सौरभ राजकुँअर के अंतस् में घुसी तो उनसे क्षण भर के लिए भी धीरज नहीं रखा गया। यदि एक बार भी राजकुँअरी के रूप की झलक मिल जाए तो यहाँ आना सार्थक हो जाए। सहेलियाँ कुँअरी के पास पहुँची और ख़ुशख़बरी सुनाई कि उसकी झलक मिलने के बाद विवाह करना लाजिमी है। एक घड़ी की भी ढील नहीं चल सकती। ऐसा ही उन्होंने प्रण किया। बारात के नाम पर ये चार मित्र ही पर्याप्त हैं। ऐसी बात सुनते ही साल्हकुँअर का मुँह उतर गया। नरवरगढ़ के राजकुँअर के ब्याह में सिर्फ़ चार बाराती!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजा-रानी किसी भी सूरत में मना तो नहीं करेंगे, लेकिन उनकी अनुमति के बिना कैसे हामी भरे! हाथी-घोड़े, ढोल-नगाड़ों के माहौल में शादी होनी चाहिए। सहेलियों ने जो भी बात सुनी, राजकुँअरी को बता दी। वे सलाह-मशविरा करके वापस लौटीं। स्पष्ट कहा कि ब्याह होना है तो आज ही होगा, अन्यथा वे अपनी राह पकड़ें। जल्दी रवाना होंगे तो जल्दी पहुँचेंगे। राजकुँअरी किसी भी शर्त पर अपना प्रण नहीं तोड़ेंगी।

साल्हकुँअर थोड़ी देर तक चुपचाप सोचता रहा। सहेलियाँ जवाब की ख़ातिर उसकी ओर एकटक देखने लगीं तो उसको मजबूर होकर हामी भरनी पड़ी। तब एक चंचल सहेली ने मसखरी के भाव से कहा, ''ऐसी बेइंतहा ख़ूबसूरत राजकुँअरी से ब्याह की हामी भरते चेहरे पर दुविधा क्यों झलकी? बड़े-बड़े राजकुँअरों की पार नहीं और आपकी मुराद राह चलते ही पूरी हो गई। पिछले जन्म की तपस्या का फल ही समझिए! आप सोच-विचार तनिक भी नहीं कीजिएगा। राजकुँअरी के विवाह में नव-लख तारों की बारात उतरेगी! आप भी कम सुंदर नहीं हैं। ऐसी अनुपम जोड़ी जँचेगी कि चाँद-सूरज तक को थुथकी डालनी पड़ेगी।'' विधाता की मंशा के सामने भला कौन टिक सका है!

राजा-रानी ने ढोला का रूप निहारा तो उनके हर्ष-उछाव की सीमा नहीं रही। यह तो सचमुच भगवान के द्वारा भेजा हुआ ही वर मिला। ज्योतिषी ने जन्म की वेला ही राजकुँअरी के नक्षत्र शानदार बताए थे। अब पुख़्ता तौर पर तय हो गया कि बेटी आप-करमी होती है! उसी साँझ गोधूलि वेला में दोनों का हथलेवा जुड़ गया। उम्र भर के लिए गठबंधन हो गया। राजा रानी और राज के दरबारियों ने सोचा कि ईश्वर का भेजा हुआ वर है, उसके सामने बड़प्पन का क्या दिखावा करें! उसकी छाया के सामने नवाब-बादशाह तक भिखारी लगते हैं। फिर मालव राज्य की वैसी

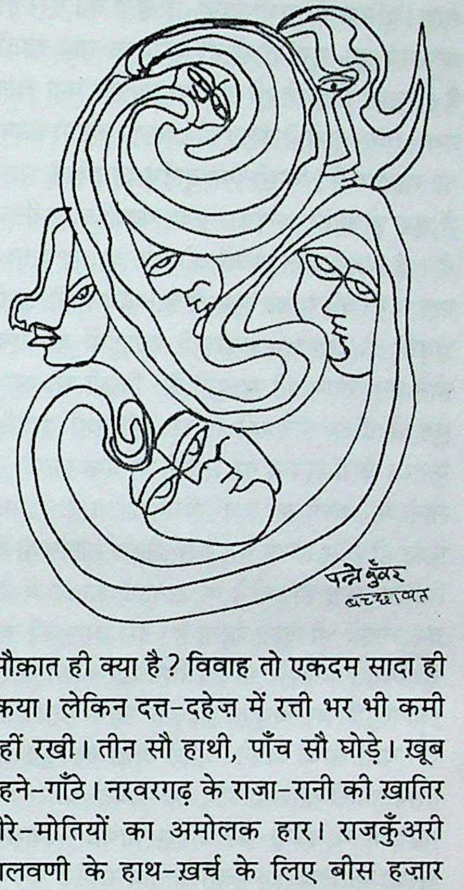

औक़ात ही क्या है? विवाह तो एकदम सादा ही किया। लेकिन दत्त-दहेज़ में रत्ती भर भी कमी नहीं रखी। तीन सौ हाथी, पाँच सौ घोड़े। ख़ूब गहने-गाँठे। नरवरगढ़ के राजा-रानी की ख़ातिर हीरे-मोतियों का अमोलक हार। राजकुँअरी मालवणी के हाथ-ख़र्च के लिए बीस हज़ार मोहरें। चारों बारातियों के गलों में राजा ने अपने हाथ से नव-लखे हार पहनाए।

दूल्हे-दुल्हन के संगाती और सहेलियों के मुँह से सुहागरात का सिर्फ़ नाम-ही-नाम सुना था। वैसी कल्पना भी नहीं की थी। यदि सचमुच सुहागरात ऐसी ही होती है तो उम्र भर तक सुहागरात ही मनाएँ! एक घड़ी तो बहुत दूर की बात, सुहागरात का एक क्षण भी व्यर्थ गँवाए सो महामूर्ख! पीलजोतों के मंद उजाले और घी की भीनी-भीनी ख़ुशबू, सेज के सुरंगे फूलों के बीच वर-वधू ने एक-दूसरे की आभा-युक्त सूरत देखी तो आँखें चौंधिया गईं। गहरी नींद में कोई सपना तो नहीं देख रहे हैं! विधाता ने ऐसे सौंदर्य की कल्पना ही कैसे की! गढ़ा तो गढ़ा ही किस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तरह ! दुनिया के सभी दूल्हे-दुल्हनों को ऐसे ही रूप की युग-युगांतर से ही अविरल चाह रहती है। प्रत्यक्ष निहारते ही इस सच्चाई का पता चल गया ! एक-दूसरे के लिए ही अलग-अलग काया का महातम है ! किसी एक दुर्लभ मांगलिक घड़ी में एक होना ही अलग-अलग काया का अंतिम श्रेय है ! जन्मजात बच्चों को जो क़ुदरत स्तन-पान करने की युक्ति सुझाती है। यौवन की देहरी चढ़ती दो भिन्न कसमसाती इकाईयों को एक होने का उपाय भी सुझाती है ! किसी भी अन्य गुरु से दीक्षा लेने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती ! क़ुदरत जैसा अनन्य गुरु मिलने पर क्या खामी... ! मानो मालवणी का रूप-यौवन ढोला के निमित्त पका हो और ढोला का रूप यौवन मालवणी के निमित्त ढला हो ! लेने के अनहद आनंद में देने का आनंद भी घुला रहता है ! इस तरह की चार सुहागरातें मनाकर पाँचवे दिन ढोला की बारात रवाना हुई। वर-वधू तो चंदन के रथ में विराजमान थे। चारों साथी अपने-अपने घोड़ों पर। इक्कीस दहेज़ वाली दासियाँ सादे रथ में बैठी थीं। ग्यारह गाड़ियों में दहेज़ की तमाम सामग्री ! जिसकी सुरक्षा के लिए इक्यावन सैनिक मुस्तैद थे।

अत्यधिक आनंद-उत्साह से वर-वधू गढ़ में आए। लेकिन विवाह के अप्रत्याशित समाचार सुनते ही राजा-रानी के अंतस् में ऐसी ज्वाला धधकी, मानो ख़ुद के मरने की ख़बर सुनी हो ! मालवणी रानी के चरणों में धोक देने झुकी तो रानी दो क़दम पीछे खिसक गई। फिर पीठ फिराकर सीधी अपने महल में पहुँची। खड़ी रहने की क्षमता चूक गई तो वहीं नीचे बैठ गई। राजा के लिए तो जैसे उसके माँ-बाप आज ही मरे हों। मरवण जैसी बहू की आशा में क्या-क्या सपने सँजोए थे ! एक साथ ही ध्वस्त हो गए ! पहल करके जिस मुँह से ढोला के लिए जिस उत्साह से मरवण की माँग की, अब वही बेहया-निर्लज्ज चेहरा किसी को भी कैसे दिखाएँगे ! राजा पिंगल, रानी उमादे और मरवण की धाय-माँ को सूरत दिखाना तो दूर रहा, स्वयं अपने-आप ही आरसी में देख सकने की हिम्मत भी नहीं बची ! साल्हकुँअर के बचपन में कई बार उसे ब्याह की बात विस्तारपूर्वक बताने की प्रबल इच्छा हुई, पर उसे तो समझ लायक़ उम्र होने पर उतना समय ही कहाँ मिला ! कब गढ़ से घोड़ों पर सवार होकर निकलता और कब वापस लौटता, चार साथियों के अलावा किसी को सुराग़ नहीं मिलता। आजकल, आजकल सोचते-विचारते आख़िर यह कुघड़ी आई ! मालवणी के उघड़े मुँह की झलक मिलते ही रानी ने अदेर पहचान कर ली कि बहू छत्तीस लक्षणों वाली है ! मरवण की बाल्य-सूरत जितनी भोली और निर्मल दिखती थी, मालवणी उतनी ही चालाक और निर्मम है !

जिस तरह चोर की माँ मटकी में मुँह डालकर चुपके-चुपके रोती है, ठीक वैसी ही दुर्गति नरवरगढ़ के राजा-रानी की हुई। अपने सिवाय और किसे दोष दें ! किससे शिकायत करें ! भाग्य से या भगवान से ? ऐसे दुर्योग की थोड़ी-सी भी भनक मिल जाती तो ढोला को पुष्कर से लौटने पर ही ब्याह की बात ब्योरेवार बता देते तो उस पर लौकिक मर्यादा का अंकुश अवश्य रहता। लेकिन विधाता को तो सब-कुछ पता था, तब उसने किस जन्म का बदला लिया ? तिस पर कैसी बुरी मसखरी हुई कि एक दिन पहले ही पूँगलगढ़ से कुमकुम के छींटे लगा काग़ज़ आया, "मरवण अब ससुराल सिधाने के योग्य हो गई है। आपको जानकर अत्यधिक हर्ष होगा कि पोकर जी के पावन धाम वाली बाल-बनड़ी (दुल्हन) के रूप, ज्ञान और उसकी समझ का पार नहीं है ! इस तरह के धीरज की अधिकारिणी और बुद्धिमान राजकुँअरी सूरज के खोजने पर भी नहीं मिल सकती ! हम दोनों तो किसी भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूरत में उसके पासंग बराबर भी नहीं हैं! मांगलिक मुहूर्त बँचवाकर जितनी जल्दी यहाँ पधारने की मेहर-मया हो जाए तो आप जैसे उमरावों की हज़ार-हज़ार बलैयाँ लें! आपके पधारने पर हमारा मनवांछित मान बढ़ेगा। इसलिए आपके स्वागत की पल-पल प्रतीक्षा रहेगी। वहीं सोने का सूरज उगे और आपके चरणों की रज पूँगलगढ़ के चौक में पहुँचे!''

राजा के चेहरे पर दमकती आभा एकदम बुझ गई, मानो चाँद को ग्रहण लगा हो! मग़ज़ के भीतर पसीना-सा होने लगा। दूसरा कुछ भी उपाय नहीं सूझा तो पत्रवाहक गड़रिए और खवास की आवभगत के लिए हिदायतें देकर वह रानी के महल की ओर रवाना हुआ। नरवरगढ़ के राजा की ऐसी संज्ञाविहीन दशा देखकर उनके मन में दया तो क्या उमगती, उनकी सात-पीढ़ियों की ऐसी औक़ात नहीं थी, पर उन दोनों के दुख, पछतावे और अचरज का पार नहीं रहा। उनके निरीह हृदय में ऐसी धधकती पीड़ा जैसा पहले कभी नहीं हुआ! वे समझते थे कि राजा-महाराजाओं से बढ़कर सुखी दुनिया में और कोई नहीं है। आज की दुर्दशा का आभास होने पर उनके अवचेतन में तनिक संतोष हुआ कि ऐसे मजबूर तो वे कभी नहीं हुए! दोनों मन ही मन दुखी होते रहे। पर उस दुख को दर्शाने योग्य वाणी नहीं थी! खवास गड़रिए की तरफ़ बेचारगी से देखने लगा और देवासी खवास की ओर नज़र गड़ाकर ताकने लगा। आज अभी-अभी उनकी आँखों से वाणी छलकने लगी थी। आँखों से बोलने के निमित्त पहली बार काम पड़ा था। सौ तालू और सौ जिह्वाएँ भी उस अनहद वाणी का मुक़ाबला नहीं कर सकतीं! लेकिन पूँगलगढ़ पहुँचने पर तो कैसी भी व्याख्या करना उनके लिए संभव नहीं था! राजा पिंगल और रानी उमादे ने उन पर कितना भरोसा किया था! अब उन्हें मुँह बताए जैसी हिम्मत ही नहीं बची। दोनों राजा-रानी मरवण को ससुराल विदा करने के लिए आनंद उछाह में चाँद के आसपास पहुँच चुके हैं, वहाँ से गिरने पर उनका क्या हाल होगा! और इस अशुभ ख़बर का सदमा मरवण क्या झेल सकेगी? यों ऊपर से दिखने में राजा-रानी की तुलना में वह बेहद बुद्धिमान है, धीरज की अधिकारिणी है, ज्ञान की प्रत्यक्ष अप्सरा है। उसे समझने के योग्य राज दरबार में कोई विद्वान या पंडित नहीं है। पूरा विश्वास है कि वह कुछ पूछेगी ही नहीं। यदि पूछ लिया तो उसका जवाब देवों के देव महादेव जी से भी दे सकना शायद ही संभव हो!

राजा जी ने रवाना होते समय उनकी ख़ातिरदारी के लिए कितनी हिदायतें दी थीं। अपने दुख का कुछ भी ख़याल नहीं रखकर उनका अधिक ध्यान रखा था। हवा में साँस तो लेना ही पड़ता है, पर अन्य ख़ातिरदारी के लिए सपने में भी इच्छा कर लें तो उन्हें धिक्कार है! पानी की बूँद भी क्या गले उतर जाए!

उधर नरवरगढ़ के राजा का रानी के महल में जाना और भी मुश्किल हो गया, मानो सौ योजन की दूरी हो! समय का उन्हें तनिक भी अनुमान नहीं रहा कि क्षण बीता या घड़ियाँ बीतीं! पहले रानी की सूरत देखने पर कितना आनंद मिलता था, पर आज उसके चहरे की उदासी देखकर उसके दुख का पार नहीं रहा। उसके दाहिने हाथ में पूँगलगढ़ के राजा का पत्र था, जिस पर कुमकुम के छींटे लगे हुए थे। रानी की मरजीदान डावड़ी ने समाचार दे दिए थे। बिना बाँचे भी काग़ज़ का सार उससे छिपा नहीं रहा। रानी की आँखों में अचानक बिजली कौंधी...यदि इस तरह दोनों ही चिंता में डूब गए तो सब मामला चौपट हो जाएगा। राजा जी को कुछ हो गया तो किसी से कोई गरज नहीं सरेगी, चाहे हनुमान जी हों, चाहें राम जी हों या भगवान ही क्यों न हों। यदि दोनों ही धैर्यपूर्वक बात सँभालें तो मामला सुधर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकता है। रानी के मन में मानो कोई अदीठ जोश घुल गया हो। पलंग से उठकर धीरज के साथ आगे बढ़ी। मेंहदी लगा हाथ आगे बढ़ाया तो संज्ञाविहीन राजा में इतनी भी शक्ति नहीं थी कि रानी के हाथ में काग़ज़ सौंप दे। समाचार तो काग़ज़ की बजाय राजा के चेहरे पर ज़्यादा स्पष्ट थे। फिर भी राजा का मन रखने के लिए काग़ज़ के अक्षरों पर नज़र फिराने लगी। केवल भाँड ही स्वाँग नहीं लाते, बड़े-बड़े उमरावों को भी स्वाँग लाना पड़ता है। काग़ज़ पढ़ने के बहाने रानी को यथायोग्य समय मिल गया तो उसने सब बातों पर अच्छी तरह विचार कर लिया। राजा की ओर मुँह करके आश्वस्त स्वर में कहने लगी, ''आज जैसा घुप्प अँधेरा कल नहीं रहेगा। धीरे-धीरे अपने-आप छँट जाएगा। ढोला से अजाने भूल हो गई सो हो गई। मेरा मन कहता है कि पोकर जी के पावन धाम में किया हुआ संबंध व्यर्थ नहीं जाएगा। एक बार जैसी-तैसी झलक मिली, पता चल गया कि बहू बेहद चालाक और धूर्त है। आसानी से मानने वाली नहीं है। सुना है कि मरवण बहुत समझदार है, गंभीर व धीमे स्वभाव की है। मौक़ा मिलने पर सब सँभाल लेगी...।''

''पर वैसा मौक़ा राम जाने आए न आए।'' राजा ने अपने मन की शंका बताई। रानी की आशा के बल पर वे अपने-आपको सुदृढ़ करना चाहते थे। और राजा को समझाने के बहाने रानी स्वयं भी समझना चाह रही थी। मनुष्य के मन की दशा भी जाने कितनी तरह की होती है। रानी ने फ़ौलादी लहजे में आश्वस्त करते हुए कहा, ''आएगा, वैसा मौक़ा भी आएगा। सब दिन एक जैसे नहीं रहते। मेरे अपने दूध का मुझे पूरा भरोसा है। लेकिन अभी ढोला रूप के मद में सराबोर है। पहले यह खुमारी निथर जाए, तब तक धीरज रखना पड़ेगा। मन में शांति रखकर राजा-रानी को पाती लिखो कि वे बिलकुल ही विचलित न हों। हम उनके दुख से जुड़े हुए हैं और हमेशा जुड़े रहेंगे। ग़लती सब हमारी है। बड़ा होने पर ढोला को एक बार भी पोकर जी वाली बात नहीं बताई। आजकल, आजकल के भरोसे टालते रहे। अब आपसे भी अधिक हमें मरवण की चिंता है। वही सोने का सूरज उगे, जब किसी मांगलिक घड़ी में मरवण के कुमकुम पद-चिह्न हमारे आँगन में उघड़ें!''

रानी के वचनों का जादू ही ऐसा था कि मन में शांति छा गई। रानी के पास बैठकर अपने हाथ से पत्र लिखा। रानी ने कुमकुम-केसर के छींटे दिए। राजा स्वयं अपने हाथ से काग़ज़ सौंपना चाहता था। रानी के महल में आते समय जितना मन भारी था, उतना लौटते समय नहीं

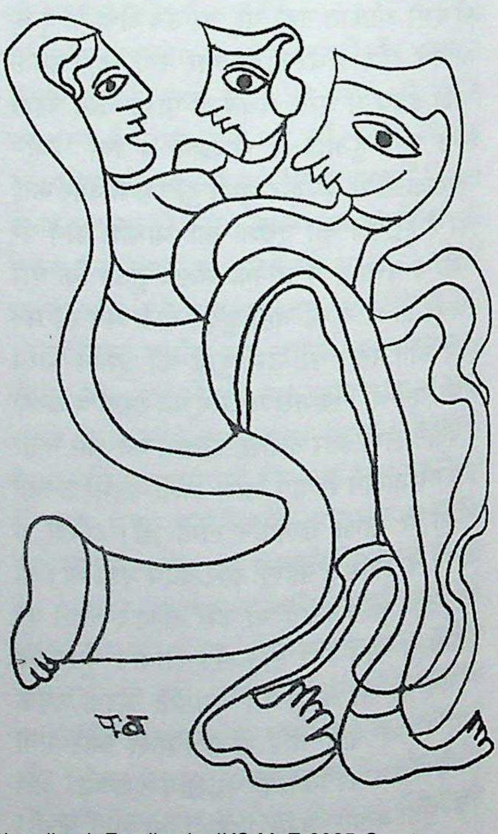

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहा। गड़रिए को पत्र सौंपने पर दासी ने शिकायत की, भोजन करना तो दूर रहा, इन्होंने पानी तक नहीं पिया। इन्हें कौन समझाए... ? मना करने के अलावा कुछ नहीं जानते।

''मैं समझाऊँगा, ये मेरी मरवण के पीहर वाले हैं...।'' फिर तो कुछ भी समझाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। राजा का उछाह ऐसा उमड़ा कि उसने अपने हाथों से थाल परोसा। पास खड़े रहकर बार-बार मनुहार करते रहे। उस समय वे पूरी तरह बिसर गए कि वे नरवरगढ़ के राजा हैं। अब तक ऐसी सनक उन्हें एक बार भी नहीं सूझी। क्या साल्हकुँअर की भूल के लिए उनका वह पछतावा तो नहीं था! मनुष्य के कुछ काम ऐसे होते हैं कि बिना सोचे-समझे वे स्वतः हो जाते हैं। गड़रिए और खवास के मन में गर्व-गुमान का पार नहीं था कि मरवण के श्वसुर ने राजा होने पर भी इस तरह ख़ातिरदारी की। अभिमान या अहंकार दूर-दूर तक नहीं। उनके इस बरताव से साफ़ पता चलता है कि मरवण के लिए उनके मन में कितना मान है!

गड़रिए और खवास को इक्यावन-इक्यावन मोहरें विदाई में देते हुए कहा, ''ज़्यादा कहने-सुनने में कोई सार नहीं, थोड़ा जितना ही मीठा! पाती में ज़रूरी समाचार लिख दिए हैं।...सारे दरबार में फैली हुई बात तुम दोनों से भी छिपी नहीं रही होगी। साल्हकुँअर और मालवणी का विवाह हमारे अजाने ही हो गया, सो हो गया। फिर भी मौक़े पर सारी बात सँभल जाएगी, हमें पूरा विश्वास है।'' उन्हें आश्वस्त करके राजा ने उनकी पीठ थपथपाई तो उन्हें काफ़ी राहत मिली।

बख़्शीश के दो अबलक घोड़ों पर सवार होकर जब वे पूँगलगढ़ राज-दरबार में पहुँचे तो राजा-रानी उन्हीं के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके चेहरे ख़ुशी से दमकते दिखाई दिए तो गड़रिए और खवास दोनों का मुँह उतर गया। अत्यधिक धैर्य के साथ राह काटी थी। उछाह की बजाय उनके चेहरों पर उदासी देखी तो राजा-रानी दोनों एक साथ सहम गए। रानी ने बमुश्किल सँभलते हुए पूछा, ''ऐसी क्या बात हो गई, बताओ तो सही... ?'' तब देवासी ने जेब से पाती निकालकर काँपता हाथ आगे बढ़ाया। पर खवास धीरज खो बैठा। मन में घुटता धुआँ बाहर निकालते हुए कहा, ''नरवरगढ़ के राजकुँअर ढोला ने शिकार खेलते-खेलते मालव देश की राजकुँअरी मालवणी से ब्याह कर लिया...।'' राजा-रानी पर जैसे कड़कड़ाती बिजली गिरी हो। रानी के सिहरते हाथ से पाती नीचे गिर पड़ी। और वह ख़ुद भी लुढ़कने वाली थी कि राजा ने बीच ही में थाम लिया। पलंग पर सुलाकर आदेश दिया कि वे दोनों जाएँ। उनका कोई क़सूर नहीं। पर किसी को भी इसकी भनक न पड़ने दें। सीधे घर जाओ...। यह तो रानी पहल कर गई, वरना राजा पहले मूर्छित होनेवाला था। रानी को इस तरह बेहोश होते देखा तो स्वयं को सँभाल लिया। थोड़ी देर बाद रानी ने आँखें खोलीं—राजा धीरे-धीरे पंखी झल रहा था। उसकी नज़र रानी के चेहरे पर गड़ी हुई थी। पलकें पूरी खुलते ही राजा का हाथ जल्दी-जल्दी चलने लगा। रानी ने बैठने की कोशिश की तो राजा ने कंधा दबाकर वापस सुला दिया। रानी ने पलकें मूँदकर धीरे से कहा, ''पानी...!'' राजा उठकर जाने लगा तो रानी बैठ गई। राजा के हाथ से लोटा लेकर रानी ने पहले तो होंठ भिगोए। फिर चारेक घूँट पानी पिया। लोटा लेने के लिए राजा ने हाथ बढ़ाया तो रानी ने धीरे से कहा, ''अब क्यों भार बढ़ा रहे हो...मुझमें इतनी शक्ति नहीं...!'' रानी आगे कुछ कहने जा रही थी कि मरवण दोनों हाथों में काँपते सुग्गे को सँभालती हुई तेज़ी से आई, ''माँ, पहले एक कटोरे में केवड़ा जल डाल, घायल तोते को पिलाऊँ...फिर...।''

''बिल्ली ने नोचा है, शायद... ?''

मरवण ने भीगी वाणी में हामी भरते हुए कहा,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''हाँ, जीसा...। इसकी तक़दीर अच्छी थी कि गेंद फेंकते ही वह इसे छोड़कर भाग गई। मौत के मुँह से बचा है...! अब इसकी मरहम-पट्टी करूँगी।'' इतना कहकर वह मुड़ने लगी कि उसे पाँवों के पास कुमकुम-केसर के छींटे लगा एक काग़ज़ नज़र आया। झुककर हाथ नीचे किया ही था कि माँ और जीसा ने एक साथ मना करते हुए कहा, ''नहीं बेटी, दूसरों का पत्र नहीं बाँचना चाहिए...।'' मौली से बँधा काग़ज़ उठाते हुए प्रश्न किया, ''माँ-बाप कब दूसरे हुए...। फिर भी आपका आदेश तो मानना ही पड़ेगा...।'' दूसरे ही क्षण उसकी सुध-बुध कौंधी। मुस्कुराते हुए पूछा, ''नरवरगढ़ से आया लगता है...।'' फिर जीसा की ओर काग़ज़ बढ़ाते हुए बोली, ''मुझे यों भी काग़ज़ बाँचने की वेला ही कहाँ है! यह लीजिए...।''

मरवण तो अजाने ही मुस्कुराई थी, पर राजा-रानी तो सारा भेद जानते थे। उनके रिसते घावों पर जैसे ठेस लगी हो। जब राजा का हाथ तनिक भी आगे नहीं बढ़ा तो उसने दूसरी बार फिर कहा, ''लीजिए...सुग्गे की मरहम-पट्टी के लिए देर हो रही है...।''

राजा का काँपता हाथ मुश्किल से आगे बढ़ा तो उसने पत्र वापस कर दिया और तेज़-तेज़ क़दमों से रवाना हो गई। राजा-रानी के गले में जैसे कुछ फँस गया हो! थोड़ी देर तक तो वे हतप्रभ, सूनी-सूनी आँखों से जाने क्या देख रहे थे, सो उन्हें भी कुछ पता नहीं चला। अचानक राजा के होंठों से भरी-भरी जिज्ञासा प्रकट हुई, ''अब...अब...!'' रानी ने गंभीर स्वर में धीरज बँधाते हुए समझाने की चेष्टा की, ''अच्छा हुआ कि मरवण को पता चल गया। आख़िर पता तो चलना ही था। अब कुछ भी छिपाने की ज़रूरत नहीं। पहला मौक़ा मिलते ही उसे पोकर जी के पावन तीर्थ पर हुए संबंध की बात बता देनी है। फिर तीनों मिलकर ही इस समस्या का सामना करेंगे। तोते की अपेक्षा मरवण के भाग्य तो अच्छे ही होंगे। हमें बेहद हिम्मत रखनी है। यदि हमने हिम्मत छोड़ दी तो मरवण का क्या हाल होगा!''

तत्पश्चात् राजा काग़ज़ के बहाने अपना ही कलेजा उघाड़कर बाँचने लगा। एक-एक अक्षर बाहर निकालते समय मानो गला छिल रहा हो। और रानी के कानों में अक्षर पैठते समय जैसे चिनगारियाँ चिपक रही हों। पूरा काग़ज़ बाँचने के बाद वे कुछ देर तक इस तरह गुमसुम बैठे रहे, मानो एक-दूसरे से निपट अपरिचित हों। बाप के स्नेह की अपेक्षा माँ की ममता का ज़ोर अधिक होता है। रानी एक गहरा निःश्वास भरकर कहने लगी, ''सिवाय दुर्योग के किसी का भी दोष नहीं है। यदि साल्हकुँअर को मरवण के संबंध की सपने में भी जानकारी होती तो वह हरगिज़ ऐसी भूल नहीं करता।''

''मुझे पूरा विश्वास है कि नरवरगढ़ के राजा-रानी मग़ज़मारी करें तो सब मामला सुलझ सकता है। हज़ारों में बड़ी मुश्किल से एकाध राजा ही एक रानी से संतुष्ट रह सकता है। राजा के लिए जितनी रानियाँ हों, उतनी ही शोभा की बात है। यदि नरवरगढ़ का परम सौभाग्य हुआ तो मरवण का वहीं पदार्पण होगा।'' इन शब्दों के साथ ही राजा का आधा-अधूरा दुख-दर्द छँट गया। पर माँ की ममता बिलकुल आश्वस्त नहीं हुई। कहने लगी, ''मुझे चिंता मरवण की है। उसमें कमी केवल एक बात की ही है कि अपार ज्ञान और क़ुदरत के साथ तादात्म्य के कारण उसका मन अन्य किसी भी आनंद की ख़ातिर नहीं ललचाता। स्वामी की 'जूठी सेज' की बजाय वह चिता पर चढ़ना श्रेयस्कर समझती है। मैं उसकी प्रकृति थोड़ी-बहुत समझने लगी हूँ। उसकी बातें सुनने पर मेरे अचरज और आनंद का पार नहीं रहता। ऐसा वहम होने लगता है, जैसे उसने मुझे जन्म दिया हो!''

जब तक हरियल सुग्गा पूरा ठीक नहीं हुआ,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मरवण बाक़ी सारी बातें भुला चुकी थी। वह जो काम करती, उसी में सारा चित्त समाए रहती थी। अपने मनपसंद काम के अलावा किसी भी काम में उसका जी नहीं लगता था। जब तोते का नाम रखने की इच्छा हुई तो उसे सोचने में एक क्षण भी नहीं लगा। उसके पंख सहलाते-सहलाते धीमे-से गुनगुनाई..., ''कबीर... कबीर...!'' अपने नए नामकरण की तनिक-सी गुनगुनाहट सुनते ही कबीर ने थोड़ी-सी पाँखें फड़फड़ाई। टिव-टिव करते हुए बोला, ''यह नाम मुझे पसंद आया। सीताराम तो बहुतेरे उड़ते रहते हैं। अब नाम के अनुरूप मुझे नए-नए सद्‌गुण और नित्य नया ज्ञान सीखना पड़ेगा। आप सिखाने में ख़ामी मत रखिएगा...। जितना भी जानती हैं, सब बता दीजिएगा।''

''और तू भी कसर मत रखना।'' मरवण ने लाड़ से पुचकारते हुए, उसकी आँखों का चुंबन लिया। कहने लगी, ''तुम पंछी-जानवर तो क़ुदरत के ही लाड़ले होते हो। तुम्हारा ज्ञान मनुष्यों से एकदम भिन्न है। उसे जानकर मेरे हृदय में आनंद हिलोरें भरता है। अब चलें माँ और जीसा के पास, तुझे स्वस्थ-दुरुस्त देखकर वे बेहद ख़ुश होंगे...।''

''तो फिर मैं आगे-आगे उड़ूँ और आप...।''

मरवण ने मुस्कुराते हुए रूठे स्वर में कहा, ''फिर वही आप वाला प्रपंच...!''

कबीर ने तर-गुलाबी हँसी छलकाते हुए कहा, ''मनुष्यों से भी चूक हो जाती है, फिर हम तो पंछी हैं। आप नाराज़ हों तो भले ही हों, तूकारा देने के लिए मेरा मन नहीं मानता...।''

''तब मैं भी तुझे आप कहूँगी...!''

कबीर ने एकदम पलटा खाया, ''बस...बस, अब कुछ भी समझना बाक़ी नहीं रहा। पूरा होश ठिकाने आ गया।'' दोनों के रज़ामंद होने में इतनी देर लगी! देर तो मनुष्यों के समझौते में लगती है।

जब कबीर काफ़ी आगे निकल गया तो अचानक जाने क्या सोचकर वह वापस मुड़ा और मरवण के सिर की सीध में उड़ने लगा। उसकी समझदारी का आभास होते ही मरवण तेज़-तेज़ क़दमों से चलने लगी। रानी के रंग-महल में दोनों ही गंभीरतापूर्वक मशविरा कर रहे थे। मरवण के साथ-साथ उड़ते हुए सुग्गे पर दोनों की नज़र एक साथ पड़ी। मुस्कुराहट के बहाने चालू बातचीत को झटकने में उन्हें कुछ भी आशंका नहीं हुई और न मरवण को वैसा संदेह करने की वेला ही थी। पर कबीर की सुतीक्ष्ण दृष्टि से कुछ भी छिपा नहीं रहा कि राजा-रानी ने मुस्कुराहट की ओट में कोई गहरी बात छिपाने का प्रयास किया है।

मगर मरवण तो अपने ही आनंद में तैर रही थी। उमंग भरी वाणी में कहने लगी, ''आप दोनों से तो घायल कबीर की कँपकँपी छिपी हुई नहीं थी। और आज सात दिन बाद ही खरूँट का निशान तक नहीं है। कबीर की निराली सूझ-बूझ के कारण ही ऐसा संभव हुआ...अन्यथा काफ़ी भुगतना पड़ता, उसके साथ मुझे भी।''

माँ-बाप के दिल पर करारी ठेस भी लगी पर अभी मरवण की हर बात में हामी भरनी ज़रूरी थी। पोकर जी के पवित्र धाम उसका बाल-परिणेता साल्हकुँअर युवा होते ही दूसरी अप्सरा ब्याह लाया। औरत के लिए इससे बड़ी त्रासदी और क्या हो सकती है...उसकी तनिक भी परवाह न करके एक सामान्य तोते के उपचार से ही ख़ुशी में बावली हो रही है। लेकिन फिलहाल इस हादसे की ख़ातिर होंठ सिले रखने ही संगत हैं। आख़िर पता तो लगना ही है। जब तक अनजान रहे, ठीक है। माँ ने स्वयं को भ्रम की ओट में रखते हुए अतिरेक उत्सुकता से पूछा, ''तो इस सुग्गे का नाम तूने कबीर रखा? ऐसा बेजोड़ नाम तुझे कैसे सूझा कि सुनते ही हमारी बाँछें खिल गईं!''

कबीर ने अचरज करते हुए पूछा, ''जीसा के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिल की बात का आपको कैसे पता चला ?''

रानी माँ को जवाब देने में तनिक भी देर नहीं लगी, ''बीस बरस साथ रहने पर भी एक-दूसरे के दिल की बात छिपी रहे तो उस मेल का कुछ मतलब नहीं है। परंतु इसके विपरीत सिर्फ़ पंद्रह दिन साथ रहने से भी तू मनुष्यों के मन का भेद भाँप गया, यह अचरज की बात है! तिस पर तू तो पक्षी है और मरवण मनुष्य है...समझा कि नहीं...।''

कबीर ने दो-तीन बार गरदन हिलाकर हामी भरते हुए कहा, ''समझ गया...समझ गया।'' फिर माँ ने उन्मुक्त भाव से कबीर की पाँखें और माथा सहलाते हुए आशीष दी। तब कहीं मरवण के अंतस् में पूरी तसल्ली हुई। कई दिन से अपने मन में घुमड़ती आँधी पर बड़ी मुश्किल से नियंत्रण रखा, वरना कबीर के उपचार में जाने-अजाने कमी रह जाती। उसने पहले माँ फिर जीसा के चरणों में तीन बार सर नवाकर नितांत सहज भाव से कहा, ''आप दोनों को तो केवल अरदास ही कर सकती हूँ कि अपने विश्वास पात्र देवासी और खवास के साथ अब कभी पत्र लिखकर नरवरगढ़ भेजा तो मेरे साथ निश्चित ही बुरी बीतेगी। वहाँ के राजा-रानी तो आपकी जोड़ के ही हैं—सद्गुणों के ही सरोवर! कुँअर जी भोले ज़रूर हैं, पर धूर्त व दुष्ट नहीं। निर्मल स्वभाव के हैं। फिलहाल मालवणी के मद भरे मोह से मुक्त होना कठिन है। हों-न-हों, उनकी वे जानें। मात्र गठबंधन की दुहाई देने से पंछी-जानवरों के संग खेलती बिटिया की गलफाँसी नहीं कट सकती। और उसकी ज़रूरत भी क्या है ? क्यों है ? ब्याह के बहाने ससुराल के खूँटों पर बँधने के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है ? सूरज भगवान के रहते क्या ससुराल के सिवाय कहीं अन्यत्र उजाला नहीं है ? ससुराल के सीमित आँगन के अलावा कहीं सुरंगी बाड़ियाँ, बाग़-बग़ीचे नहीं हैं, जहाँ हरदम रंग-बिरंगे फूल खिले रहते हैं, कबीर जैसे बुद्धिमान पंछी नहीं हैं, झरने नहीं हैं, नदियाँ नहीं हैं। हरियाली से छाए हुए पहाड़ नहीं हैं। तितलियाँ नहीं हैं। माँ, तू तो मुझसे कहीं ज़्यादा समझदार है कि औरत के पिंड—सिर्फ़ उपस्थ, उरोज, अधर एवं कोख ही तो नहीं होती। उसमें बुद्धि, बोध, हृदय और आत्मा भी तो है। पुरुषों की तुलना में उसकी देह का विस्तार एवं उसकी शक्ति सहस्र गुना अधिक है। जब तक कुँअर ढोला जी अपनी भूल के लिए पछतावा न करें, अपनी इच्छा से पहल करके इधर न आएँ, तब तक हमें इतना धीरज रखना है, मानो पोकर जी के पावन धाम में हमारा विवाह ही नहीं हुआ। दूसरी औरतों की तरह विछोह में आहें भरूँ, आँसू बहाऊँ, रति-क्रीड़ा के लिए छटपटाऊँ तो मेरा ज्ञान और क़ुदरत के प्रति मेरी असीम प्रीत सब बेकार है! स्वाँग है! पाखंड है! प्रकृति के विभिन्न स्वरूप केवल एक व्यक्ति की ख़ातिर अदृष्ट नहीं रख सकती। ससुराल की पगडंडी को छोड़कर क्या औरत के लिए दूसरी कोई राह नहीं है ? आप दोनों के आशीर्वाद से मैं उसी राह पर चलते-चलते मनुष्य-जीवन को सार्थक करना चाहती हूँ। यदि मेरे संकल्प में तनिक भी सच्चाई हुई तो नरवरगढ़ के कुँअर यहाँ आकर अवश्य नमन करेंगे। मुझे आप दोनों के साथ-साथ नरवरगढ़ के राजा-रानी की भी मर्यादा रखनी है। धाय-माँ के मुँह से उनकी जितनी भी प्रशंसा सुनी, वे आप जितने ही मेरे लिए आदरणीय हैं। ऐसी ही कुछ आशा लेकर मैंने आपके पास आने की हिम्मत जुटाई है। यदि आपको मेरी बातें उचित नहीं लगे तो जैसा आप कहें, मानने के लिए तैयार हूँ। आज के बाद सपने में भी विवाद नहीं करूँगी। क्या सीता को हमेशा ही हार माननी पड़ेगी ? उसकी अपनी इच्छा का कभी महत्त्व नहीं होगा ?''

मरवण की वाणी में कुछ ऐसा ही अमृत घुला था कि एक-एक अक्षर के प्रभाव से उनके मन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का समूचा संताप छँट गया और दुख की बजाय अंतस् में अपार शांति व संतोष समा गया। राजा की अपेक्षा रानी उमादे के हृदय में धीरज और विश्वास छलक उठा। उत्साह के लहजे में कहने लगी, ''तुझसे ऐसी ही उम्मीद थी। तेरी सूझ-बूझ पर पूरा भरोसा था। एक बार भूल हो गई सो हो गई। अब हमेशा के लिए कोहरा छँट गया है। तेरे सुख-संतोष में ही हमारा सुख-संतोष है। बचपन से ही हमें तेरी समझ-बूझ का अनुमान हो गया था। आज से जितने तू कहेगी, उतने ही क़दम भरेंगे...।''

रानी उमादे आगे भी कुछ कहने जा रही थी कि मरवण ने दोनों के चरण स्पर्श करके बीच में ही टोका, ''नहीं माँ, ऐसे बैन सुनने पर भी पाप लगता है। मैं तो आप जैसी महान हस्तियों के पाँवों की धूल हूँ। आपकी संगति के अलावा ऐसी समझ कहाँ पड़ी थी?'' थोड़ी देर रुककर फिर कहने लगी, ''कबीर के प्रवचन सुनने की ख़ातिर आज चौक में उसकी न्यात के हज़ारों तोते इकट्ठे होंगे। उनके लिए तरह-तरह के फल ख़रीदने हैं। हम दोनों जा रहे हैं। धाय माँ इंतज़ार कर रही होंगीं। थोड़ी देर तो हो ही गई।''

राजा पिंगल की आँखें भर आईं। मरवण के सिर पर दोनों हाथ फिराकर आशीष दिया। अब तक कबीर ध्यानपूर्वक सारी बातें सुन रहा था। मरवण चलने के लिए आतुर हुई थी कि चंदन की खूँटी से उड़कर कबीर ने तीन बार पंख फड़फड़ाकर राजा-रानी के चरणों में धोक दी। फिर मरवण के बाएँ कंधे पर बैठकर कहने लगा, ''इस रजवाड़े का तो ढर्रा ही अलग है। आज से पहले न तो सुना और न देखा। अच्छा हुआ कि बिल्ली ने मुझे घायल किया और आप सबके दर्शन हुए। धाय माँ ने तो जैसे मुझे जन्म ही दिया हो। मरहम-पट्टी करते समय महसूस होता जैसे मेरी बजाय बिल्ली ने उसे नोचा हो!''

उधर नरवरगढ़ के राज्य में साल्हकुँअर मालवणी के रूप-यौवन और उसकी प्रीत में ऐसा मगन हुआ कि न तो उसे दिन उगने का पता और न अस्त होने का ख़याल। फूलों से महकती सेज पर रति-क्रीड़ा में ऐसा लिप्त हुआ, मानो तीनों लोकों के आनंद की भरपाई कर रहा हो। उसे शिकार खेले बिना चैन ही नहीं पड़ता था, पर मालवणी की गलबहियों से मुक्ति मिले तो शिकार की ओर ध्यान खिंचे! शिकार का शौक़ इस तरह विस्मृत हुआ, जैसे अब तक कभी शिकार किया ही नहीं हो। शिकार खेलने के बहाने ही मालवणी जैसी अप्सरा का वरदान फला और उसके साथ ही मानो उसकी सार्थकता संपूर्ण हो गई हो। ईश्वर या भगवान की मंशा शायद इसी बहाने फलीभूत हुई हो! ऐसे रूप-सौंदर्य के बदले सौ चक्रवर्ती साम्राज्य न्योछावर। बावरे भक्तगण भगवान के साक्षात् दर्शन के लिए युग-युगांतर से तप कर रहे हैं, हठयोग कर रहे हैं, तपस्या कर रहे हैं, उन पगले भक्तों का भगवान तो मालवणी के रोम-रोम में वास कर रहा है, जो पल-पल साल्हकुँअर अपनी आँखों से टुकुर-टुकुर देख रहा है। शिकार खेलने का ऐसा फल तो नहीं सोचा था! धर्म की बजाय शिकार का पुण्य सहस्र गुना अधिक होता है। प्रत्यक्ष आजमाई बात पर कोई नासमझ ही अविश्वास करे! पंछी-जानवरों को निकृष्ट ज़िंदगी से छुटकारा मिलने पर उनकी शुभकामनाएँ ज़रूर फली होंगी!

राजकुँअर की रंग-मैड़ी में तो इंद्रलोक का नज़ारा था। ऐश-आनंद का पार नहीं था और दूसरी ओर राजा-रानी के आवास में उदासी, संताप एवं घुटन की वजह से साँस तक लेना दूभर था। एक-एक दिन बरस के समान असह्य जान पड़ रहा था। जिस हादसे की पीड़ा उनके दिल में खटक रही थी, भगवान न करे उनके दुश्मन को भी वैसी पीड़ा से गुज़रना पड़े। भूख लगे न लगे भोजन तो करना ही पड़ता। आधी-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अधूरी ऊँघ के बीच राजा पिंगल, रानी उमादे, धाय-माँ और मरवण की स्मृति मानो अँतड़ियाँ छील रही हों। दमकती आभा धीरे-धीरे फीकी पड़ने लगी थी, जैसे कोई असाध्य बीमारी भुगती हो या असह्य यातनाओं से गुज़रे हों। नरवरगढ़ के समूचे राज्य में उन जैसा निरीह और अभागा व्यक्ति दूसरा कोई नहीं होगा। सूरज उगने के बावजूद उन्हें कहीं किसी भी दिशा में उजाला नज़र नहीं आता था। दरबार में कैसे भी उलझे हुए जटिल न्याय सुलझाने में क्षण भर का भी विलंब नहीं हुआ। राजा नल को तत्काल सही निर्णय सूझ जाता था। पर घर का अंतरंग न्याय गले पड़ते ही सुध-बुध को जैसे लकवा ही मार गया हो!

अचानक रानी दमेती के होंठ सहमे, ''बैरिन पूनम तो फिर आ गई? किसी राजा-महाराजा पर आफ़त आए तो मनहूस समय की वही गति और किसी रंक पर आफ़त आए तो समय की वही चाल। किसी का कुछ भी लिहाज़ नहीं! मुरौव्वत नहीं!''

राजा नल ने एक गहरी आह भरकर कहा, ''आज साल्हकुँअर को यहाँ आए एक महीना और पाँच दिन ऊपर हो गए, रंग-मैड़ी से बाहर तक नहीं निकला। मिले तो कुछ बात भी करें...!'' रानी ने मुस्कुराने की चेष्टा की तो उसके होंठों पर महीन-सी एक लपट कौंध गई, जिसमें रुलाई से भी अधिक पीड़ा थी। कहने लगी, ''रूप-यौवन के इन छलकते दिनों की यही तासीर होती है, भूल गए! आपको भी तो दरबार में गए इतने ही दिन हो गए। इस तरह ज़िंदगी कैसे गुज़रेगी...? आपको कुछ उपाय सूझे तो बताओ...!''

''मुझे न तो दिन के उजाले में कुछ सूझता है और न रात के अँधेरे में कुछ लौ नज़र आती है, जैसे अक्ल को दीमक चाट गई हो! ऐसा निर्बल और हताश तो मैं कभी नहीं हुआ...।'' राजा के गले से बमुश्किल इतने से बोल निकले कि रानी के कानों में तेज़ क़दमों की आहट सुनाई पड़ी। नई मोजड़ियों की चरमराहट सुनते ही उसका सोया मन जागा, ''शायद ढोला आ रहा है...!'' दोनों की ललचाई नज़र खुले दरवाज़े की ओर कुछ टोहने लगी।

आनंद से सराबोर ढोला भीतर आया तो उसके दुख और अचरज का पार नहीं रहा। मुश्किल से बोल पाया, ''आप दोनों क्या एक साथ ही बीमार पड़ गए? ऐसी हालत कैसे हुई...? मुझे बुलावा तो भेजना था!'' पछतावे के साथ ही उसने दोनों के पाँव छुए। फिर रानी के चरणों में बैठकर दुख भरे स्वर में बोला, ''क्या हुआ माँ...? चाँदनी जैसी दमकती आभा इस तरह फीकी क्यों पड़ गई...? जीसा का तप-तेज़ कहाँ खो गया...? क्या मैं इतना अयोग्य हूँ कि मुझे कुछ कहना तक उचित नहीं समझा...? क्यों माँ...?''

जिस मौक़े की चिर प्रतीक्षा थी, वह ख़ुद चलकर आई। अब नहीं बताने पर सब गड़बड़ हो जाएगा। माँ-बाप की नाराज़गी को मिटते क्या देर लगती है! बताए बिना उसे पता भी कैसे चलेगा...! माँ ने ढोला के गालों को सहलाते हुए कहा, ''आज तुझे रंग-मैड़ी से बाहर आने की वेला तो मिली! हमारा सौभाग्य कि तुझे हमारी सुधि लेने का ख़याल आया...! सच बताना, बहू के आग्रह करने पर आया कि अपनी मर्ज़ी से आया?'' साल्हकुँअर स्वभाव से भोला ज़रूर था, पर माँ-बाप के सामने कभी झूठ नहीं बोला तो आज क्यों बोलता! मामूली-सा घबराकर धीमे-से कहा, ''आख़िर बहू के बार-बार कहने पर ही मुझे ध्यान आया। भारी ग़लती हुई माँ...! जीसा जो भी दंड देंगे, राजी-ख़ुशी क़बूल करूँगा।''

माँ की तुष्टि के लिए वही सब कुछ था। उसके सिर पर दोनों हाथ धरकर आशीर्वाद दिया। फिर बाँह पकड़कर उसे पलंग पर अपने पास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बिठाया। ललाट पर दुलार से चुम्मा जड़कर कहने लगी, ''गोद में खिलाने की उम्र बीत गई, वरना गोद में भी बिठाती।''

ढोला के मन में बहुत उम्दा बात सूझी तो बोले बिना नहीं रह पाया, ''बेटा तो हमेशा के लिए बेटा ही रहेगा। उसकी उम्र कभी आड़े नहीं आती माँ! मुझे तो अब भी गोद में बैठना अच्छा लगता है। माँ की गोद तो चक्रवर्ती सिंहासन से भी बड़ी होती है!'' और वह सचमुच माँ की गोद में बैठ गया। तब उसके भोलेपन पर राजा से हँसे बिना नहीं रहा गया। रानी मन-ही-मन सोचने लगी कि ढोला की इस सरल प्रकृति ने ही सारा गड़बड़ किया! वरना माँ-बाप का कहना वह सपने में भी टालने वाला नहीं। माँ को अपनी कोख पर पूरा भरोसा था। इतने बरस चूक रही, काफ़ी है। यदि उसे पोकर जी के पवित्र धाम की ब्याह की सच्ची बात बता देते तो यह झंझट हरगिज़ खड़ा नहीं होता। बहू भी राह चलते यों ही साथ नहीं हो गई! ढोला की इच्छा होने पर ही गाजों-बाजों से गठबंधन किया है। उसका भी कोई क़सूर नहीं। लेकिन विधात्री को तो सब बातों की सही जानकारी थी, तब उसे तो पूरा ध्यान रखना था। लेकिन उसे तो सारी दुनिया का ख़याल रखना पड़ता है। कुछ गिनती के महानुभावों की ख़ातिर अपना कर्तव्य कैसे भूल सकती है! जब हमसे भयंकर भूल हो गई, तब किसको क्या पड़ी है कि हमारा ध्यान रखे! ढोला के मानने पर सारी बातें सलट सकती हैं।...पर अब अकेले साल्हकुँअर की ही बात नहीं रही। मालवणी अपने वश रहते ढोला को क्यों ऐसा काम करने देगी जिससे उसको क्षति पहुँचे। वह क्यों अपनी रंग-मैड़ी में किसी का हिस्सा रखने देगी? सौत तो माटी की भी बुरी होती है! तिस पर मरवण के रूप, उसके गुण और उसकी समझ के मुक़ाबले मालवणी तो उसके पासंग बराबर भी नहीं है। अकेले रूप से क्या होता है? बड़ी बात है गुण और समझ की। ढोला चाहे कितना ही भोला हो, दोनों की सही परख में उससे चूक नहीं हो सकती, क्योंकि वह मन का कुटिल नहीं है। अजाने भूल हो सकती है, पर वह जानकर भूल नहीं कर सकता। दोनों को परखने के बाद उसे मरवण की ओर झुकना ही पड़ेगा।

जब रानी के मन में इन बातों का वातचक्र तेज़ी से घूम रहा था, तब राजा के मन में राम जाने क्या आया कि वह तत्काल खड़ा होकर रानी से कहने लगा, ''मेरे ख़याल से तू अकेली ही पोकर जी वाली बात साल्हकुँअर को ब्योरेवार बता दे तो ज़्यादा ठीक रहेगा।'' इतना कहकर वे जाने लगे तो साल्हकुँअर उन्हें रोकते हुए कहने लगा, ''कल ही मुझे सारी बातों का पता चला इसीलिए मैं आपके पास आ गया। जाइएगा नहीं, यहीं बिराजिएगा। मेरे ख़याल से पोकर जी से वापस लौटने पर शायद ही आप दोनों ने मरवण को कभी देखा हो। जब वह सातेक बरस की हुई उसे सत्ताईस दिन का 'निकाला' निकला। सर के बाल काफ़ी झड़ गए। रंग काला-स्याह हो गया। उसके बाद शीतला-माँ के प्रकोप से उसकी एक आँख में फूली पड़ गई। सारे मुँह पर दाग़-ही-दाग़ भर गए। आवाज़ कर्कश हो गई—कौओं की काँव-काँव को भी मात करे जैसी...!''

वह आगे भी बहुत-कुछ कहने जा रहा था कि राजा-रानी का धीरज चूक गया। रानी के कानों में बेटे के तीखे बोल शूलों की तरह चुभने लगे। बीच में टोकती हुई सख़्त स्वर में कहने लगी, ''बस, बहुत हो चुका, अब चुप कर! तू अभी मालवणी के छल में फँसा हुआ है। मानती हूँ कि मालवणी भी कम सुंदर नहीं है, पर पूँगलगढ़ की मरवण की तुलना में कहीं नहीं ठहर सकती! और उसके गुणों का तो पार ही नहीं है! मुझे तो सिर्फ़ एक बार ही बहू के चंचल नयनों की झलक मिली और पूरा पता चल गया कि उसका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वभाव कैसा है ? तू केवल भ्रांति में डूबा होता तो हमारे कहने से समझ भी जाता, पर तू तो उसके रूप-जोबन में आकंठ धँस चुका है, तब दूसरी किसी बात का तुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा। मात्र एकाध घड़ी ही नहीं, तू तो लगातार तीस दिन साथ रहने पर भी उसे नहीं पहचान सका तो अब कभी पहचान भी नहीं सकेगा... !''

राजा तो हतप्रभ-सा होकर माँ-बेटे की बातचीत सुनता रहा। कुछ समझ नहीं सका कि वह बीच में पंचायती करे या नहीं करे। तब रानी छूटे सूत्र को जोड़ते हुए आगे कहने लगी, ''बाक़ी बातें सब छोड़, अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखने पर तो मानेगा! मेरे कहने से ही एक बार पूँगलगढ़ जाकर अपनी परिणीता मरवण को देख तो ले। फिर तुझे कुछ भी समझाने की ज़रूरत नहीं रहेगी। पोकर जी की यात्रा के प्रताप से ही गोद में खेलती बाल-मरवण की झलक देखते ही तेरे जीसा पर तो जादू ही चल गया। हम तो तुम दोनों को साथ-साथ लेकर उनके डेरे गए। तेरे लिए उसकी माँग की और ब्याह की भाँवरें फिराकर ही हमें चैन मिला...।''

''तब एक बार तो मुझे उस बात का जिक्र करना था, किसी भी सूरत में दूसरा ब्याह नहीं करता।'' इतना कहकर ढोला ने बारी-बारी से उनकी ओर देखा। तब रानी ने आगे बात चलाई, ''तब तू निरा अबोध था, इसलिए बताने की ज़रूरत नहीं समझी। कल के लिए टालते रहे। जब तेरी उम्र समझने योग्य हुई, तब तुझे शिकार खेलने से फ़ुरसत ही कहाँ थी! दूज के चाँद के दर्शन तो एकदम सुलभ थे पर तेरे दीदार की ख़ातिर तो हम महीनों तरसते रहते। उन दिनों तू दूसरी बात सुनता ही कब था... !''

''सुनता कि नहीं सुनता, उसकी जाँच तो बताने पर ही होती। पर तुमने तो उसकी धोक ही क़बूल नहीं की, पीछे खिसककर मुँह ही मोड़ लिया। आख़िर वह तुम्हारी बहू है! कोई सुनी औरत तो नहीं है! पा-लागन का नेक चुकाना तो दूर, उसके दिल पर ऐसी चोट लगी कि तीन दिन तक पलक ही नहीं झपका पाई और न रोटी का कौर ही तोड़ा। रो-रोकर आँखें सुजा लीं। मायके जाती को किस तरह रोका, मेरा जी जानता है... !''

''और मेरा जी नहीं निकला सो तेरे मुँह से ऐसी सुहानी बात सुन रही हूँ। पराई बहू से तो कोई रिश्ता नहीं, पर तुझे तो दूध पिलाकर बड़ा किया, तू न सुनाएगा तो ऐसे बैन और कौन सुनाएगा... !'' माँ के इतना कहते ही साल्हकुँअर सकते में आ गया। मालवणी ने जितनी चाबी भरी, तब तक सुनाता रहा। ग़ुस्सा जतलाता रहा। चाबी का ज़ोर हटते ही घबरा गया। आँखों से आँसू झरने लगे। रुँधे गले से कहने लगा, ''मैं तो दोनों तरफ़ ऐसा फँसा कि कुछ भी वश नहीं चलता। अब करूँ तो क्या करूँ? उधर जाऊँ तो वह कोप से भरी रहती है और इधर आऊँ तो तू ग़ुस्सा झाड़ती है और जीसा तो मुझे देखना ही नहीं चाहते। अब किधर मुँह लेकर चलता बनूँ, कुछ भी समझ नहीं पड़ता। यदि पा-लागन करते समय उसे आशीर्वाद मिल जाता, तो वह समझाने से मान सकती थी...।'' आगे के बोल अक्षरों की बजाय, सुबकियों के बहाने झरने लगे। ढोला को चक्कर आने लगा तो वह माँ की गोद में लुढ़क गया। माँ के हाथ थे, अपने-आप ढोला की पीठ पर फिरने लगे! तब राजा नल से भी रहा नहीं गया। उसके हाथ भी ढोला के बालों को सहलाने लगे। थोड़ी देर बाद ढोला को होश आया।

''परसों हीरा-मोती और मानिक-पन्ने बेचने वाला जौहरी पूँगलगढ़ रवाना होगा। यदि उसे मरवण पसंद आ गई तो आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूँगा। क्या पता चेचक और अंतर्ज्वर की बात निरी गप्प ही हो...।'' नरवरगढ़ के कुँअर ने यह बात कहकर सिर ऊँचा ही नहीं उठाया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तब उनके अचरज की सीमा न रही कि ढोला सवा-महीने में इतना समझदार कैसे हो गया? सेज पर क्रीड़ा करती दुल्हन से बड़ा गुरु दूसरा कोई नहीं होता! मालवणी की चाबी का ऐसा प्रभाव तो नहीं सोचा था! दोनों के हाथ जहाँ थे वहीं थम गए। रानी ने नियंत्रण रखते हुए कहा, ''नहीं बेटा, इतनी उतावली करने की ज़रूरत नहीं। थोड़ा धीरज रख...!''

साल्हकुँअर उठ बैठा। तेज़ स्वर में बोला, ''नहीं माँ, अब मुझसे धीरज नहीं रखा जाएगा। ऐसा सुयोग जाने कब आए? जब जौहरी अपने ही काम से वहाँ जा रहा है तो अब उसे मना करना अच्छा नहीं...।''

यहाँ साल्हकुँअर काफ़ी चकरा गया। राजा नल तो कई जटिल फ़ैसले कर चुके थे। पूछा, ''क्या तूने स्वयं जौहरी से बात की, उसे अच्छी तरह हिदायतें दे दीं... ?''

''हाँ, दे दी...।'' हामी भरने के साथ ही ढोला का सिर भन्नाया। इतनी होशियारी रखी थी, तब भी पार नहीं पड़ी। दस दिन तक जो पाटी पढ़ाई, वह अध-घड़ी में ही सामने आ गई। उम्र के अनुसार नेह-प्रीत बदलते रहते हैं। माँ की ठौर माँ है, जीसा की जगह जीसा हैं, मालवणी की ठौर मालवणी है। दुनिया का कोई संबंध इसकी होड़ नहीं कर सकता। स्तनपान की उपादेयता अलग है, सेज की केलि-क्रीड़ा का आनंद अलग है। वहाँ तो पाणिग्रहण की दुल्हन से ही पार पड़ता है! कि इतने में राजा का दूसरा सवाल हवा में लहराया, ''बहू के सामने हिदायत दी या नितांत अकेले में... ?''

जो सच्ची बात थी वह साल्हकुँअर के मुँह से छलक पड़ी, ''बहू के सामने ही...!'' ढोला को अगले ही क्षण पता चल गया कि सही बात अपने-आप ही होंठों से छलक पड़ी। मना करने के आशय से गरदन हिलाते हुए भूल सुधारी, ''नहीं-नहीं, निपट एकांत में। इतनी पूछताछ करने पर किसी का भी दिमाग़ ठिकाने नहीं रहता। मैं आप दोनों के सामने वचन देता हूँ कि जौहरी जो भी समाचार लाएगा, मैं उन्हीं के अनुरूप चलूँगा। यदि आपके कहे अनुसार मरवण और गुणों में बेहतर हुई तो आपकी बात का इक्कीस आना पालन करूँगा। आपके सवाल सुनकर ब्रह्मा जी का भी दिमाग़ ठिकाने नहीं रहे, फिर मेरी तो बिसात ही क्या...!'' और भोला साल्हकुँअर बिना कहे-सुने ही रवाना हो गया। रानी ने उतावले स्वर में कहा, ''मेरी बात तो सुन, बेटा...!''

ढोला ने चलते-चलते ही जवाब दिया, ''अब तो जौहरी के आने पर ही बात करूँगा।''

कुँअर के जाने पर राजा रानी की ओर देखने लगा और रानी राजा के सामने टुकुर-टुकुर निहारने लगी। दोनों की आँखों में एक ही सवाल कौंधा, ''यह क्या हुआ...यह क्या हुआ?'' राजा-रानी के सदमे पर आख़िरी चोट थी। भूल से वह चोट हँसने की ठौर पड़ गई। वह रानी के वश के परे की बात थी, घोर व्यथा के बावजूद उसके होंठों से वातचक्र घनघनाया। हँसते-हँसते ही बोली, ''समय-समय का खेल है। किसी एक वक़्त के मुहाने पर माँ बच्चे को जन्म देकर अपना मन बहलाती है। अबोध बच्चा भी अपनी उम्र के मुताबिक खेल खेलता है। कोख के जाए-जन्मे को पाल-पोसकर माँ अपना कर्तव्य निभाती है। वह खेल सारी उम्र नहीं चलता। आज रंग-मैड़ी के सेज पर बिछे फूलों का खेल अलग है। आज तो दो हमउम्र सूरज अपना फ़र्ज़ अदा कर रहे हैं! तब बहू से डाह करने में कुछ भी सार नहीं है।'' राम जाने कैसे अंतर्मन में मरवण की समझ पर उसका अगाध भरोसा है। यह कैसा विवेक रहित विश्वास है उसका कि जो काम विधाता से पार न पड़े, वह अंततः मरवण की सूझ-बूझ से ठीक हो सकता है। उसके बचपन में ही उसे कुछ ऐसा आभास हो गया था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर राजा क्यों रानी से कम रहता! सिंहासन के मद के साथ-साथ उसमें पौरुष के गर्व-गुमान का पुट भी पर्याप्त घुला हुआ था। ऊपर आन पड़ी विपदा को परे हटाकर अहंकार के स्वर में बोला, ''तभी तो पोकर जी के पावन धाम मरवण की झाँकी मिलते ही मैंने ख़ुद उसकी माँग की थी! अजाने चेतना के परे किए काम कभी व्यर्थ नहीं जाते। समय के हाथों संपन्न किया गया गठबंधन समय के प्रभाव से ही सुदृढ़ होगा। यह क़ुदरत का नियम है।''

मनुष्य का मन जितना जल्दी बहलता है, उतना जल्दी चींटी का मन भी नहीं बहलता! क्षमता और अपार शक्ति के सहारे मनुष्य के जटिल और टेढ़े काम पार नहीं पड़ते, जितने बहलाने से पार पड़ जाते हैं। ढोला की घनघोर उपेक्षा से राजा-रानी के मन में सुलगी ज्वाला का उपचार न तो सिंहासन के द्वारा संभव था और न अकूत ख़ज़ाने के द्वारा, न फ़ौज की ताक़त के सहारे और न बुद्धि के भरोसे, वह तो केवल मनुष्य के सुकोमल मन के बहलावे से ही संभव था। सो नरवरगढ़ के राजा-रानी अपने रंग-महल के जस-तस माहौल में मगन थे। अपने बहलावे में खोए थे। उधर ढोला और मालवणी अपनी रंग-मैड़ी में फूलों की सजी सेज पर मदहोश थे। स्तनों के दूध से बहलने वाले दिन राम जाने कहाँ गुम हो गए, जो सूरज के खोजने पर भी वापस हाथ नहीं लग सकते!

मायापति जौहरी की न तो माया का कोई पार था और न उसके लोभ की कोई सीमा थी। मुफ़्त में एक मोहर भी हाथ लगती तो वह दाँतों से पकड़ने को तैयार रहता। चाहे वह मोहर कीचड़ में पड़ी हो, चाहे गंदी नाली में पड़ी हो। जब मरवण को तेज़ाब से बदशक्ल करने पर बीस हज़ार मोहरें हाथ लगती हों, पूँगलगढ़ आने-जाने का ख़र्च पेशगी मिलता हो तो उसकी ख़ुशी का क्या पार! पहले तो जौहरी अपनी हवेली में मोहरें रखने की ख़ातिर साफ़ इनकार कर गया। दोनों की इच्छानुसार काम पूरा होने पर ही मोहरें हाथ में लेना चाहता था। पर मालवणी मनुष्य के लोभ की तासीर ख़ूब समझती थी। आधी रात ढलने पर विश्वासपात्र सईस और सैनिकों के द्वारा सारी मोहरें उसकी हवेली में पहुँचवा दीं। सवेरे जौहरी ने विदा होते समय दोनों हाथ जोड़कर अरदास की, ''अन्नदाता की ज़बान ही हज़ार मोतियों से अधिक महँगी है। आपकी तो छत्र-छाया ही काफ़ी है। फिर भी एक बात तो बतानी ही पड़ेगी कि दुर्योग से राह चलते-चलते ही मैं ऊपर पहुँच गया तो... !'' मालवणी के स्वभाव में अतिशय जल्दबाज़ी थी और साल्हकुँअर उसकी जल्दबाज़ी पर ही बेहद फ़िदा था। मुस्कुराते हुए मालवणी ने बीच ही में टोका, ''तेरी इच्छा हो तो सारी मोहरें ऊपर पहुँचा दूँगी, वरना तेरे बेटे-पोते जानें और मोहरें जानें। ये मोहरें तो इस क्षण से ही हम दोनों के मन से उतर गईं। कहावत भी है कि तेली से खली उतरी, हुई ईंधन के योग्य। यही सोचूँगी कि मायके से हाथ-ख़र्च मिला ही नहीं। फिर भी कुछ कमी हो तो अभी बता दें... ।''

ऐसा तो स्वप्न भी देखा हुआ अच्छा, सो खुली आँखों के सामने चाँद के टुकड़े जगमगा रहे हैं। हाथ जोड़कर कहने लगा, ''कमी फिर कैसी? सात पीढ़ियों का हिसाब मेरी उँगलियों पर है—पाँच हज़ार मोहरों की भी जोड़ नहीं बैठती। झूठ के आसरे ही हमारा व्यापार चलता है, सो झूठ बोलने का हमें ख़ूब अभ्यास है। आपकी आज्ञा हो तो मरवण के रूप को कुरूप कर दूँ?'' ढोला किसी दूसरे ही विचार में उलझा हुआ था कि मालवणी गहरे मर्म के ठेठ पेंदे तक पहुँच गई। धीमे-से पूछा, ''तेज़ाब तो असली है... ?''

जौहरी भी कम धूर्त नहीं था। आधी वाणी और आधी सानी के बहाने उत्तर दिया, ''असली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का बाप है—बाप! चिकने कंकड़ तक गल जाएँ।''

चिकने कंकड़ का हवाला सुनते ही साल्हकुँअर ने चंचल वाणी में पूछा, ''चिकने कंकड़... ? चिकने कंकड़ों की क्या ज़रूरत पड़ गई ?'' जौहरी के होंठों पर बरबस हँसी फूट पड़ी। पर मालवणी ने खुलकर हँसते-हँसते ही कहा, ''बचपन में चिकने कंकड़ हीरे-मोतियों से भी बढ़कर लगते थे ना? मैं तो चिकने-कंकड़ों की पेटी साथ लेकर सोती थी। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं वह पेटी दहेज़ में साथ लेकर आई हूँ। आप कहें तो अभी लाकर दिखा दूँ...।'' साल्हकुँअर ने सोचा कि मालवणी अभी तक कितनी अबोध और बच्चों के समान भोली है! उसे भी बचपन में चिकने कंकड़ इकट्ठे करने का कितना शौक़ था! कहीं भी नज़र आते, दौड़कर जेबों में भर लेता। मुस्कुराकर गुमान करते कहने लगा, ''तेरी पेटी कुठले से शायद ही बड़ी हो! ताँबे का कुठला मेरे कंधे जितना ऊँचा था।'' मालवणी ने यहाँ हार क़बूल करनी उचित समझा। गंभीर स्वर में कहने लगी, ''फिर तो मेरी पचास पेटियाँ ख़ाली हो जाएँ तब भी आपका कुठला आधा भी नहीं भरेगा! मुझे भी बचपन में चिकने कंकड़ इकट्ठे करने का बहुत शौक़ था। पर आपका शौक़ मुझसे पचास गुना ज़्यादा था। आप जीते मैं हारी...!''

साल्हकुँअर ने झटपट उलाहना दिया, ''बात हार-जीत की नहीं, अपने-अपने शौक़ की है—शौक़ की! बचपन में इन कंकड़ों के लिए कितना उत्साह था!'' मालवणी ने आँखों -ही-आँखों में इशारा किया तो ढोला बीच ही में रुक गया। फिर वह जौहरी के सामने देखकर कहने लगी, ''सुन रे जौहरी...सौ खतों की एक ही फ़ारख़ती है कि मुझे झूठ बरदाश्त ही नहीं होता। जैसा भी हुलिया हो हू-ब-हू वही बताना। यदि तेरे ख़याल से मरवण मुझसे भी अधिक सुंदर लगे तो ढोला जी के सामने वैसी ही प्रशंसा करना। मेरे साजन जिसमें राजी, मैं पहले राज़ी! अब एक क्षण-भर की भी देर मत कर। पूँगलगढ़ के राजा-रानी मनुहार करें तो चार-पाँच दिन अधिक रुक जाना। वहाँ के तो ठाठ ही अलग हैं।''

जौहरी के प्रस्थान करने पर मालवणी पीठ घुमाकर बोली, ''जौहरी वापस आए तब तक आप महल में पधारें, मैं इस मैड़ी में ही ठीक हूँ। नींद न आए तो न आए, आपकी याद में तो कमी नहीं पड़ेगी। मैं तो आपकी याद के सहारे ही ख़ुश रह लूँगी।''

साल्हकुँअर ने कहा, ''पानी की मछली बाहर रेत पर जीवित रह सके तो मैं मैड़ी से बाहर ज़िंदा बच सकूँ! ऐसी बात फिर कभी भूल से भी मत करना। यह मेरी पहली और अंतिम हिदायत है। हमेशा याद रखना!''

मालवणी के लिए सुहाती बात थी। वैसी हिदायत के बिना भी वह ढोला की संगत एक क्षण के लिए भी छोड़ना नहीं चाहती थी। एक अबोध बच्चे की अपेक्षा ज़्यादा आसान ढोला को बहलाना था। वह जैसा चाहे वैसा उँगलियों पर उसे नचा सकती थी। उसके नचाने में स्वयं का नाचना भी शामिल था। वह उम्र ही वैसी थी। उम्र का प्रभुत्व तो मानना ही पड़ता है। भले ही राजकुँअर हो, भले ही संन्यासी!

जौहरी की आजमाई हुई बात थी कि रामस्नेही का वेश पहचानकर कोई भी हमला नहीं करता। चोर, डकैत या हत्यारा ही क्यों न हो, वेश की झलक पड़ते ही उनके भीतर की सब हिंसा और बर्बरता नष्ट हो जाती है और 'मूरत' के चरणों में धोक देकर वे सर नवाने लगते हैं। चैत मास की सुहानी धूप में जौहरी के क़दम अपने आप ही आगे बढ़ रहे थे। रुंड-मुंड दमकते सर पर सूरज का ताप असह्य होने लगता तो तर-गुलाबी गमछा ऊपर डाल लेता। एक कंधे पर मेखली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और दूसरे कंधे पर झोली। अमूल्य हीरे-मोतियों का बराबर वजन। नीचे और ऊपर दो रेशमी कुरते। मलमल की दो धोतियाँ। सोने के बटन, बहुमूल्य जड़ाव। दो अँगूठियाँ। मोतियों का एक बेशक़ीमती कंठा, स्वयं अपने लिए। मरवण को बेचने के लिए तरह-तरह के अमूल्य नगीने। उसके लिए सोने के महीन तारों से सिली मोजड़ियाँ। पन्नों से जड़ी तरह-तरह की अँगूठियाँ। सेठ-साहूकारों की हवेलियों पर माल-मलीदा गटककर वहीं मज़े से रात बिताता और सवेरे झर-झरता हलवा या खीर, माल-पूए खाकर राजी-ख़ुशी आगे की राह लगता। प्रत्येक भक्त-जन के लिए मुस्कुराहट और आशीर्वाद की कोई कमी नहीं थी। असल रामस्नेही तो था नहीं। मायापति जौहरी था! लंपट होने पर करोड़ों की माया बहने में क्या देर लगती! औरतों के रूप-यौवन की बजाय माया का लोभ ज़्यादा था। सेवा-बंदगी करने वाले भक्तों को बड़ा अचरज होता कि यह कैसा रामस्नेही जो किसी भी औरत की ओर चोर-नज़र से देखता तक नहीं! नन्ही बालिका हो या युवती, दस क़दम दूर से माँ कहकर पुकारता। लोग मन-ही-मन प्रशंसा करते।

सूई की नोंक जैसी सरकती चींटियाँ भी अंततः अपनी मंज़िल तक मज़े से पहुँच जाती हैं, फिर वे तो मनुष्य के बढ़ते क़दम थे। मरवण से मिलने का मन में अगाध उत्साह था। मालवणी के बताए आवश्यक काम के प्रति पूरी सतर्कता थी, असल तेज़ाब की बड़ी शीशी जो कपड़ों के बीच दबाकर रखी थी, उसे सुबह-शाम अच्छी तरह सँभाल लेता। कहने को तो शीशी में तेज़ाब था, पर उसमें सचमुच लाखों की माया घुली हुई थी। क्षितिज की थाह भले ही मिल जाए पर मनुष्य के द्वेष और लोभ का कहीं अंत नहीं है!

बीच राह में पूँगलगढ़ से कोस भर दूर बटोहियों के लिए एक बग़ीची थी। विभिन्न क़िस्म के फूलों की महक हवा में घुली थी। कमोद के उनमान निर्मल पानी की बावड़ी। पानी सींचने के लिए गिड़गिड़ियों की सुविधा। दसेक क़दम दूर कपड़े धोने के लिए, स्नान करने के लिए सफीट खापटे बिछे हुए। गिड़गिड़ियों के पास तीन पीतल के कलश, ताँबे के कड़े लगे हुए। मज़बूती से गुँथी हुई ईकड़ की रस्सियाँ। लंबे-चौड़े खिलापटों के पास पत्थर की कूँड़ियाँ। पीतल के पाँच-सात लोटे। धुले कपड़े सुखाने के लिए सूत की मज़बूत तनियाँ। जौहरी ने कई रजवाड़े परखे, पर ऐसी साफ़-सुथरी माक़ूल व्यवस्था कहीं नज़र नहीं आई। पूँगलगढ़ के राजा-रानी की प्रशंसा सुनी सो इक्कीस आना सही थी।

धनपत जौहरी की तुष्टि और ख़ुशी का पार नहीं था। अब तक माया के प्रलोभन की वजह से नहाने-धोने का पर्याप्त समय ही कहाँ मिलता था! झटपट चार-पाँचेक लोटे डालकर कान भिगो लेता। नहाने का नाम हो जाता। गमछे से आधा-अधूरा शरीर पोंछा, न पोंछा। तुरत-फुरत धोती लपेटी और कुरता ठसाया। आराम से रोटी खाने का भी समय कहाँ मिलता था! आज न तो कोई जल्दबाज़ी थी और न किसी भी प्रकार की उतावली। मौज-मस्ती में मज़े से कपड़े धोए। सुखाए। पहला लोटा बदन पर उड़ेलते ही रोम-रोम में ठंडक फैल गई। कलाइयाँ, भुजाएँ, कंधे, पिंडलियाँ और जंघाएँ ज़ोर देकर मसलीं तो मैल की लड़ियाँ उतरने लगीं। मानो धन-माया के साथ-साथ भरपूर मैल भी संचित किया हो! लेकिन एड़ियों और पगतलियों का मैल उँगलियों से उतरने वाला नहीं था। इधर-उधर देखा चौरस खापटे पर कई खुरदुरे पत्थर पड़े थे, मानो उन्हीं की व्याकुल प्रतीक्षा हो। झटपट खड़ा हुआ। खुरदरा पत्थर रगड़ने पर मैल छूटने लगा। एक भी पत्थर उड़क-धुड़क नहीं था। मैल उतारना बंद करके सारे पत्थरों का मिलान किया। एक ही नाप के चौकोर। एक जैसी मठाई। कभी मन करता वह पत्थर उठा ले, कभी मन करता यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्थर उठा ले। कैसे भी अमूल्य नगीने को देखते ही परख कर लेता। पर आज मैल उतारने वाले पत्थर को छाँटने में काफ़ी समय लगा। एक-एक पत्थर को मिलाकर देखा-परखा। आख़िर हैरान होकर एक पत्थर का चयन किया। तिल जितना भी फ़र्क़ नहीं। फिर भी उसे वहम हुआ कि सबसे उम्दा पत्थर का चयन किया है। उसके आनंद का पार नहीं रहा, जैसे अमूल्य हीरा अचानक मिल गया हो। पदार्थ का अपना मोल नहीं होता, मनुष्य के मन का मोल होता है! सवा-घड़ी तक पानी उड़ेलता रहा, मैल उतारता रहा। स्नान से निवृत्त होकर, गमछे से बार-बार शरीर पोंछा। रामस्नेही वाला वेश झोली में सबसे नीचे जमाया। रेशमी कुरता, मलमल की धोती, कसीदे की मोजड़ियाँ पहनीं। कमंडल को वहीं अपने हिसाब से छिपा दिया। मेखली में केसरिया पगड़ी बँधी-बँधाई जमी हुई थी। सलीके से ऊपर धरी। दोनों कानों में मिट्टी के इत्र सने फोहे दबाए। भीनी-भीनी ख़ुशबू। अमूल्य मोतियों का कंठहार जब गले में झूलने लगा तो उसका मोद-गुमान चौगुना बढ़ गया। कुरते में भी इत्र चुपड़ा। जौहरी की भरकम देह फूल से भी हल्की महसूस हुई! नहाने का ऐसा आनंद पहले कभी नहीं आया! यात्रियों के लिए ऐसा माक़ूल इंतज़ाम नवाब-बादशाहों के महलों में भी नहीं मिलता। तुस के बराबर भी कसर नहीं थी।

राज-दरबार में अता-पता किया तो एक ज़िम्मेवार सैनिक ने बताया कि मरवण तो सहेलियों के साथ सवेरे ही अपनी बग़ीची में गई, अभी तक नहीं लौटी। समाचार सुनते ही धनपत जौहरी मुड़ गया। एक सवार बग़ीची बताने के लिए साथ हो लिया। सवार को जो पुख़्ता जानकारी थी, संक्षेप में बताई, ''आप तो हीरे-मोती और मानिक-पन्नों की बातें करते हैं, हमारी मरवण बाईसा को तो ये महँगी चीज़ें ख़रीदने का बिलकुल ही शौक़ नहीं है। वह तो कपड़े भी एकदम सादा पहनती हैं। सुहाग के नाम पर लाख की पाँच-पाँच चूड़ियाँ और ललाट पर कुमकुम की बिंदी।'' सवार से विवाद करने में क्या सार! जौहरी विनम्रता से कहने लगा, ''ये बातें तू मुझ पर छोड़, मैं अपने-आप सलट लूँगा। राजकुँअरी और नगीने नहीं मँगवाए तो मुझे उलाहना देना! मेरा नाम धनपत जौहरी है। उज्जैन के धनपत जौहरी को कौन नहीं जानता! यदि फिलहाल उनके हाथ-ख़र्च की तंगी है तो मुझे रंचमात्र भी जल्दी नहीं है। जब उनकी इच्छा होगी, फिर हाज़िर हो जाऊँगा। केवल कुँअरानी के लिए ये चुनिंदा जवाहरात लाया, एक बार उनके दर्शन तो करवा दे, मुँह-माँगी बख़्शीश दूँगा... !''

सवार ने आश्चर्य से दोहराया, ''बख़्शीश... ! यदि बख़्शीश का गुमान है तो अभी दूसरे रजवाड़े की राह पकड़ें! यहाँ समय बरबाद करना बेकार है। ख़ूब तनख़्वाह मिलती है। इधर-उधर मुँह मारने की क़सम है! मिलना चाहते हो तो बिना बख़्शीश ही मिला दूँगा। हमारी कुँअरानी जी यात्रियों का बड़ा सत्कार करती हैं। तुम्हारी आवभगत में कुछ भी कमी रहे तो मुझे उलाहना देना। अब किसी दूसरे सैनिक के सामने बख़्शीश की बात भूलकर भी मत करना!''

जौहरी काफ़ी चिंतित हो गया। पछतावे के लहजे में कहने लगा, ''माफ़ करना भाई! मुझे इस रजवाड़े की चाशनी का पता नहीं था। सिर्फ़ कुँअरानी जी से मिला दे, तेरा एहसान मानूँगा... ।''

''इसमें एहसान मानने जैसी क्या बात... !'' सवार मुँह बनाकर कहने लगा, ''यह तो मेरा काम है और काम की तनख़्वाह मिलती है।''

बग़ीची के दरवाज़े से सटा हुआ एक कमरा बना हुआ था। आदर से वहीं बिठाकर वह मरवण को समाचार देने के लिए चल पड़ा। सहेलियों की मंडली में मरवण आँगन पर ही बैठी हुई थी। गोद में घायल ख़रगोश के बच्चे को प्यार से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सहला रही थी। बाज़ के ख़ूनी पंजों से बचाए बच्चे की कँपकँपी अभी मिटी नहीं थी। डर के मारे श्वेत रूई-सी जड़ों में समाया डर अभी मिटा नहीं था। बाज़ की अनुगूँज में अभी मौत की गाज सुनाई दे रही थी। आधे प्राण तो सुनते ही निकल जाते हैं। आहत ख़रगोश ने पलकें खोलकर ऊपर देखा तो बाल सहलाती बाला की भीनी आँखों में करुणा का समंदर लहराता नज़र आया। हाथ के स्पर्श में मानो हज़ार-हज़ार ममतामयी माँओं का नेह घुला हुआ हो! अब किसका डर...!

एक सहेली कटोरे में पानी लाई। निर्भय होकर पीने लगा। थोड़ा और दिल खुला! मरवण के सुंदर मुँह की ओर भूखी निगाहों से देखा। उसका इशारा मिलते ही एक सहेली कटोरी में गरम-गरम दूध लेकर आई। दूध पीते ही नन्हे ख़रगोश की अँतड़ियों में जैसे अमृत लहरा उठा हो। इधर-उधर फुदकने लगा। धाय-माँ उसे गोद में उठाकर खिलाने लगी। मरवण ने इधर-उधर चारों ओर नज़र घुमाई तो उसी समय टिवटिव करता कबीर उसके कंधे पर बैठ गया। पास ही खड़ा सवार ऐसे ही मौक़े की तलाश में था। अरदास की, "उज्जैन का धनपत जौहरी आपसे ज़रूरी काम के लिए मिलना चाहता है।" आज्ञा मिलते ही वह तेज़-तेज़ क़दमों से रवाना हुआ। धनपत जौहरी ने हर किसी से मरवण के स्वभाव की ख़ूब प्रशंसा सुनी—रूप और गुणों का कहीं आरापार नहीं है। दसेक क़दम दूर से मरवण के मुस्कुराते चेहरे की झलक मिली तो उसकी आँखें, अक्ल और दिल तीनों ही चकरा गए। औरत की ऐसी पावन छवि का तो विधात्री को भी अनुमान नहीं होगा! तीन सौ तिरपन मालवणियाँ इसके नाख़ून की भी होड़ नहीं कर सकतीं! प्रकृति के स्वप्न बिना ऐसी पवित्र कल्पना और किसकी हो सकती है! यह तो क़ुदरत के अलावा विधाता के भी वश की बात नहीं है। जौहरी तो वहीं एक ठौर खूँटे की तरह गड़ गया। न जीने की सुधि रही और न मरने की! जैसे दोनों ने संधि-स्थल की शरण गही हो! संज्ञाविहीन हालत देखकर मरवण स्वयं उसके पास आई। उसकी आँखें और अधिक फटने लगीं, मानो दोनों पुतलियाँ बाहर आ पड़ेंगी! मरवण ने एक गहरा निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "ख़रगोश के प्राण मुश्किल से वापस लौटे कि इधर जौहरी होश खो बैठा। राम जाने इस पर किसका बाण चला...!" सहेलियाँ तो सब कुछ जानते-बूझते चुपचाप खड़ी रहीं। क्या जवाब देतीं! पर चंचल कबीर से चुप नहीं रहा गया। खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, "किसका क्या, तेरा...तेरा...। नीम की शीतल छाया में सुलाकर गमछे से बयार करो, वरना यह पागल हो जाएगा...पागल! सारी उम्र तेरा नाम रटता रहेगा!"

कबीर का इतना कहना था कि सवार ने अविलंब उसे कंधे पर उठाया और नीम की छाया में सुला दिया। दो सहेलियाँ भीगे गमछे से हवा करने लगीं तो कुछ ही देर बाद जौहरी ने पलकें खोलीं। इधर-उधर टोह लेकर प्रलाप करने लगा, "ऐसी चाँदनी के रूप पर किसी रीछ के हाथों ही तेज़ाब फेंका जा सकता है! मैं तो अलबत्ता मनुष्य हूँ, जौहरी हुआ तो क्या हुआ!" इतना मंत्र सुनाकर वह वापस अचेत हो गया। त्रिकालदर्शी कबीर से आगे कुछ भी भेद छिपा नहीं रहा। लेकिन मरवण की मर्यादा के लिहाज़ से वह चुप रहा। बिल्ली, साँप और सिंह पर भरोसा किया जा सकता है, पर मनुष्य के जाए-जन्मे पर कैसे विश्वास किया जाए! वह तो छल, कपट और नीचता का ही पुतला है।

मरवण सिर्फ़ कलेवा करके ही बग़ीची में आई थी। जौहरी की हालत देखकर उसकी भूख एकदम मिट गई!...तो क्या यह जौहरी मालवणी के सिखाने से यहाँ आया? क्या पता साल्हकुँअर का भेद भी शामिल हो...! सुमति का दायरा तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अवश्य सीमित है, पर कुमति की कहीं कोई सीमा नहीं। कुमति के सामने मनुष्य का कुछ भी वश नहीं चलता। कुमति का अस्तित्व मनुष्य से अलहदा कहाँ है ? कुमति को दंड देने पर स्वयं मनुष्य ही दंडित होता है और मनुष्य को दंडित करने पर उसका शरीर ही कष्ट पाता है! सज़ा को भोगने वाला तो मनुष्य का अपना शरीर ही है! कुमति फिर अलग की अलग। सर्वनाश तो मनुष्य का ही होता है तो आख़िर इसका क्या उपाय है ? वे अपनी इच्छा हो सो करें, मैं अपनी इच्छा हो सो करूँ। मरवण सोचने लगी, वह किसी को कुछ भी तकलीफ़ नहीं देती, फिर भी वे उसका पीछा नहीं छोड़ते...! कुछ-न-कुछ हल तो अवश्य होना चाहिए, पर फ़िलहाल उसकी इतनी क्षमता नहीं है। कबीर के लिए तो इशारा भर काफ़ी है। पर दोगला मनुष्य तो समझाने पर भी समझना नहीं चाहता!

सहेलियों की मंडली जौहरी के इर्द-गिर्द खड़ी थी। दूर से ही धाय-माँ को आवाज़ देकर पास बुलाया और उसे हिदायत दी, ''जौहरी को गरम-गरम गलवाणी पिलाओ। राज की बग़ीची में कुछ गड़बड़ हो गई तो दोष अपना ही होगा। पूरा होश आने पर ही इसकी कुशल-क्षेम पूछूँगी। तब तक इसकी सेवा-बंदगी में कुछ कमी मत रखना।'' जौहरी को आधा-अधूरा होश था। मरवण के मुँह से हिदायत के बोल सुनते ही उसका जोश फिर से उमड़ा। झटके से उठ बैठा और अंट-शंट बकने लगा, ''अब मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता! एक बार, सिर्फ़ एक बार आँखें चौंधिया गईं सो चौंधिया गईं! उस चौंध के कारण मूर्छित होते ही सात पीढ़ियों की अक्ल एक साथ ठिकाने आ गई! होश-हवास में बदमाशियाँ-ही-बदमाशियाँ सूझती हैं। पर बेहोशी में एक ही झटके के साथ सारे छल-कपट जाने कहाँ बिला गए! ऐसा महसूस हुआ, जैसे सहस्र नदियों और झरनों के प्रबल प्रवाह के फलस्वरूप तमाम मल-कीचड़ मेरी अँतड़ियों से बाहर छिटक पड़ा हो। मैं यहाँ आया तो था बीस हज़ार मोहरों के लालच में। हज़ार-हज़ार जन्म भला हो मालवणी का—कि आज मेरा नया जन्म हुआ! चाँद भी जिसका रूप चुराए...वैसी सुंदर मरवण के चेहरे पर तेज़ाब छिड़कने आया था! विश्वास न हो तो अभी मेखली से निकालकर शीशी दिखाऊँ।'' फिर इधर-उधर चारों दिशाओं में देखकर सवार से विनम्रतापूर्वक कहा, ''जा रे भैया, उस कोठरी से मेरी मेखली और झोली लेकर आ। तेज़ाब वाले करतब से पहले आपको आश्वस्त करने की मंशा से असंख्य मोहरों की क़ीमत के बराबर हीरे-मोती और मानिक-पन्ने साथ लिए। आपके लिए बेशक़ीमती अँगूठियाँ और सोने के क़सीदे की मोजड़ियाँ लाया था। उनमें मशग़ूल होने के साथ ही पूरी चाँदनी बदशक्ल हो जाती और आँखों की ज्योति गलकर काले-स्याह अँधेरे में तब्दील हो जाती। फिर मालवणी का ढोला पर अखंड राज्य स्थापित हो जाता। तब हिस्सा बँटाने के लिए कोई भी नहीं बचता...!'' इतने में मेखली और झोली लटकाए सवार को आते देखा तो उतावले स्वर में बोला, ''ला रे भैया, मेरी माया मुझे सँभला! इसके लिए मैंने कितने दुख उठाए और जाने कितने अकर्म किए! आज इसे ठिकाने लगाकर ही मानूँगा। यह सारा चमत्कार मरवण के अलौकिक आलोक का है!''

अमूल्य माया के बाद कमंडल और लिबास बाहर निकाले। रामस्नेही का वेश दूर फेंका। फिर मेखली और झोली उलटकर अमूल्य नगीने गिराए। जिनमें स्वर्ण-क़सीदे की मोजड़ियाँ, बेशक़ीमती अँगूठियाँ और तेज़ाब की शीशी थी। उसका डाट खोलने की चेष्टा करते कहने लगा, ''कभी तो इच्छा होती है कि यही तेज़ाब मालवणी के चेहरे पर पूरा उड़ेल दूँ। कभी सोचता हूँ कि यही शीशी गले उतारकर सूअर वाली जून का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सफाया कर डालूँ। मनुष्य योनि में आकर अब तक मैंने कीचड़ से सूअर वाली ज़िंदगी ही भोगी है।''

सपने केवल नींद के भरोसे ही नहीं रहते, कभी-कभार वे खुली आँखों से प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, तब नींद के सपने उनके पासंग बराबर भी नहीं ठहरते। सभी मूकदर्शक खुली आँखों से एक ही सपना देख रहे थे—सहेलियाँ, सवार, कबीर और मरवण सहित। उस सपने से बड़ी सच्चाई मानवीय संसार में दूसरी कुछ नहीं थी। शीशी का डाट खुलने के साथ ही धनपत जौहरी कीचड़ के सूअर वाली ज़िंदगी नष्ट करने ही वाला था कि कबीर ने तेज़ी से पंख फड़फड़ाकर एक ही झपट्टे में शीशी दूर उछाल दी। जिस दूब के बड़े गुच्छे पर वह औंधी हुई, वह जलकर भस्म हो गया और गंदे सूअर की जून साबुत बच गई! उसका केश तक नहीं जला!

रानी उमादे देवड़ी का महल। राजा पिंगल, धनपत जौहरी, धाय-माँ, नन्हा ख़रगोश और मरवण इत्यादि सभी मौजूद थे। सुग्गा कबीर दीवार में गड़ी सुरंगी खूँटी पर बैठा बहुत ही ध्यानपूर्वक सबकी बात सुन रहा था। राजा-रानी तो बार-बार आग्रह करके थक गए, पर जौहरी का फ़ौलादी संकल्प नहीं बदला सो नहीं बदला। हर बार एक ही टेर दुहराता रहता कि केवल मरवण की ख़ातिर यह सब अमूल्य जवाहरात लाया। अँगूठियाँ और मोजड़ियाँ सिर्फ़ उसी के लिए बेहद शौक़ से बनवाईं। वह तो अब इस घिनौनी माया की ओर देखना भी नहीं चाहता। सारी उम्र झूठ-ही-झूठ बोलता रहा, पर अब सपने में भी झूठ बोले तो उसके रोम-रोम में कीड़े पड़ें, कोढ़ उघड़े। लाया तो सचमुच बेचने के लिए ही था। पर बेचने के बहाने उसके मुँह पर तेज़ाब की शीशी औंधा कर, अपना कौल निबाहना चाहता था। लेकिन मरवण की मासूम छवि और कुदरत की तरह उसके विराट स्वरूप की झलक मिलते ही पहले वाला जौहरी तो अपनी खोल में ही विलुप्त हो गया। माया की अमिट लालसा और होश की ज़िंदगी जितने बरस जीता रहा, नई समझ का लेशमात्र भी उसके पास होकर नहीं फटका। उसे अब भी पता नहीं कि मूर्छा की बेहोशी कितनी देर तक रही—क्षण भर तक या घड़ी भर तक, उतने ही वांछित समय में उसी पुरानी जून में मेरा नया जन्म हुआ। मेरी संचित माया के अनंत घूरे के सामने कीचड़ की यह ढेरी तो एक तुस के बराबर भी नहीं है। यदि आप सब मिलकर इसका सार्थक उपयोग करें तो मेरी ज़िंदगी सफल हो...!

फिर व्यंग्य सनी मुस्कान के लहजे में कहने लगा, ''कौल निबाहने के उद्देश्य वाली बीस हज़ार मोहरें तो फिर अलग हैं! मालवणी की अमानत के हिसाब से रखें तो पहल आपकी है, वरना सूर्य-ग्रहण के पुण्य की ख़ातिर तो बामनों की कोई कमी नहीं है, छौंक भी नहीं लगेगा! निर्णय आप ही को करना है, जब भी करें। अब तो नन्हे-मुन्ने ख़रगोश की तरह मरवण के गुरुकुल में पढ़ेगा, सीखेगा और आत्मसात् करेगा।'' फिर रानी की ओर देखकर भिखारी की तरह याचना की, ''इससे अधिक मेरी समझ नहीं है, औक़ात भी नहीं है। जैसा हूँ, हाज़िर हूँ। पुचकारें तो आपकी मर्ज़ी, दुत्कारें तो आपकी मर्ज़ी। अब मेरे सामने जीने का कोई दूसरा विकल्प नहीं है।''

सबकी जिह्वा जैसे तालू से चिपक गई हों। किसी को कुछ भी जवाब नहीं सूझा। समझ के परे की बात थी! आज के सूर्य की रोशनी में यह दीप्ति कहाँ छिपी थी, किसी को भी नज़र नहीं आई! और अभी नज़र आई तो पिछला समग्र उजाला, इस दीप्ति के तले दब गया। सबको ही ऐसा महसूस हुआ कि अपनी ही गतिमति से चलते समय का वेग एकाएक रुक गया हो। दुख-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संताप के चौदह बरस भुगतने आसान, पर रुके हुए समय के एक क्षण को भी धकेलना कठिन है, अत्यंत कठिन! समय साँस लेता है कि नहीं लेता, वही जाने, पर अभी सबकी साँस क़रीब-क़रीब थम गई थी कि इतने में कबीर ने जाने क्या सोचकर पूछा, ''एक बात तो बताइए जौहरी-महाराज कि मालवणी के इस नीच कार्य के लिए ढोला जी की अनुमति भी थी क्या?''

कायाकल्प होने के पश्चात् जौहरी को सच बोलने की ख़ातिर अलग से कुछ सोचने की ज़रूरत कहाँ थी! वह स्वयं पहल करके अपने मन में घुमड़ती यह बात बताना चाहता था। कबीर के पूछने पर उसने जवाब दिया, ''बिलकुल ही अनुमति नहीं थी और यों पूरी सहमति थी। फिर भी उनका क़सूर नहीं है, क़ुदरत का ही क़सूर है! जैसा नाम, वैसा ही गुण। वे केवल दिखने में ही भोले नहीं हैं, मन से भी भोले हैं। बच्चे के समान बच्चे। मालवणी के रूप-यौवन और उसके छल-छिद्र का ऐसा चमत्कार हुआ कि उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं रहा। वे अलग रहते हुए भी शामिल हैं और शामिल रहते हुए भी अलग हैं। मालवणी की अपूर्व सुंदरता के वशीभूत वे माँ-बाप का रिश्ता ही भूल गए। क़ुसूरवार होते हुए भी वे ज़िम्मेदार नहीं हैं! सौंदर्य के जादू का असर..अफ़ीम के नशे से गहरा होता है! लेकिन मेरा मन कहता है कि जिस क्षण भी उन्हें अपने भिन्न वजूद का एहसास होगा, तब वे किसी के भी प्रभाव में नहीं रहेंगे। लाख मालवणियाँ भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकेंगी। यदि जल्द ही कुछ उपाय नहीं हुआ तो मालवणी नरवरगढ़ की महारानी होगी। फिर न तो ढोला जी की दाल गलेगी, न राजा नल की और न रानी दमेती का कुछ वश चलेगा! संत या भले आदमियों की बजाय दुष्टों की मनमानी जल्दी पार पड़ती है। मेरे वश रहते जब तक ज़िंदा रहूँगा, दुष्ट-दुर्जनों का सामना करता रहूँगा। यह नई ज़िंदगी किसी भी सूरत में व्यर्थ कहना-सुनना, ना ना, करना-कराना हो, आप ही को करना है। मैं तो सिर्फ़ ताबेदार हूँ, कबीर का भी ताबेदार! पक्षियों में जितना ज्ञान होता है, यदि उतना मनुष्यों में हो तो दुनिया की रंगत ही दूसरी होती...!''

रानी माँ के पलंग की छाँह में दुबका नन्हा ख़रगोश सामने आकर कहने लगा, ''बाज़ के ज्ञान का परचा तो प्रत्यक्ष देख लिया! अब बगुलों, कौओं और गिद्धों के ज्ञान का परिणाम भी पहचान लीजिएगा...एक भी प्राणी जीवित क्या रह जाए!''

ख़रगोश की भोली बात सुनकर कबीर गंभीर लहजे में कहने लगा, ''नन्हे ख़रगोश! अब तक तेरी धुकधुकी शायद मिटी नहीं है। बावरे, इन हिंसक पक्षियों के साथ नाहर, चीते, साँप, रीछ और लोमड़ियाँ भी जुड़ जाएँ तो कुछ भी विशेष नुक़सान नहीं होगा। यह समस्त दुनिया तो मनुष्यों के चलाए चलती है। जब तक वे नहीं सुधरें, तब तक कुछ नहीं हो सकता। इन मालवणियों के राज में धाय-माँ कि मरवण कभी सुखी नहीं रह सकतीं। यह राज्य-सत्ता का अमिट नियम है।''

मरवण के मन में कई वातचक्र साँय-साँय मचा रहे थे। उन्हें एक तरफ़ धकियाकर, माँ-बाप की चिंता का ख़याल करके बोली, ''दूसरों के किसी बेहूदे काम से मैं तो सपने में भी दुखी होने वाली नहीं हूँ और न धाय-माँ को भी दुखी होने दूँगी, यह तो तुझसे भी छिपा हुआ नहीं है।''

कबीर का बोध क्षण-क्षण बढ़ता ही रहता था। खूँटी से उड़कर रानी माँ के कंधे पर बैठकर कहने लगा, ''मेरी प्राण-दाता मरवण, तेरी संगत के बाद ही मैंने कई बातें सीखी-समझी हैं, फिर भी बहुतेरी बातें अज्ञात हैं। प्रत्यक्ष दिखने वाली चेतना की तह में कई अदृश्य परतें होती हैं। उनके आर-पार किसी ऋषि-मुनि को कुछ सूझे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तो सूझे। मनुष्य के वश की यह बात नहीं है। बरसों चेष्टा करने के बावजूद मनुष्य स्वयं को पहचान ले तो बड़ी बात है! और यों भी मनुष्य सामान्य रूप से स्वयं को ग़लत ही समझते रहे हैं। यह धनपत जौहरी सबके सामने खड़ा है, बरसों बाद इसे अपना नया स्वरूप नज़र आया... !''

''अभी पूरा कहाँ नज़र आया, धीरे-धीरे प्रत्यक्ष होता रहेगा।'' धनपत जौहरी को अपने मन की बात बताने का अवसर मिला तो उससे रहा नहीं गया, ''अभी तो श्रीगणेश ही हुआ है। आगे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने पर अपने आप परख हो जाएगी। जंगल में जगह-जगह उपले तो ढेर नज़र आते हैं, लेकिन चाँद-सितारे किसी बिरले भाग्यशाली के ही हाथ लगते हैं!'' यह मंत्र सुनाकर धनपत जौहरी बारी-बारी से सबके चेहरे देखने के बाद कहने लगा, ''नहीं समझे हो तो अब स्पष्ट समझा देता हूँ कि आकाश के बेचारे चाँद-सितारे तो मरवण के नाख़ून-नाख़ून में दमकते रहते हैं। अबोध बचपन में भाँवरें खाने के बाद भी किसी एक ढोला के हाथ आसानी से नहीं लगते। बरसों की तपस्या के बाद भी कहाँ भाग्य में बदे होते हैं! वरना कोरी-मोरी सेज के भरम, मन बहलाओ तो बहलाओ। कौन मना करता है... ?''

धनपत जौहरी की अंट-शंट बातें सुनकर राजा, रानी और धाय-माँ तो बेहद ख़ुश हुए। लेकिन मरवण की सूरत पर लाज की झाँईं पुत गई। महल की हवा मानो उलट गई हो। आहत ख़रगोश का धड़कता हृदय धीरज नहीं रख सका तो ज़बरन मुस्कुराने की चेष्टा करते हुए कहने लगा, ''वाह रे धनपत जौहरी! तू देर से सोया और उठा जल्दी! हमारे सिवाय दूसरा कोई भी तेरी बातों पर विश्वास नहीं करेगा। न करे तो न करे... ! मुझ अकेले का विश्वास ही तेरे लिए काफ़ी है। दुनिया की परवाह करने पर तो मामूली काम भी पार नहीं पड़ता।''

राजमहल की हवा वापस सीधी बहने लगी। सबके चेहरों पर आभा झलकने लगी। पर आगे बात जारी रखने के लिए किसी को कुछ नहीं सूझा। चुपचाप मन-ही-मन सोचने लगे। रानी माँ के दिल में बेचैनी होने लगी तो उसके होंठ फड़कने लगे, ''कोरी-मोरी बातों से पेट भरता हो तो दुनिया में कोई भी भूखा-प्यासा न रहे।'' फिर धाय-माँ की ओर देखकर कहने लगी, ''जसोदा, तुझे तो हमेशा बिना कहे ही अपने-आप सब सूझता है, आज भूल कैसे हुई! धनपत जौहरी की मान-मनुहार तो कर। खाने की जो भी इच्छा हो, वह पकवान बना। आज का सूरज इसी के प्रताप से उगा है। अब मुझे मरवण की अधिक चिंता नहीं है। मालवणी की ज़्यादा चिंता है। साल्हकुँअर की चिंता है। राजा नल और रानी दमेती की चिंता है। केवल अपने ही परिवार के सदस्यों की चिंता करने से पार नहीं पड़ता। माँ की ममता का दायरा असीम होना चाहिए। उसमें कीड़े-मकोड़ों की चिंता भी शामिल हो, तभी माँ होना सार्थक है।''

कहने को तो रानी उमादे ने धाय-माँ को कह दिया कि धनपत जौहरी की मान-मनुहार करे। पर दूसरे ही क्षण उनका विचार बदल गया। धाय-माँ के साथ-साथ राजा पिंगल, रानी और मरवण इत्यादि सभी जुड़ गए। जब वह पैदल चलकर नरवरगढ़ से यहाँ आया, राह की कठिनाइयाँ बरदाश्त कीं और अंत में सब-कुछ सही-सही बता दिया, अपना क़सूर क़बूल कर लिया। मरवण माने चाहे न माने, वह बात अलग है। फिर भी अमूल्य मोती, नगीने जड़ी बेशक़ीमती अँगूठियाँ और सोने के क़सीदे की मोजड़ियाँ वह लाया तो था ही। भले आदमी को क्या पता कि मरवण खाने-पहनने के निमित्त एकदम सादगी से रहती है। सभी कह-कहकर हार थक गए, वह अपने विचार से रंचमात्र भी नहीं डिगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मायापति जौहरी मन-ही-मन बहुत शर्मिंदा हो रहा था कि इतने बड़े राव-उमराव उसकी ख़ातिरदारी में जुटे हैं, मानो कोई आत्मीय आ गया हो। बड़प्पन या दिखावा तो दूर-दूर तक नहीं। उसके आने पर सारी मानसिक व्यथा समाप्त हो गई, तब वे क्यों किसी बात की कसर रखें। भोजन करते समय धनपत जौहरी को ऐसा महसूस हुआ कि आज पहली बार एक-एक कौर पेट की बजाय उसकी आत्मा में सीधा उतर रहा है! भोजन करने के पश्चात् सभी व्यक्ति वापस उमादे के महल में एकत्रित हुए। कबीर और नन्हा ख़रगोश भी, जैसे वे राज-परिवार के प्रमुख सदस्य हों। रानी माँ ने एक पखवाड़े तक ठहरने की मनुहार की तो जौहरी राज़ी-ख़ुशी मान गया। अब नरवरगढ़ पहुँचने पर जो होगा सो होगा, जिसका उसे रत्ती-भर भी डर नहीं था। जब धाय-माँ ने अपने भीतर का डर उजागर किया कि धनपत-बीर कभी भी पहुँचे, उसकी मौत निश्चित है। मालवणी किस तरह मारे, वह बात अलग है, पर मरने में कोई कसर बाक़ी नहीं है। वचन से डिगने वाले को वह स्वप्न में भी माफ़ नहीं करती। वह केवल कौल-वचन से ही नहीं डिगा, अपने साथ बँध भी गया है।''

धनपत जौहरी से यह भेद तनिक भी छिपा नहीं था। निःसंकोच जवाब दिया, ''यहाँ आकर आप सबके दर्शन करने पर, जीने का सही मतलब समझने पर, सबसे बड़ी बात यह हुई कि मरने का डर एकदम मिट गया। जब कोई मरने से नहीं डरता, उसे कोई नहीं मार सकता! पहले मुझे मौत का डर ही सबसे ज़्यादा लगता था, यह कोई कम बात है—सहस्र चक्रवर्ती राज्य से भी बढ़कर। माया की लालसा के अलावा मैं पहले दूसरी कोई बात समझता ही नहीं था। माया नहीं तो वह मनुष्य ही क्या... ! अब माया का मोह टूटने पर ही मैं सर्वथा मुक्त हुआ हूँ। बाड़ी में ख़रगोश का उपचार करती मरवण की सूरत देखकर ऐसा महसूस हुआ कि धरती पर एक ऐसा नया सूरज उगा, जिसमें चंद्रमा की शीतलता छलक रही है। मैं फिर रानी माँ के सामने अरदास कर रहा हूँ कि मेरे इस नए-आत्मबोध के बदले मरवण यह अकिंचन भेंट स्वीकार करे तो मेरी यात्रा सार्थक हो!''

इस बार मरवण के होंठ हिले, ''जौहरी मामा, मुझे बार-बार मनुहार करवाने का बिलकुल मोह नहीं है। मेरे राज्य की प्रजा तो पेट भरने की ख़ातिर आठों पहर मेहनत करती है और मैं ऐसे नगीनों का श्रृंगार करूँ तो मेरे मरण में क्या कसर रह जाएगी! देह ढकने के लिए वस्त्र तो पहनने ही पड़ते हैं, यह मनुष्य की लाचारी है या यों कह लें कि उसका शिष्टाचार है, इससे अधिक की चाह रखना तो अपराध है! यदि पूँगलगढ़ राज्य के ख़ज़ाने में यह भेंट मर्यादाजनक हो तो पिता जी जानें और आप जानो। पर मुझे तो इन नगीनों की बजाय धरती की मिट्टी ज़्यादा अमूल्य लगती है, जिसमें प्राणियों के पेट की आग बुझाने के लिए घास उपजाती है, अनाज पैदा होता है और गाछ-बिरछों की छाया उत्पन्न होती है, जो राह चलते बटोहियों को विश्राम की ख़ातिर आमंत्रित करती है, हाथ हिलाकर आह्वान करती है। यदि थोड़े में काम चल जाए तो अधिक की लालसा करना पाप है, पाप का मूल है! मैंने तो क़ुदरत के गुरुकुल में, पंछी-जानवरों की पाठशाला में, यही पाठ पढ़ा है, उसे हमेशा याद रख सकूँ, तो सुख-संतोष में कोई कसर नहीं रहेगी!''

जौहरी के आश्चर्य और आनंद में भी कोई कसर नहीं रही। इतनी उम्र पाकर भी किसी मनुष्य के कंठ से ऐसी वाणी सुनने को नहीं मिली! जाने किस लोक में आ गया... ? किस लोक में... ! मरवण की बातें तो सत्य से भी परे की सच्चाई हैं! उसने पिंगल राजा के चरणों का परस करके अपनी समूची माया स्वीकार करने की अरदास की तो पिंगल राजा ने हामी नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भरी। थोड़ी देर के लिए किसी दूसरे विचार में खो गया। कुछ देर बाद सुगंभीर स्वर में कहने लगा, 'अभी तो राज्य के ख़ज़ाने में कुछ भी कमी नहीं है, जिस दिन कमी पड़ेगी, तुझे अवश्य याद करूँगा। तब तक तेरी यह अमानत हमारे ख़ज़ाने में सुरक्षित रहेगी। पहले मुझे भी अन्य राजाओं की तरह लूट-खसोट की बेहद लालसा रहती थी, पर रानी की बारंबार सीख और उसकी संगति से मेरे कई हिंसक एवं बर्बर नख-दंत झड़ गए। यों कहने को तो मरवण मेरी बिटिया है, पर उससे बड़ा गुरु मुझे आज तक कोई नहीं मिला। न तो उसने शब्दों के द्वारा मुझे कुछ सिखाया और न मैंने कुछ सुना...।''

मरवण के मन पर जैसे अरावली पहाड़ ढह पड़ा हो। दबे स्वर में बोली, ''जीसा...! इन शब्दों की बजाय आप कोड़े से चमड़ी उधेड़ते तो अच्छा था...!''

''न हो तो इन्हें कोड़े के प्रहार ही मान ले! आज मौक़ा मिला है, मुझे रोक मत। कई दिनों से मन-ही-मन घुट रहा हूँ। धनपत जौहरी की मुलाक़ात के बाद मेरा दुख-संताप जाने कहाँ गुम हो गया! तेरी करनी और तेरे स्वभाव से एक ऐसी महक फैलती है जिसके द्वारा मेरे काले-बहरे अंतस् में उजाला-ही-उजाला समा जाता है, वरना इतनी माया के लिए तो मैं हज़ार मनुष्यों की हत्या करने में भी नहीं हिचकता। गुरु भी तरह-तरह के होते हैं, बिटिया। कभी-कभार तो चींटी भी गुरु का काम करती है। संसार में न तो गुरुओं की कोई कमी है और न चेलों की। आज से ही यह धनपत जौहरी मेरा नया गुरु बन गया! इस पर दूसरों की बात तो अलग, स्वयं धनपत भी विश्वास नहीं करेगा। मेरे ख़याल से सबके दिखते ज्ञान की बजाय एकांत का अबोला ज्ञान ज़्यादा बेहतर है! जिसे सीखने के लिए आँखों और कानों की तासीर ही अलग होती है। इतने दिन तो संकोच में ये बातें मैंने गुप्त रखीं और आज उजागर करने में मुझे रंचमात्र भी शंका नहीं है। सच्ची बात के क़बूल नहीं करने से ही दुनिया में सब गड़बड़झाला होता है। लेकिन ये राजा-महाराजा और नवाब-पातशाह इतने अभागे हैं कि उन्हें सच्चाई नज़र भी तो नहीं आती! इस हिसाब से इन राव-उमरावों से बड़ा कंगाल और कोई नहीं होता...!''

स्वामी के मुँह से ये बोल सुनकर रानी उमादे आश्चर्यचकित हो गई। इतने बरस साथ रहने पर भी राजा का यह स्वरूप तो कभी सामने नहीं आया! मनुष्य तो सर्वत्र पहेलियों के सजीव पुतले होते हैं! एक पहेली सुलझे और दूसरी तैयार। फिर भी रानी को राजा का यह नया स्वरूप काफ़ी अच्छा लगा।

इतनी देर तक धनपत जौहरी जाने किस विचार में खोया था! अचानक चौंककर उसने बारी-बारी से सबके चेहरे देखे फिर राजा-रानी के सामने मुख़ातिब होकर कहने लगा, ''मुझे इसी वक़्त विदा कीजिए, वरना सब काता-पींजा कपास हो जाएगा। सबसे तेज़ घोड़ा अभी इसी वक़्त इनायत कीजिए...।''

सबको धनपत की यह बात सुनकर अचरज तो अवश्य हुआ। पर रानी के अलावा किसी को भी कुछ नहीं सूझा। मुस्कुराकर कहने लगी, ''अचानक तुझे यह अनोखी बात कैसे सूझी। पूरे पंद्रह दिन रुकने के लिए हामी भरी थी...!''

''लेकिन अब एक क्षण भर की भी देरी नहीं करना चाहता। इतनी देर तक मन-ही-मन ऐसा महसूस हुआ कि मैंने पिछली सारी जिंदगी सोते-सोते ही बिता दी। दिन के समय तो हरदम जगा रहना ही पड़ता है। पर माया की चिर लालसा के वशीभूत रात को भी आधी-अधूरी नींद में व्यापार के दाँव-पेंच सोचता रहता। सच पूछो तो मैं जागा तो सिर्फ़ आज ही हूँ। मेरी आँखें तो आज ही खुली हैं, रानी माँ की अमृतवाणी सुनकर कि उन्हें मालवणी की चिंता है, साल्हकुँअर की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चिंता है, राजा नल की चिंता है, और रानी दमेती की चिंता है। उनके ख़याल से अब केवल परिवार की चिंता से ही काम नहीं चलेगा। आख़िर उनकी चिंता का निवारण मेरे कार्य-कलापों पर ही निर्भर करता है। यदि पंद्रह दिन तक इस स्वर्ग का आनंद लेता रहा तो फिर नर्क में भी ठौर नहीं मिलेगी! मालवणी के क्रूर, विनाशकारी स्वार्थ का फंदा नहीं कटने पर इस स्वर्ग में सर्वत्र आग लग जाएगी, आग! मेरा सौभाग्य कि इस स्वर्ग को बचाने की ख़ातिर मैं निमित्त बनूँगा। मरवण के साथ किसी भी तरह का धोखा होने पर, यह दुनिया जीने के योग्य ही नहीं रहेगी। संसार भर की समस्त माँओं की छाती का दूध इसी के अंतस् में भरा है! मुझे सुमति सूझी ज्यों दूसरे दुष्टों को सुमति सूझे-न-सूझे। मालवणी अपने रूप-यौवन की प्यास बुझाने के लिए कुछ भी कसर नहीं छोड़ेगी! उसके जादू-टोने से मदहोश साल्हकुँअर को मुक्त करना ही होगा। अब तो मुझे सौ-सौ कोस दूर तक मौत का डर नहीं लगता, दूसरों की तो बिसात ही क्या, प्रत्यक्ष मौत भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकती! ऐसा आत्मविश्वास जगने पर हज़ार सिंहों का सामना मज़े में कर सकता हूँ...!''

बाक़ी किसी को भी बीच में बोलने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। पर नन्हे ख़रगोश की जीभ वश में नहीं रही तो वह मुस्कुराकर कहने लगा, ''बौरा तो नहीं गया...लगता है कि तेरा सर ज़रूर चकरा गया है। बेचारा मनुष्य किस बूते पर सिंह के बच्चे का भी मुक़ाबला कर सकता है! बाज के ख़ूनी पंजे चितारने पर मेरा कलेजा तो अब भी काँपने लगता है! पागलपन छोड़ और अक्ल से काम ले...।''

धनपत जौहरी ने होंठों पर उछली मुस्कान को दबाने की कोशिश नहीं की। मुस्कुराते-मुस्कुराते ही कहने लगा, ''भोले ख़रगोश, पागल मनुष्यों के आसरे ही यह जैसी-तैसी दुनिया बची हुई है, वरना बुद्धिमानों के भरोसे तो कभी की नष्ट हो जाती। इतने बरस बुद्धि से ही काम लिया और माया का कचरा-ही-कचरा इकट्ठा किया—अकूत! यहाँ आने पर ही यह बावलापन सूझा। इस पर पूरा विश्वास रख, शंका मत कर, वरना...।''

इधर जो जौहरी की जीभ अटक गई, और उधर ख़रगोश को जल्दबाज़ी भी काफ़ी थी, बीच ही में टोकते हुए कहा, बस, बस, अब एक आखर भी मत बोलना। इतनी हिम्मत है तो तुझे ज़रूर सफलता मिलेगी, तेरी जो इच्छा होगी, वही होगा, मैं घास खाकर पेट भरता हूँ, कैसी भी तेज़ भूख लगी हो, अखज के पास होकर नहीं फटकता...मेरे निर्मल मन की कामना तुझे ताक़त देगी। कहे तो मैं तेरे साथ चलूँ...।'' ख़रगोश का ऐसा जोश और साहस देखकर सभी के अधरों पर आशा की किरण दमकी। आशा के सहारे ही नौ लाख तारों जड़ा आकाश ऊपर टिका हुआ है! फिर कबीर कब पीछे रहने वाला था। टिवटिव करते हुए बोला, ''नन्हे ख़रगोश पंख के बिना तू उड़ नहीं सकेगा। क़ुदरत की मेहर-माया से मुझे पंख मिले हैं, इसलिए मेरे साथ चलने से कुछ-न-कुछ ठीक ही रहेगा। लेकिन सबकी राय के बिना मैं इंद्रलोक भी जाने को तैयार नहीं। ऐसा सुख पड़ा कहाँ है...!''

कबीर की बात जौहरी को पसंद आई। हामी भरते हुए उसी क्षण बोला, ''यह बात मुझे भी नहीं सूझी। पंखों की वजह से पक्षियों की अक्ल भी उड़ने लगती है! जीत का आधा डंका तो अभी बज उठा। तो अब ढील किस बात की! आख़िर तो काम करने पर ही पूरा होता है। लेकिन बातों का महत्त्व कम नहीं। कैसे भी मुश्किल काम की धार तो बातों से ही तेज़ होती है, जिस तरह अभी-अभी कबीर से बात हुई।'' धनपत जौहरी को कई बातें छू गईं। जिनके बूते पर ही तो उसका कायाकल्प हुआ। मरवण की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओर देखते हुए कहने लगा, ''क्यूँ मरवण, कबीर की इस मंशा के लिए तो तेरी रज़ामंदी होगी...।''

कैसी भी गहरी और झीनी बातों का जवाब देने के लिए मरवण को कुछ भी देर नहीं लगती थी। तब यह तो बहुत आसान बात थी। सहज भाव से कहने लगी, ''मैं किसी पर भी ठौर या एहसान जताना नहीं चाहती। ख़रगोश, कबीर या हिरणों की जोड़ी, किसी पर भी मेरा दबाव नहीं है, सब अपने-अपने दायरे में स्वतंत्र और मुक्त हैं। मैं जो भी काम करती हूँ, सिर्फ़ अपने सुख व आनंद के लिए करती हूँ। करुणा या एहसान की भावना मुझमें दूर-दूर तक नहीं है। जिसकी जो इच्छा हो सो करे। सच पूछो तो साल्हकुँअर और मालवणी के प्रति मेरी तनिक-सी भी नाराज़गी नहीं है। जिस तरह मैं अपनी समझ से चलती हूँ, उसी प्रकार वे भी अपनी समझ से चलते हैं। अपनी समझ को ही अंतिम मानने से ही सारा झंझट होता है। दुनिया के किसी भी पंडित या विद्वान को यह अधिकार नहीं है कि वे दूसरों की समझ को ग़लत बताएँ। किसी तीसरे पक्ष को उनकी पंचायती करने का अधिकार है या नहीं, सचमुच मैं नहीं जानती। मैं ज़्यादा बातें समझती भी नहीं, पर जो भी समझती हूँ, उन पर मेरा अडिग विश्वास है। फिर भी उम्र और अनुभव के कारण ज्ञान बढ़ता रहे, बदलता रहे तो विश्वास भी बदलता रहता है।''

इतनी देर में धनपत जौहरी का मत भी बदल गया, ''इतना सोच-विचार करने की ज़रूरत नहीं है। यदि कबीर यहाँ पर नहीं होता तो मुझे उसका साथ कैसे मिल पाता! अब जो कुछ भी करना है, मुझे ही करना है, अकेले ही करना है। या तो इधर या उधर!''

राजा पिंगल की सवारी का सफ़ेद घोड़ा रानी के कहने पर सईस तत्काल ले आया था। और उधर जौहरी कैसे भी अपरिचित घोड़े को अपने अनुकूल कर लेता था, जैसे उस पर लगातार सवारी करता रहा हो।

सोच-विचार में डूबा जौहरी बग़ीची के पास आया तो एक बार और नहाने की इच्छा हुई। देह पर पानी उड़ेलते ही न जाने कैसी-कैसी बातें सूझती रहती हैं! पर अब तो बाहर-ही-बाहर नहाने से पार नहीं पड़ेगा, भीतर से नहाने की तरकीब सीखनी होगी। भीतर मैल हो तो बाहर कितना भी स्वच्छ रहो, बात बनती नहीं है। असली पूजा-पाठ और धर्म का मतलब इतना ही है कि भीतर उजाला जगमगाए! बाहर की टीमटाम और कृत्रिम उजाले से भीतर अधिक अँधेरा घुटता है। इस तरह के मंथन की वजह से अजाने ही लगाम को झटका लगा तो घोड़ा हवा को पीछे छोड़ता हुआ उड़ने लगा। पर धनपत जौहरी का मन घोड़े से भी आगे उड़ रहा था।

मालवणी का एक ख़ास स्वभाव था कि पानी के पहले मज़बूत मेड़ बाँधना। धनपत जौहरी को सिखाकर भेजने से वह आश्वस्त नहीं हुई। अपने विश्वस्त सैनिक को भेजकर ऊमर सूमरा नामक मशहूर डकैत को बुलवाया। सावचेती अपनी है, किसी की बपौती नहीं। बुजुर्गों की दूसरी सीख कि ख़रगोश का शिकार करना हो तो शेर की व्यवस्था साथ रखनी चाहिए। और तीसरी सीख सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण कि अपनी छाया का भरोसा करना भी बहुत घातक है। जनानी बग़ीची में झूलने के बहाने अकेली ही रवाना हुई तो ऊमर सूमरा तैयार मिला—बुर्ज में छिपा हुआ। दुफ़सली सोलह गाँवों की जागीर का लोभ देकर कहा, ''पूँगलगढ़ की मरवण के अपहरण का किसी को भी सुराग़ न लगे। मारकर ज़मीन में गाड़े, चाहे उससे ब्याह रचाए, तेरी इच्छा। यदि उसकी छाया का भी पता चल गया तो तेरा कीमा बनवा दूँगी, ध्यान रहे—मेरा नाम मालवणी है, मालवणी! पाताल में भी छोड़ूँगी नहीं। जो भी मर्ज़ी हो, साफ़-साफ़ बता दे।''

ऊमर सूमरा की मंशा भी यही थी। दो साल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से मरवण के ही सपने देख रहा था। इस सीमा तक उसके रूप-यौवन की चर्चा हवा में फैली हुई थी। यदि सोलह गाँवों का ठिकाना हाथ लग जाए तो डकैती से पीछा छूटे। हरदम जान की जोखिम बनी रहती है। मुस्कुराते हुए कहा, ''यह तो मेरे मन की ही बात हुई। पाँच-सात बरस उसके रस का पूरा स्वाद चखकर, गुठली का निशान तक मिटा दूँगा। मुझे पहले जागीर नहीं चाहिए। जब आपको पूरा विश्वास हो जाए, तभी याद दिलवाऊँगा। असली डकैत हूँ, लूट-

का काम है। बड़े-बड़े मायापतियों का बोझ हल्का करने के लिए ही डकैती का शौक़ है। मरवण का समाचार सुनने के बाद अपना वचन याद रखिएगा।'' इतना कहकर आदरपूर्वक कोरनिश करके रवाना हो गया। कुछ ही दूरी पर सैनिक तैयार खड़ा था। उसके पीछे-पीछे चल पड़ा, मानो उसी का भाई या रिश्तेदार हो। मालवणी ने होंठों-ही-होंठों में कहा, ''काँटा तो काँटे से ही निकलता है!'' फिर रानी बनने के सपने सँजोती रंग-मैड़ी की ओर मंद गति से क़दम बढ़ाने लगी।

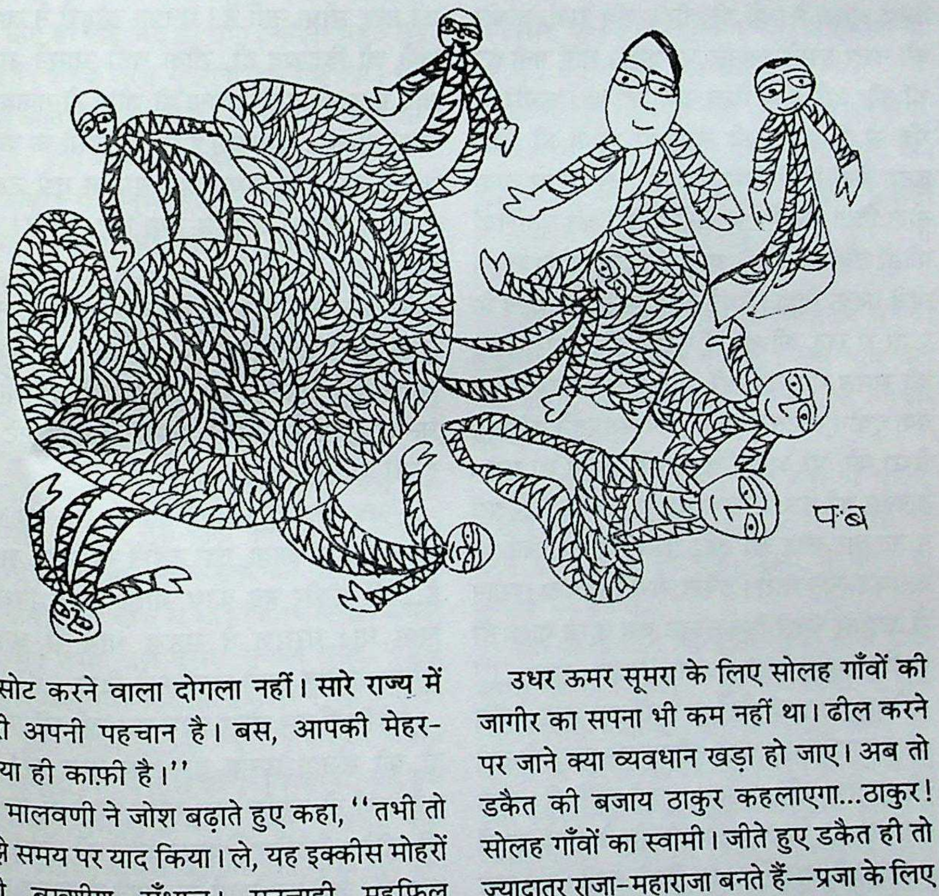

खसोट करने वाला दोगला नहीं। सारे राज्य में मेरी अपनी पहचान है। बस, आपकी मेहर-माया ही काफ़ी है।''

मालवणी ने जोश बढ़ाते हुए कहा, ''तभी तो तुझे समय पर याद किया। ले, यह इक्कीस मोहरों की बख़्शीश सँभाल। मनचाही महफ़िल करना...।'' लेकिन ऊमर सूमरा ने मोहरों की ओर हाथ नहीं बढ़ाया, ''आपकी छत्र-छाया ही पर्याप्त है, दूसरी कोई कमी नहीं। दक्षिणा लेना बामनों

उधर ऊमर सूमरा के लिए सोलह गाँवों की जागीर का सपना भी कम नहीं था। ढील करने पर जाने क्या व्यवधान खड़ा हो जाए। अब तो डकैत की बजाय ठाकुर कहलाएगा...ठाकुर! सोलह गाँवों का स्वामी। जीते हुए डकैत ही तो ज़्यादातर राजा-महाराजा बनते हैं—प्रजा के लिए अन्नदाता एवं ग़रीब-नवाज़!

ऊमर सूमरा अपने सुनहरे सपने का पीछा करता हुआ, ऊँट की मोहरी थामे, बग़लें नचाता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुआ पूँगलगढ़ का रास्ता तेज़ी से काट रहा था। आगे सपना...पीछे सपना... सपनों को वश में रखने वाली कला ही अलग है। जिसकी पहचान डकैतों जितनी और किसी को नहीं होती। ऐसी ऊमर सूमरा की मान्यता थी।

दूसरे दिन मरवण की बग़ीची के मुख्य दरवाज़े पर अपरिचित ऊँट का अरड़ाना सुनते ही कबीर ने अपनी बिरादरी के बहादुरों को ललकारते हुए कहा, ''साथियों, यम आ गया है, अपनी वीरता दिखाना...! पहले मैं उसका पता कर आऊँ। दरवाज़ा बंद होने की भनक सुनते ही टूट पड़ना।'' ऊमर सूमरा ने ज्यों ही भीतर पाँव रखा, कबीर की नज़र उसके ललाट पर पड़ी। भौंहें तनी हुई थीं और आँखों में भैरव नाच रहा था। कबीर के मुँह से टिवटिव की ललकार सुनते ही चारों तरफ़ तोतों ने पाँखें फड़फड़ाकर दुश्मन पर धावा बोल दिया। कबीर ने दोनों आँखों की पुतलियाँ फोड़ीं तब तक सात-आठ तोतों ने उसका साफ़ा नीचे पटक दिया। उघड़े माथे पर तीखी चोंच के प्रहार से लहू की धाराएँ फूट पड़ीं। ऊमर सूमरा की समझ में कुछ नहीं आया कि अचानक यह क्या दुर्योग घटित हुआ...। मज़बूत रहने की ख़ूब चेष्टा की, पर आँखों के सामने अँधेरा छा गया। तलवार की मूठ पर हाथ धरा ही था कि पहरेदारों ने तलवार छीन ली और दूसरे ही क्षण पेट पर कसकर लात मारी। डकैत नीचे गिर पड़ा। म्यान से तलवार बाहर निकालकर वार करने वाला ही था कि मरवण ने दूर से कहा, ''ठहर...ठहर...!'' पहरेदार का हाथ जहाँ था वहीं रुक गया। चोंच की टकाटक और पंखों की फड़फड़ाहट से तोते को मरवण की आवाज़ सुनाई नहीं दी। नीचे गिरते यमदूत के ललाट पर कबीर के तीखे प्रहारों से लहू की धाराएँ रेत पर गिरने लगीं। तब तक मरवण ने पाँचेक क़दम आगे बढ़कर ज़ोर से आवाज़ लगाई, ''रुक जा, कबीर...रुक जा!'' अब एक भी वार किया तो वह मेरे माथे पर ही लगेगा..!'' फिर किसकी हिम्मत की मरवण का कहा टाले। यम को छोड़कर सब तोते हवा को मथने लगे। मरवण की सहेलियाँ भी पीछे दौड़ती आईं। मरवण का इशारा मिलते ही उसे खाट पर सुलाया। जगह-जगह से बहती धाराओं के फलस्वरूप बिस्तर लथपथ हो गया। मरवण ने धाय-माँ से भीगे स्वर में कहा, ''मेरा मुँह कभी देखा नहीं क्या...! जल्दी करो, ख़रगोश की तरह ही इसका उपचार करना है।'' बाक़ी सब तो चुप रहे। पर कबीर से बोले बिना नहीं रहा गया। ज़ोर से बोला, ''यह दुष्ट, ख़रगोश की तरह सीधा नहीं है! धनपत जौहरी ने जाते-जाते जो हिदायत दी, ठीक वही सामने आई। यदि मैं उसके साथ रवाना हो जाता तो ग़ज़ब हो जाता, ग़ज़ब...! अच्छा हुआ कि उसी के कहने पर मैं यहाँ ठहर गया। यह यमदूत तुझे उड़ाने आया है और तू उस पर दया कर रही है! यह कैसा न्याय है... ?''

मरवण उसे पुचकारती हुई कहने लगी, ''अभी तू ग़ुस्से में उबल रहा है। समझाने पर भी तू समझ नहीं सकेगा। यह शख़्स मेरी बग़ीची में घायल हुआ है। पहले इसकी बेहोशी टूटे तो दूसरी बात सूझे!''

''यह बात तो सबको पता है कि यह तेरी शरण में नहीं आया, तुझे उड़ाने या मारने आया है...।'' कबीर का क्रोध थोड़ा-बहुत निथरने लगा था। मरवण ने सहज भाव से कहा, ''जिसका दंड तुमने जमकर दे दिया...।''

सहेलियाँ इस क़दर काम कर रही थीं, मानो दो की बजाय उनके दस-दस हाथ हों! दो सहेलियाँ तो उसके घाव साफ़ करने में तन्मय थीं। तीनेक सहेलियाँ रेशम जलाने की चेष्टा कर रही थीं। जले हुए रेशम के दाबने से बहता लहू एकदम बंद हो जाता है, मानो फूटे घड़े पर लाख लगाई हो। दो सहेलियाँ ओढ़नी के पल्लू से बयार कर रही थीं। ख़ून रुकने पर घायल बंदे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को चौलड़ी जाजम पर सुलाया। लहू से लथपथ गद्दे को बदलकर दूसरा बिछाया। अभी होश नहीं आया था। मरवण ने अपने हाथ से थोड़ा पानी पिलाया। बेहोशी की हालत में ही उसने करवट बदली। एक जलती हुई-सी आह निकली। फिर दूसरे ही क्षण वह स्वत: ही सीधा हो गया। पलकें खोलने की चेष्टा की तो घायल पुतलियों में टीस उठी! मरवण ने एक सहेली को भेजकर हकीम को बुलवाया था। उसके पास जड़ी-बूटियों से तैयार किए हुए कई मरहम थे। अच्छी तरह देख-भाल कर लगाए। कुछ देर बाद ही लहू बंद हो गया। थोड़ी-बहुत राहत मिली। शहद घुला गुनगुना दूध पिलाया। थोड़ा होश आते ही वह बोला, ''मेरी नज़र कहाँ चली गई?...अब मेरा जीना बेकार है...!''

कबीर में मनुष्य जितनी सूझबूझ नहीं थी। वैसा शिष्टाचार भी नहीं था। उसके मन में बस बात सूझनी चाहिए, फिर मनुष्य की तरह धीरज रखना उसके वश की बात नहीं थी। तुरंत जवाब दिया, रंचमात्र भी उधार नहीं रखा, ''तेरा जीना और मरना दोनों ही बेकार हैं। तेरा नाम ऊमर सूमरा ही है न... ?''

उसने हामी भरते हुए कहा, ''हाँ, मेरा नाम तो यही है। पर तुझे कैसे पता चला? मैंने तो किसी तीसरे कान भनक तक नहीं पड़ने दी...।''

कबीर की चोंच में जाने कितने सवाल मचल रहे थे। उसी क्षण दूसरा सवाल पूछा, ''सच बताना मालवणी और साल्हकुँअर ने तुझे सिखला कर यहाँ भेजा है...?'' इस बार तुरंत जवाब नहीं मिला। मानो कुछ सोच-विचारकर वह रुक गया हो। संभवतया चेतना और मूर्छा के बीच कहीं आधी-अधूरी जागृति हो। थोड़ी देर बाद अपने-आप ही ऊमर सूमरा के होंठ हिले, ''मेरी आँखों की क़सम, इस कांड के बारे में साल्हकुँअर जी को कोई जानकारी नहीं है। जैसे मेरे लच्छन थे, वैसी सज़ा मिल गई...।'' जवाब सुनते ही मरवण की नस-नस में बिजली कौंध उठी। बमुश्किल डगमगाते हौसले पर नियंत्रण रखा।

कबीर आगे भी कुछ सवाल पूछने वाला था कि मरवण ने झुँझलाते हुए कहा, ''अब बस कर कबीरा! संज्ञाविहीन घायल मानुष यों ही प्रलाप करता है। उस पर विश्वास करना उचित नहीं...।''

कबीर का तो रेशा-रेशा फड़क रहा था, ''तू तो बढ़कर डींग हाँक रही थी कि प्राणी-मात्र आज़ाद और मुक्त है, फिर मुझ पर यह कैसा दबाव है?'' कबीर के सवाल में सबका ही मनपसंद जवाब था। लेकिन पंछी के हौसले की बराबरी मनुष्य नहीं कर सकता।

मरवण को भी कबीर का सवाल अच्छा लगा, लेकिन फ़िलहाल विवाद करना ठीक नहीं था। मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहा, ''पहले इसे होश में आने दे, फिर जितने चाहे सवाल पूछना, मैं मना नहीं करूँगी...।''

''तू भले ही मना कर, मैं समझदार मनुष्यों की तरह मानने वाला नहीं हूँ। अब पता चल गया कि तू तो अधकुचले साँप का भी उपचार करना चाहेगी...!''

इस बार मरवण ममता भरे स्वर में बोली, ''साँप में भी प्राण होते हैं रे कबीरा! वह भी मरने से डरता है! उसकी डाढ़ों में ज़हर तो क़ुदरत की देन है...!''

उसी समय दोनों की बातचीत के बीच ऊमर सूमरा के होंठ हिले, ''हाँ, मालवणी ने मुझे सिखलाकर भेजा था और मैं सोलह गाँवों की जागीर के बदले मरवण को उड़ाने ही आया था और आँखों की नज़र गँवा बैठा! अब चक्रवर्ती साम्राज्य भी मिले तो किस काम का! ज़िंदा रहते हुए भी मरे जैसा ही हूँ। मुझे बचाकर यह किस जन्म का बदला लिया...!''

इतना कहकर ऊमर सूमरा ने बैठने की चेष्टा की, लेकिन दूसरे क्षण वापस लुढ़क गया और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काफ़ी देर तक बेहोश रहा। तब मरवण ने जाने क्या सोचकर हकीम से पूछा, ''आपको क्या लगता है, नज़र लौट आएगी... ?''

कुछ देर सोचने के बाद हकीम ने उत्तर दिया, ''दस दिन से पहले कुछ भी जवाब नहीं दे सकता। दोनों पुतलियों की काली बिंदियों में गहरे घाव हो चुके हैं, फिर ऊमर सूमरा की क़िस्मत... !''

''कुछ भी आशा नहीं है... ?''

''दस दिन बीतने पर शायद कुछ आशा बँधे... ।''

हकीम का यह जवाब सुनकर मरवण के ललाट में लकीरें-सी खिंच गईं। कुछ सोच-विचार करने के बाद पहरेदार की तरफ़ देखकर बोली, ''माँ और जीसा को कहना कि मैं, धाय-माँ, सभी सहेलियाँ, ख़रगोश और कबीर दस दिन तक यहीं रहेंगे। रसोई यहीं बन जाएगी। वे दस दिन बाद ही आएँ तो उपचार करने में सुविधा रहेगी, फिर उनकी इच्छा... ।''

किसी दूसरे ने तो कुछ भी प्रतिवाद नहीं किया, पर कबीर धीरज खो बैठा। मुँह फिराकर भारी मन से बोला, ''अब यहाँ एक घड़ी भी मेरा मन नहीं लग सकता! किसी को भी एतराज़ न हो तो मैं धनपत जौहरी के पास जाना चाहता हूँ... ।''

मरवण ने मुस्कुराते हुए कहा, ''मुझे एतराज़ है! तेरे बिना ऊमर सूमरा के इलाज में मेरा मन नहीं लगेगा... ।''

''इस यमदूत की ख़ातिर ही तो मैं दूर जाना चाहता हूँ। तेरे इलाज का यही मतलब है कि हमने जो काम किया, वह नहीं करना चाहिए था... । हमसे जाने-अजाने भारी भूल हुई।''

''यह बात तो मैंने कही नहीं... । तुमने अपनी समझ के अनुसार अच्छा ही काम किया... ।''

कबीर पूरी बात समझे बिना पीछा नहीं छोड़ना चाहता था। बीच में ही टोकते हुए बोला, ''जब हमने अच्छा काम किया तो तुझे उपचार करने की क्या ज़रूरत है... ?''

''वह मेरी समझ है... ।'' मुस्कान को दबाने की चेष्टा करते हुए मरवण ने कहा।

कबीर आसानी से पीछे हटने वाला नहीं था। स्पष्ट कहा, ''आजकल तेरी गूढ़ बातें मेरी समझ में नहीं आतीं... ।''

''इसीलिए तो मैं तुझे रोकना चाहती हूँ!'' फिर कुछ क्षण रुककर कहने लगी, ''अब नहीं रुके तो तेरी मर्ज़ी। मैं बुरा नहीं मानूँगी... !''

''यही तो तेरी झीनी समझदारी है। अपनी मर्ज़ी से तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता। और तेरी मर्ज़ी के अलावा हमारी मर्ज़ी है ही कहाँ! मुझे भी उपचार के लिए कहे तो जुड़ना पड़ेगा। ज़िंदा रहने पर तुझसे इतनी चर्चा तो हुई, वरना बिल्ली की ओजरी में अब तक पच-पचाकर ख़त्म हो जाता।'' फिर वह दूर उड़ते हुए ज़ोर से खिलखिलाकर हँसा। मरवण जान-बूझकर ज़ोर से तो नहीं हँसी, फिर भी उसके गुलाबी अधरों पर एक मुस्कान खिल उठी, जैसे गुलाब के फूल से कोई किरण उगी हो! सबकी आँखों में एक झिलमिलाता जादू छा गया। अचानक ऊँट के अरड़ाने से उस झिलमिलाते जादू में विघ्न पड़ गया। धाय माँ ने पहरेदार को आदेश दिया तो वह ऊँट को अपनी ठौर बाँधने चला गया। पहुँचने पर घास डाली होगी। पानी भी पिलाया होगा। पहरेदार को लौटते देखकर ऊँट का अरड़ाना लाजिमी था।

अचानक ऊमर सूमरा को आधे-अधूरे होश में एक शंका उपजी कि वह भूल से किसी दूसरी बग़ीची में तो नहीं आ गया। इस तरह सेवा-बंदगी करने वाले आत्मीय कहाँ से जुट पड़े? एक गहरा निःश्वास छोड़कर पूछा, ''यह बग़ीची मरवण की नहीं है क्या... ?''

धाय माँ ने मरवण की इच्छा जाने बिना ही जवाब दे दिया, ''हाँ, यह बग़ीची मरवण की ही है।'' जवाब सुनने के बाद डकैत फिर चुप हो गया। आस-पास के रजवाड़ों में ऊमर सूमरा का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाम सुनकर हिरण लँगड़े हो जाते थे! चारों ओर शेर की तरह उसकी धाक थी और आज सूओं की चोंच से घायल क्षत-विक्षत होकर बेहोश लेटा है। जिसकी आँखों में अँधेरा भर गया है। बचकर भाग निकलना तो दूर, हुँकार तक नहीं हुई। मरवण और उसकी सहेलियों के उपचार से वह कुछ-कुछ स्वस्थ होने लगा था। कभी होश तो कभी बेहोश। कुछ सोचने के बहाने, ललाट में लकीरें खिंचने लगीं कि दर्द टीस उठा। जोश के उफान में एक बार फिर होंठ हिलने लगे, ''डेढ़ बरस का हुआ तो माँ गुज़र गई, फिर माँ की तरह सेवा-बंदगी करने वाली यह कौन है... ? मरवण इशारे में मना करे, उससे पहले ही एक सहेली के कंठ से छिटक पड़ा, ''ख़ुद मरवण... और कौन... ?''

सर्वथा अविश्वास की बात कैसे सुनाई पड़ी। काँपता-सहलाता सवाल होंठों से उछल पड़ा, ''ख़ुद मरवण... ! जिसे मैं... ।'' गहरी मूर्छा फिर छा गई। उपचार करने वाले हाथ अतिशय सतर्कता बरतने लगे। भीमकाय प्रचंड देह निर्बल शिशु की तरह संज्ञा-विहीन पड़ी थी। तरह-तरह के संयोग और तरह-तरह के परिणाम, कब घटित होते हैं, कौन घटित करता है, अब तक किसी को सही पता नहीं चला। फिर भी मनुष्य को ज्ञान का मुग़ालता कम नहीं है!

समय तो अपने हिसाब से चलता है। वह न तो किसी का लिहाज़ रखता है और न किसी से बेरुख़ी। पल, घड़ी ढलते-ढलते पूरा पखवाड़ा बीत गया। आँखों की ज्योति के अलावा ऊमर सूमरा एकदम स्वस्थ हो गया। चलने लगा। ख़ुद नहाने लगा। खाने लगा। पीने लगा। वही पहरेदार हाथ पकड़कर घुमाता था। नज़र के अतिरिक्त आँखों में न घाव, न टीस और न ही कोई निशान। एक बार जाने क्या सोचकर पहरेदार से पूछा, ''क्यों रे भैया, सूरज तो नियत समय पर उसी तरह उदय होता है, उसी तरह अस्त होता है... ?''

''इसमें क्या संदेह... ! एक क्षण की भूल भी खट सकती है भला... !''

''हाँ, यह बात तो निश्चित है। जानते-बूझते यों ही पूछ लिया। अब एक बार भी उगते और डूबते सूरज को देख लूँ तो सारे संसार की माया लुटा दूँ उस पर। सोलह गाँवों की जागीर तो एक तिनके बराबर भी नहीं है। पहले न चाँद की परवाह करता था और न सूरज की। उगता है तो उगे, डूबता है तो डूबे! क़ुदरत का ऐसा ही ढर्रा है। उपले जितनी भी परवाह नहीं करता था। आँखों की जोत बुझने पर चाँदनी और उजाले का महातम समझ में आया। अब तो आँखें हरदम खुली रखूँ तब भी काला-स्याह अँधेरा और पलकें मूँदूँ तब भी अथाह अँधेरा! आँखें फूटने पर ही दिखने की ज़रूरत महसूस हुई। अब तो न हथेली दिखती है, न नौ लाख तारे और न आकाश ही नज़र आता है। न करील, न खेजड़ी और न नीम। चाँद, सूरज और आकाश तो बड़ी बात, एक बार चींटी भी जी भर देख लूँ तो मनुष्य की जून सार्थक हो जाए। आस-पास माँ-बहिनों की बोली तो सुनता हूँ, पर अलग-अलग चेहरों की बजाय सपाट अँधेरा! यदि अंधे की तरह बहरा भी हो जाता तो इतने दुख की बात नहीं थी। तरह-तरह की झीनी-मीठी वाणी सुनाई पड़ती हैं, लेकिन सूरत देखने का कोई उपाय नहीं... ! क्यों रे भाई, काशी से एक मशहूर वैद्य जी आ रहे थे, उनकी क्या ख़बर है... ?''

''कल दोपहर तक आने की बात सुन रहा हूँ तो ज़रूर आएँगे। हमारे राजा-रानी का कहा, भगवान भी नहीं टाल सकते। वैद्य जी की तारीफ़ तो बहुत सुनी है। फिर आपका भाग्य... ।''

नामजद डकैत ने एक गहरा निःश्वास छोड़ते हुए कहा, ''मेरे दुर्भाग्य का अब कोई उपाय नहीं है। मन-की-मन में रह जाएगी। एक बार नई माँ की सूरत तो देख लूँ... !'' आगे कुछ कहने के लिए वह जानकर चुप रहा या उसका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गला रुँध गया, इसका भेद कौन जाने! आँखों से टप-टप आँसू टपकने लगे।

धनपत जौहरी आधी रात ढलने पर हवेली पहुँचा, तब तक किसी को भी उसके आने का पता नहीं चला। राजा पिंगल का घोड़ा इतना समझदार था कि घुड़सवार की मंशा के बिना न तो हिनहिनाता और न ठिकाने पहुँचने पर एक टाप भी फटकारता। पूँछ से मक्खियाँ उड़ाने के अलावा इधर-उधर हिलता तक नहीं। मुख्य दरवाज़े का कड़ा खटखटाते ही हवेली की मालकिन ने किवाड़ खोले। चेहरे पर आभा तो झलकी, पर घोड़े की हालत देखते ही दासी को जगाने के बाद हालिक को जगाया। हवेली का स्वामी हालिक को लगाम थमाकर निश्चिंत हो गया। लक्ष्मी ने भोजन के लिए पूछा तो धनपत ने कहा कि खाकर आया है। एक ही पलंग पर साथ सोने के बावजूद शरीर में थकान का पार नहीं था। लेटते ही नींद आ गई। और न लक्ष्मी का स्वभाव ही ऐसा था कि बार-बार पूछताछ करे। और यों भी बात बताने के क़ाबिल हो-न-हो, जौहरी कुछ दुराव नहीं रखता था। भोजन की तरह बात पचाने में भी लक्ष्मी का कोई जवाब नहीं था, जैसे पत्थर को कहा हो। पूँगलगढ़ के लिए विदा होते समय भी उसने सच्ची बात ही बताई। लक्ष्मी ने पहली बार पति को बुरा काम करने की मनाही की थी। एक बार इशारा करने के बाद वह आगे कुछ भी नहीं कहती थी। दुनिया से अलग ही उसे औरत का स्वभाव मिला था।

तब पति ने मुस्कुराते हुए कहा, ''कमाई के लिए सब टेढ़े-मेढ़े रास्ते सीधे ही होते हैं। उनमें अच्छे-बुरे का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।'' लक्ष्मी ने तो अपने मन की बात कही, पर जौहरी ने अपने धंधे का ग़ुर समझाया।

लेकिन दो घड़ी रात रहते जब पति उठ बैठा तो फिर पत्नी से भी सोया नहीं गया। तब बासी मुँह धनपत ने सबसे पहले यही बात बताई,

''लक्ष्मी! तुझे आसानी से विश्वास नहीं होगा कि पूँगलगढ़ प्रस्थान करते समय जो तूने बात कही थी, उसे हमेशा के लिए गाँठ बाँध ली कि सपने में भी बुरी कमाई नहीं करूँगा। और अब तुझसे पूछकर ही सारी माया सत्कर्मों के लिए ही ख़र्च करूँगा।'' लक्ष्मी ने तुरंत जवाब दिया, ''इसके लिए मुझे पूछने की भी ज़रूरत नहीं। मैं तो पहले भी इस बात के लिए तकरार करती रही हूँ। आज सुमति आई सो ही बेहतर है। जब जागो तभी सवेरा। आज पोथियाँ बाँचने की मेरी मेहनत सार्थक हुई है...।''

''अभी कहाँ हुई, अब होगी। तू सच थोड़े ही मानेगी कि जिस तरह सूरज की अदृश्य तपस्या से दुनिया का समस्त अँधेरा लुप्त हो जाता है और सर्वत्र उजाला जगमगाने लगता है। उसी तरह मरवण के रूप-सौंदर्य की झलक मिलते ही आँखों के आसरे भीतर दुबका हुआ समूचा अंधकार नष्ट हो जाता है। मैं पूँगलगढ़ गया तो था अमानुष जून लेकर और वापस लौटा गंगा-सी पुनीत काया रखकर! मैं तो वह मनुष्य ही नहीं रहा! नितांत दूसरा जन्म लेकर आया हूँ। राजा एवं रानी माँ से इसी वक़्त मिलना ज़रूरी है, वरना आज मेरी अपनी गीता, तुझे सुनाता! छोटे-मोटे महाभारत तो जगह-जगह लड़े जाते हैं, पर उन्हीं के अनुरूप अलग-अलग गीताएँ भी रची जाती हैं।'' इतना कहकर जौहरी ने एक नई दृष्टि से पत्नी की ओर देखा तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि लक्ष्मी के योग्य वह अब सच्चा पति बना है। पारस-पत्थर की तरह, मरवण की तरह पारस-काया भी होती होगी। जिसके ज्योति-स्पर्श से भीतर का अंतस् पूर्णतया सोने का बन जाता है। फिर जाने क्या सोचकर लक्ष्मी के दोनों गालों पर दो चुंबन जड़कर कहने लगा, ''तू मरवण से कम थोड़े ही है! पर तेरी असल पहचान ही कहाँ हुई? तेरी अनुमति हो तो जाऊँ...? तभी मुझे शांति मिलेगी।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लक्ष्मी ने होंठों की बजाय उस मौक़े पर आँखों से हामी भरी। और वह अत्यंत ख़ुशी के साथ हवेली की एक-एक सीढ़ी उतरने लगा। गली के पार ओझल होने के बाद भी कुछ देर तक वह उधर ही देखती रही जैसे उसकी कामना फलीभूत हो रही हो।

धनपत जौहरी को यह पता था कि राजा-रानी घड़ी-सवा घड़ी रात रहते उठ जाते हैं। और साल्हकुँअर व मालवणी दो-ढाई घड़ी चढ़े उठते हैं, तब तक राजा-रानी से पूँगलगढ़ की सारी बातें कर लेगा। राजा पिंगल, रानी उमादे, धाय-माँ और मरवण जैसे श्रेष्ठ मानुष सूरज और चाँद दोनों मिलकर भी तलाश करें तो नहीं मिलते! मानों उनकी नस-नस में लहू के साथ-साथ अमृत भी बहता हो! छल-कपट का नाम तक नहीं जानते। और इधर मालवणी छल-छिद्दर की ही पुतली! कोई भी, किसी भी काम से

मिलने आता राजा-रानी की मनाही नहीं थी। तिस पर धनपत जौहरी की बात ही अलग थी। कई बार राज्य के ख़ज़ाने की मर्यादा रखी थी उसने।

राजा-रानी को सूचना मिलते ही जौहरी को भीतर आने की अनुमति मिल गई। राजा अपनी प्रजा से न मिले तो किससे मिले? तिस पर धनपत जौहरी तो सचमुच बड़े मौक़े पर आया। बहू को अब तो पा-लागन और आशीष के निमित्त बहुमूल्य आभूषण देने ही होंगे। अब तक रोष किया, वही बहुत है! इकलौते राजकुँअर की युवरानी का दुलार तो रखना ही होगा। उम्रभर ऐसे थोड़े ही निभ सकती है! धनपत जौहरी से बेशक़ीमती हार लेने ही पड़ेंगे। उपेक्षा और आत्मीयता का परस्पर बैर है। इस तरह दूरी रखने पर और अनदेखा करने पर मरवण के शुभागमन की तो मन में ही रह जाएगी! उसके अभाव में समूचा राजमहल सूना-सूना रह जाएगा। रूप-यौवन के मद में फ़िलहाल दोनों ही आत्म-विस्मृति में डूबे हुए हैं! अंततः माँ-बाप को तो अपनी गरिमा रखनी ही होगी। बाल-विवाह के संबंध में राजा-रानी का क़सूर भी कम नहीं है। पोकर जी की यात्रा के बाद ढोला को विस्तार से सारी बातें बतानी तो चाहिए थीं, फिर वह किसी भी सूरत में दूसरी शादी के बारे में सोचता तक नहीं। सुनते हैं कि मरवण बहुत समझदार है, धीमे स्वभाव की है। जैसा मीठा नाम, वैसा ही मीठा स्वभाव! राजा-रानी के पावन चेहरों की झलक मिलते ही धनपत जौहरी की आँखें पहले तो भर आईं, फिर आँसू ढलकने लगे। भीतर घुटन महसूस हुई तो वह जार-जार रोने लगा। हाथ जोड़े लगातार रोता रहा। जौहरी की ऐसी हालत देखकर राजा-रानी बेहद घबरा गए। रानी से धीरज नहीं रखा गया तो विदग्ध स्वर में पूछा, ''बात क्या हुई...आख़िर बताने से ही पता चलेगा! तेरी हवेली में तो सब राज़ी-ख़ुशी हैं... ?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जौहरी की तो जीभ ही नहीं उथली। जैसे लकवा मार गया हो। तब राजा का धीरज ढह पड़ा। उसके चेहरे को लाड़ से सहलाते हुए पूछा, ''क्या व्यापार में बेहद घाटा लग गया या हवेली में बड़ी चोरी हो गई या डकैतों ने सब-कुछ लूट लिया? अभी सैनिकों को पीछा करने के लिए भेजता हूँ। आज पहली बार तुझे इस तरह रोते देखा। ज़रूर कोई बड़ा हादसा हुआ होगा। बता...जल्दी बता... ?''

कुछ देर तक जौहरी बच्चे की तरह गमछे से आँसू पोंछता रहा। फिर बड़ी मुश्किल से कहने लगा, ''मैं राज और राम दोनों का भारी कसूरवार हूँ, पहले पर्याप्त दंड दिलवाएँ तो शायद कुछ बता सकूँ। सचमुच, मुझे फाँसी की सज़ा मिले, तब भी कम है। पहले सूली पर चढ़ाने का आदेश दीजिए तो अपना क़सूर बताऊँ... !''

राजा-रानी दोनों उदास हो गए कि किसी गहरे सदमे से जौहरी का दिमाग़ चकरा गया लगता है, तभी उसे बोलने की भी सुधि नहीं रही। रानी उसे दिलासा देते हुए कहने लगी, ''निःसंकोच बता, तुझे डरने की ज़रूरत नहीं है। हमारा दिमाग़ तो अभी ठिकाने पर है, सारी बातें सुने बिना कैसे आदेश कर दें... !''

''मैंने अपराध ही ऐसा किया है, फिर आपके अलावा और कौन आदेश करेगा... ?''

''बावरा तो नहीं हो गया?'' आख़िर राजा भी धीरज खो बैठा। झुँझलाते हुए कहा, ''तेरे कहने से क्या होता है... ? पहले तेरा क़सूर तो सुन लें, फिर उसी वक़्त खरा न्याय कर देंगे। अब तू पहेलियाँ मत बुझा। हमारे अंतस् में हाहाकार मचा है... !''

अब कहीं जौहरी का मन स्थिर हुआ। शुरू से लेकर विदाई तक वह ब्योरेवार समाचार सुनाता रहा, तब तक राजा-रानी ने पलकें तक नहीं झपकाईं। जैसे खुली आँखों से सपना देख रहे हों! और बोलते समय जौहरी को ऐसा महसूस हुआ, मानो सोते हुए प्रलाप कर रहा हो। काठ की पुतली जैसे अपनी चेतना के बावजूद सारा वृत्तांत सुना रही हो और सामने बैठी पाषाण मूरतें किसी इतिवृत्त का आखर-आखर सुन रही हों। कानों में निरंतर बहता हुआ अमृत रोम-रोम में घुलने लगा। सब कुछ बताने के बाद वह चुप हुआ, तब भी उसे लग रहा था कि वह बराबर बोलता जा रहा है और दूसरी तरफ़ राजा-रानी को भी ऐसा महसूस हुआ कि वे निर्बाध जौहरी की वाणी सुनते जा रहे हैं। बोलने-सुनने की सार्थकता इसी प्रकार प्रकट होती है!

कुछ देर तक तीनों मूक बैठे रहे। जाने कितना समय बीत गया, किसी को भी सुध नहीं थी। अचानक राजा की तंद्रा टूटी। चौंककर पूछा, ''यह बात अच्छी तरह जान लेने के बाद कि तू तेज़ाब डालकर उसे अंधा और बदसूरत करना चाहता था, उसने उलटे तुम्हारा उपचार किया, अपने हाथों से सेवा की? तुझे हथेली के फोड़े की तरह रखा! राजा, रानी, धाय माँ, सभी सहेलियाँ और स्वयं मरवण को भी यह जानकारी थी कि तू क्या अपराध करने आया है, फिर भी उन सबके चेहरों पर तनिक भी तनाव नज़र नहीं आया, यह सच बात है कि सपना? तू लाख बार भी कहे, तब भी हमें भरोसा नहीं होगा। मनुष्यों की दुनिया में ऐसी अकल्पनीय बात एकदम झूठ है! कहीं यह तेरी नई चाल तो नहीं है... ? मनुष्य के जाए-जन्मे हैं, विश्वास करें भी तो कैसे? और वे सभी भी मनुष्य की औलाद हैं...मनुष्य की!''

धनपत जौहरी भी असमंजस में पड़ गया कि सच्ची बात को कब तक सहारा देकर खड़ी रखे! लोगों को झूठी बात पर कितनी जल्दी विश्वास हो जाता है और सच्ची बात कितनी मुश्किल से समझ में आती है! पहले से भी अधिक पुरज़ोर लहजे में कहने लगा, ''स्वयं की नज़रों से प्रत्यक्ष देखी-बरती सच्चाई शायद आसानी से न कही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाती हो, फिर भी इसमें राई बराबर भी झूठ नहीं है, आप मानेंगे मेरी यह बात... ?''

''मानेंगे रे जौहरी, हज़ार बार मानेंगे... ! स्वयं को पूरा विश्वास दिलवाने की ख़ातिर तुझ पर अविश्वास किया ! तू तो आज की बात कह रहा है, हमें तो मरवण की बाल-सूरत देखकर ही यह विश्वास हो गया था कि वह किसी ऊँचाई तक पहुँचेगी ! तभी तो उसके लिए छटपटा रहे हैं।'' दमेती रानी थोड़ी देर ठहरकर कहने लगी, ''पर एक बात बिना मसाला लगाए साफ़ -साफ़ बताना...क्या उमादे रानी को मरवण की बजाय मालवणी की अधिक चिंता है ! उन्हें मेरी चिंता है ! राजा जी की चिंता है ! ऐसी ख़ामख़याली पर भरोसा करने वाली दुनिया है कहाँ... ? तुझे मरवण की क़सम हमें सच बात ही बताना ! किसी मिथ्या आस के सहारे जीने की अब शक्ति बची नहीं है रे धनपत... !''

धनपत जौहरी नगीनों का ऊँचा पारखी था। और सामने बैठे बेजोड़ रत्नों की भी उसे सही परख थी। मुस्कुराते हुए कहने लगा, ''आपकी ठोकरें खाया हुआ हूँ। यदि मैं झूठी बात कहता तो आपको तुरंत विश्वास हो जाता। सच्ची बात पर ही हर व्यक्ति को शंका होती है। यदि शंका न हो तो वह सच ही क्या ? पंछी-जानवरों की दुनिया में सच-झूठ का झंझट नहीं होता। मनुष्यों की दुनिया के अलावा सच-झूठ का मसला किसी लोक में नहीं है। इंद्रधनुष की तरह मनुष्यों की दुनिया में सच-झूठ के अनेक रंग होते हैं। मरवण के मन का पहला और अंतिम सच आपके सिवाय और कौन जानता है... ?''

''मैं जानती हूँ और मेरे प्राणेश्वर जानते हैं... ।'' इस एलान के साथ ही मालवणी और साल्हकुँअर वातचक्र की तरह राजा-रानी के रंग-महल में घुसे, मानो किसी अनहोनी सच की चपेट में फँसे हों ! मालवणी के कंठ से मंद-मंद शंख-ध्वनि सुनाई पड रही थी, ''धनपत जौहरी ! तेरा सच जल्द ही बासी पड़ गया ! आज चाँदनी तेरस की रात कबीर ने ऊमर सूमरा के जो समाचार सुनाए, उन पर हमारी बजाय माँ और जीसा को पहले अटूट विश्वास होगा। मुझे ही कुमति सूझी की मरवण का हरण करने या मारने की ख़ातिर उसे पूँगलगढ़ भेजा ! सोलह गाँवों की जागीर तो सुग्गों के हमले में जाने कहाँ गुम हो गई और अभागा डकैत तोते की तीखी चोंच के प्रहारों से अपनी आँखें खो बैठा। मरवण और उसकी सहेलियों के अथक उपचार से बच गया सो गनीमत है। धनपत जौहरी का बौना सच तो ऊमर सूमरा की सच्चाई के सामने कुछ भी नहीं है। यह रामायण बहुत बड़ी है। आपका आदेश होने पर दस बार सुना दूँगी। पर अभी एक क्षण की देर भी मेरे लिए असह्य है। सोलह घोड़ों का रथ जुतवाकर किरणों की तरह पूँगलगढ़ चलिए, वरना दोनों ही सिर पटक-पटककर प्राण त्याग देंगे... ।'' किसी अदृश्य टोने-टोटके में फँसे दंपति ने पाँव पकड़कर सिर्फ़ एक बार ही इस तरह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिर पटका कि माँ-बाप का कलेजा चूर-चूर हो गया। बाँहें पकड़कर खड़ा किया, जैसे उनमें तीन-तीन हाथियों का बल समा गया हो। खड़े होते ही ढोला ने राजा को गलबहियों में जकड़ लिया और मालवणी रानी के गले से लगकर जार-जार रोने लगी। रुँधे स्वर में कहने लगी, ''अभी चलो माँ, मरवण से मिले बिना मेरी साँस ही निकल जाएगी। बातों के लिए सारी उम्र पड़ी है। कबीर के साथ मेरे प्राण तो पूँगलगढ़ पहुँच चुके हैं। देर होने पर प्राण और शरीर अलग-अलग हो जाएँगे। यही हाल आपके लाड़ले कुँअर का है। पूछताछ के लिए बाद में वक़्त-ही-वक़्त है—अभी तो उड़ने जैसा उपाय कीजिए। आप दोनों के विश्वास पर सोलह घोड़ों का रथ जोतने की हिदायत देकर आई हूँ। अपराध नहीं करने पर आप किसे क्षमा करते... !''

राज-दरबार के चौक में सोलह घोड़ों की हिनहिनाहट गूँजने लगी तो रानी मालवणी की ओर ममता से देखते हुए बोली, ''बिटिया! पूँगलगढ़ के उमराव कितने सादे और उजले होते हुए भी कितने पूज्य और कितने श्रेष्ठ हैं, उन्हें घोड़ों के रथ का क्या बड़प्पन दिखलाएँ। तू माने तो अपनी मंशा दर्शाऊँ... !''

मालवणी पर मानो कई गाड़ियों का बोझ उलट गया हो। पर उस ढेर का वजन फूलों की तरह हल्का था। जिससे उसके चेहरे पर लाज की झाँई घुल गई। मीठी वाणी में बोली, ''अब आपका आदेश मानने के अलावा मेरा दूसरा कोई धर्म नहीं है। कबीर की तरह पंख होते तो उसी के संग उड़ जाती। पंख न होने का कितना दुख हुआ मुझे! बैलगाड़ियों की बजाय पूँगलगढ़ पैदल चलने को तैयार हूँ। पर मरवण से मिलने की उमंग में मेरी नस-नस फड़क रही है! जितना जल्दी पहुँचूँ, मेरा सौभाग्य... !''

माँ की बाहरी काया पर पंख न होकर, उसके हृदय से सदैव पंख जुड़े रहते हैं। मालवणी के जवाब में रानी माँ ने जौहरी को ज़ोर से आवाज़ देकर कहा, ''धनपत, दो-दो घोड़ों के सोलह रथ जल्दी-से-जल्दी जुतवा।''

नरवरगढ़ के क्षितिज पर आज सूरज के उगने का उल्लास कम नहीं था। और इधर रथ के यात्रियों के मन में भी उत्साह की तरंगें कम नहीं थीं। साल्हकुँअर के शिकार मित्र पाँच रथों में तुरत-फुरत बैठ गए। एक रथ में साल्हकुँअर जीसा के साथ बैठ गया, जैसे उड़नखटोला हाथ लगा हो। एक रथ में धनपत जौहरी और उसकी पत्नी लक्ष्मी। रानी दमेती मालवणी की बाँह पकड़कर अपने रथ की ओर तेज़ी से रवाना हुई। दोनों के दिल में हर्ष का पार नहीं था। शेष आठ रथों में मालवणी की सोलह बाँदियाँ, जिन पर वह हरदम नाराज़ रहती थी। जब कभी मालवणी रूप-यौवन के अहंकारवश उन्हें ग़ैर-वाजिब आदेश करती तो वे निःसंकोच मना कर देतीं। सही काम बताती तो फटाफट कर देतीं। मालवणी सज़ा दे-देकर थक गई पर वे नहीं झुकीं। आज वह उन पर बेहद ख़ुश थी। पहले की मरजीदान दासियाँ दूर खड़ी ललचा रही थीं, पर मालवणी ने उनकी तनिक भी परवाह नहीं की। मालवणी के मन की तासीर बदलने के साथ उसकी पसंद भी बदल गई थी।

सूरज ने काफ़ी छटपटाहट की पर उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। वह तरसता रहा और नरवरगढ़ के उम्दा घोड़े और रथ उसकी परवाह किए बिना ही रवाना हो गए। सबसे आगे रानी और मालवणी का रथ। बाईं तरफ़ धनपत और लक्ष्मी का, उसके पास दो बाँदियों का। दाहिनी बाजू राजा और साल्हकुँअर का। चार-चार रथ साथ चल सकें उतना चौड़ा मार्ग। मालवणी की बाड़ी के पास आते ही गाछ-बिरछों पर बैठे पाखी इधर-उधर उड़े। अलग-अलग कलरव के बहाने मानो स्वागत किया हो!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काफ़ी देर तक दासियों के अलावा किसी ने भी एक-दूसरे से बातचीत नहीं की। हर व्यक्ति अपने-आप से संवाद कर रहा था! ऐसी अमूल्य घड़ी बड़ी मुश्किल से हाथ लगती हैं। रानी माँ को मालवणी का चेहरा कुछ उदास नज़र आया तो दुलार से कहा, ''बिटिया, सोना आँच लगने पर ही निखरता है... !...वरना मरवण की समझ और उसके गुणों की पहचान कैसे होती... ?'' मालवणी की अवश हँसी बीच में ही छूट गई। जिसमें हर्ष की जगह दुख और संताप था। नीची नज़र करके बोली, ''माँ, आपकी समझ की मैं बराबरी नहीं कर सकती, फिर भी मैं एकदम अबोध नहीं हूँ। यदि मेरे पासे ठीक पड़ जाते तो निखरने की बजाय पूरा सोना ही भस्म हो जाता! पहले तो बेहद ख़ुश होकर अहंकार के वशीभूत मैंने वे षड्यंत्र रचे। उन्हें पार पटकने के लिए वैसे दुष्टों की खोज-बीन की। जाने किसके पुण्य से मरवण की देह पर खरोंच भी नहीं लगी। पर उन दुष्ट दुश्मनों के उपचार-इलाज की बातें सुनकर अपनी ही कोख से मेरा नया जन्म हुआ। अब मेरे पछतावे का पार नहीं है। जोश-जोश में रवाना तो हो गई, पर मरवण को मुँह दिखाने की बजाय मरना बेहतर है! माँ, मुझे एक बार तो पूछना था कि मैंने ऐसा अपराध क्यों किया... ? ऐसी कुमति मुझे क्यों सूझी... ?''

रानी दमेती दुलार भरे स्वर में कहने लगी, ''बिटिया, अब पुराना घाव कुरेदने का कुछ भी अर्थ नहीं है—जब कि तेरी, मेरी और साल्हकुँअर की मंशा से भी सहस्त्र गुना मामला सुधर गया! ऐसा सपना जिसे भी आ जाए तो मनुष्य का जीवन सार्थक हो उठे। समझ ले बिटिया की एक बुरा सपना आया था। उसे याद रखने की बजाय भूलना बेहतर है...। स्मृति की अपेक्षा विस्मृति का महत्त्व भी कम नहीं होता बिटिया!''

मालवणी ने एक बच्चे की तरह हठ करते हुए प्रतिवाद किया, ''नहीं माँ, लाख उपाय करने पर भी मैं इसे भूल नहीं सकती। केवल मेरे धूर्त स्वभाव की वजह से ही दोनों सुखी परिवारों को यह दुःस्वप्न देखना पड़ा। मुझ जैसी अधम, बर्बर स्त्री दुनिया में भी नहीं होगी! माँ, सचमुच साल्हकुँअर की प्रीत में एक कण जितने भी हिस्से का ध्यान आते ही मुझमें पिशाच-वृत्ति जागृत हो जाती, जिसकी तुष्टि के लिए मैं एक मरवण की बजाय बीस मरवणों का नाम ही मिटा डालती। यदि मरवण में अंशमात्र भी मुझ जैसी हीन प्रकृति की होती तो मेरी जीत सुनिश्चित थी! पर उसने मात्र फूल की पँखुड़ी से मेरी ज़हर-बुझी तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। जिसका गर्व भी मुझे कम नहीं है। उसे जीतना ही था, पर मेरी हार भी उसकी जीत से कम नहीं है। फिर उसे मुँह दिखाने की हिम्मत किस लोक से जुटाऊँ माँ... !''

रानी माँ उसका सर सहलाते हुए कहने लगी, ''बिटिया,उस लोक को कहीं भी तलाशने की दरकार नहीं है, वह लोक तेरे भीतर ही बसा हुआ है। जिसकी खोज मुझे और तुझे आज ही हुई है। जी-जान से उसका संरक्षण कर बिटिया...जी जान से!''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से. रा. यात्री

प्रवासी भारतीयों की कुंठा

गत दो-ढाई दशकों में हिंदी में ऐसे अनेक उपन्यास आए हैं जिनमें खाड़ी तथा यूरोपीय देशों और ख़ास तौर से अमेरिका में जाकर काम-धंधा करने वाले भारतीयों के अनेकविध स्वरूप उजागर हुए हैं। इन सभी उपन्यासों के केंद्र में एक बात ख़ास है कि बाहरी मुल्कों में जाकर—रहकर अकूत धन कमाने के बावजूद वहाँ का बेगानापन और कुंठा प्रवासी भारतीयों को किसी-न-किसी रूप में भीतर से तोड़ती और कुंठित करती है। वह मानसिक रूप से उस दूरी को नहीं पाट सके हैं जो विदेशी वातावरण और भूमि की एक अपरिहार्य देन है। अपनी पहचान बनाए रखने के लिए उन्हें गिरोह में रहने की विवशता होती है। उन देशों के मूल नागरिक उनकी उपयोगिता भले ही स्वीकार कर लें पर उन्हें अपने समान नागरिक का दर्जा कभी नहीं देते।

उसी क्रम में शशि महाजन का उपन्यास *खुली खिड़की से* दृष्टव्य है। यह कृति पिछले उपन्यासों से भिन्न है। पहचान का संकट यहाँ भी है। प्रवासी भारतीयों में सुरक्षा की दृष्टि से गिरोहबंदी भी उसी स्तर की है मगर वहाँ के मूल निवासी उन पर किसी भी स्तर पर हावी नहीं हैं। वह उलटे वंचित और शोषित बनकर रहते हैं।

उपन्यास का आरंभ आरती नामक एक विवाहित युवती का अपने पति अजय के पास नाइज़ीरिया जाने से होता है। उसका पति पेशे से इंजीनियर है और वह वहाँ एक भारतीय संस्थान में कार्यरत है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि ऐसे कुशल इंजीनियर को न वहाँ मन मुताबिक काम मिला है और न आवास। लागोस नाइज़ीरिया का एक बड़ा शहर है जहाँ अजय के साथ काम करने वाले और बहुत से भारतीय भी रहते हैं और उनकी एक-दूसरे से निकटता भी है पर आरती को वहाँ पहुँचने पर कोई आश्वासन नहीं दिलाता। पति अजय काम के सिलसिले में निरंतर बाहर ही बना रहता है। उसकी व्यस्तता में एक ऐसी बदहवासी है कि वह आरती के पास रहकर उसे अंतरंग क्षण देने में भी असमर्थ है।

अजय का स्थानीय बॉस मेहता यूँ तो एक उम्र दराज़ व्यक्ति है पर साथ ही वह एक दुष्ट और परपीडक भी कम नहीं है। वह

हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार से.रा. यात्री का जन्म 1932 में हुआ। इनकी उपन्यास, कहानी-संग्रह व्यंग्य-संग्रह की लगभग तीस पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उत्तर प्रदेश साहित्य संस्थान से पुरस्कृत हैं। संपर्क : एफ./ई-7, नया कवि नगर, ग़ाज़ियाबाद 201002

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अजय को नए-नए ऑर्डर लाने के बहाने अबुजा तथा अन्य नगरों की ख़ाक छानने के लिए बाध्य करता रहता है। आरती दांपत्य जीवन की सघनता और अपनी दैहिक वासनापूर्ति का कोई अवसर ही नहीं पाती। जो आवास अजय को रहने के लिए दिया गया है उसमें किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं है। एक स्थानीय नौकरानी के अलावा आरती ऐसा कुछ नहीं पाती जिससे वह ख़ाली समय काट सके। बिजली-पानी की भारी क़िल्लत है। जेनेरेटर है मगर तेल नहीं। अकेलेपन से दुखी होकर वह जब-तब रोने बैठ जाती है।

मेहता, उसकी पत्नी तथा अन्य भारतीय परिवार आरती को बुलाते रहते हैं पर उसे गाड़ी की कोई सुविधा नहीं है। मेहता अपने घर बुलाकर मौखिक सहानुभूति तो ख़ूब दिखाता है पर उसके पति अजय को हमेशा उससे दूर रखने के उपाय ढूँढ़ता रहता है। वह अजय और आरती को मिलने के क्षणों को जितना भी संभव हो सके स्थगित करने में ही सुख प्राप्त करता है।

लागोस में रहने वाले जो भी भारतीय परिवार हैं वह मेहता के विरुद्ध जाकर अजय और आरती की कोई सहायता नहीं कर सकते। उनके जीवन में कुछ भी स्पृहणीय और गंभीर नहीं है। उन्हें जुड़े रहने का महज़ एक ही उपाय मालूम है कि भोग-विलास और हंगामेबाज़ी ही उनकी जीवन-चर्या का चरम है।

हालाँकि नाइज़ीरिया राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र देश है पर वह हर प्रकार के शोषण का शिकार है। औरतें खुलेआम सड़कों पर खड़ी होकर ग्राहक तलाश करती हैं। इस तथ्य से परिचित होने पर आरती इसका कारण जानना चाहती है तो अजय नाइज़ीरिया की सारी आर्थिक और सामाजिक विषमता का स्वरूप उसके सामने रख देता है, ''और क्या करेंगी, बेकारी इतनी है—पचास-सौ नायरा (सिक्का) के लिए कहीं भी चली जाएँगी।...ये इंसान की दुनिया है—उसी का करा-धरा है...। यदि इंसान चाहता तो इस धरती को स्वर्ग भी बना सकता था पर उसने चाहा है लालच और घमंड से इसे नरक बनाना।... नाइज़ीरिया की जनसंख्या 130 मीलियन है और प्राकृतिक संपदा ख़ास तौर से तेल और पेट्रोल में अफ्रीका में सबसे ज़्यादा तेल यहाँ निकाला जाता है। ओपेक के देशों में इसका पाँचवा नंबर है। तेल मिलने से इस देश की अर्थव्यवस्था और राजनीति दोनों बदल गई हैं। पिछले बीस सालों से इनकी 90% विदेशी आय है और 80% राजस्व तेल से मिल रहा है। इनके पास बहुत गैस है और बहुत खोजनी शेष है। होना तो यह चाहिए था कि इससे यह देश दुनिया के कुछ ख़ुशहाल देशों में से एक होता, पर हुआ यह कि मुट्ठी भर लोग यहाँ बेइंतहा धनी हो गए हैं और ज़्यादातर लोग लगातार ग़रीब होते जा रहे हैं।...यह देश आज दुनिया के सबसे ग़रीब देशों के बीच खड़ा है।'' (पृष्ठ 42)

अजय को जब तरह-तरह से प्रताड़ित और अपमानित करके मेहता ने उसे निकम्मा भी सिद्ध करने का अभियान चला दिया तो अजय ने इस्तीफ़ा देकर संजय की कंपनी में अबुजा जाकर रहने का मन बना लिया और वह आरती के साथ लागोस छोड़कर वहीं चला गया। अबुजा में उसे न केवल अच्छा वेतन मिलने लगा बल्कि वहाँ एक स्वस्थ वातावरण भी मयस्सर हो गया। किंतु भारतीय समुदाय की वही गिरोहबंदी वाली दिनचर्या से यहाँ भी मुक्ति नहीं थी। वही भरपूर भोग-विलास और अय्याशी का वातावरण। आरती का अकेलापन समाप्त नहीं हो पाया। वह यहाँ भी पति अजय को संपूर्णता से प्राप्त नहीं कर पाई। वह अधिक धन कमाने की लालसा में बराबर दौड़ता ही रहता था। इस दमघोंटू अकेलेपन से मुक्ति पाने का एक ही उपाय था कि आरती को मातृत्व प्राप्त हो जाए और वह अपनी संतान में रम जाए। अंततः वह इस दिशा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में सफल भी हो गई और उसे लगने लगा कि अब वह अजनबी देश और दुनिया में संतोष से जीने का एक आधार पा जाएगी।

किंतु दुर्भाग्य से उसकी यह कामना भी फलीभूत नहीं हो पाई। प्रसव से पहले ही आरती को एक गंभीर बीमारी लग गई। उसके प्राण तो बच गए किंतु उसे गर्भ गिराने को बाध्य होना पड़ा। मातृत्व सुख से वंचित आरती और वात्सल्य की सहज आकांक्षा से आप्लावित अजय को इतना गहरा धक्का लगा कि वह भारत लौटने की सोचने लगा। उसने आरती से कहा, ''चलो हम वापस भारत चलते हैं। यहाँ क्या है हमारे पास, हमने अपना बच्चा खो दिया। अपनी ज़मीन, वातावरण से उखड़ गए हम लोग।'' (पृष्ठ 223)

किसी भी उल्लेखनीय उपलब्धि के प्रभाव में निरंतर मानसिक उद्वेलन में जीती चली जाने वाली आरती को गर्भ गिराए जाने की दशा में घर-परिवार और अपने देश का मोहपाश ही स्पृहणीय लगना चाहिए था पर नहीं उसने यों व्यर्थ प्रवास होकर अपने देश लौट जाना स्वीकार नहीं किया। उसने जीवन के व्यापक संदर्भों में जीने के संकल्प के साथ नाइज़ीरिया में ही रहने का फ़ैसला किया, ''काम मैंने सोच लिया है। सबसे पहला काम है, इस समाज से जुड़ना अपने भीतर की दीवारों को गिरा स्वयं को विस्तार देना। यहाँ मलेरिया को समाप्त करने के लिए आधुनिकतम औषधियाँ तक नहीं मिलती।...क्या इस दिशा में काम करके स्वयं को यहाँ से जोड़ नहीं सकती?...हम जब भी यहाँ से जाएँगे विजयी होकर, अपनी इच्छा से। थक-हारकर नहीं।'' (पृष्ठ 223)

खुली खिड़की से उपन्यास में लेखिका की गहरी संवेदनशीलता ही नहीं उसकी राजनीतिक समझ, विश्व का आर्थिक वैषम्य और शोषण को चक्की में निरंतर पिसती विवशता के भी गहरे अनुभवजन्य चित्र उपस्थित हुए हैं। राजनीति, संस्कृति, धर्म, इतिहास-परंपरा पर लेखिका ने गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत करके दार्शनिक पक्ष का भी अधिकारिक तौर पर निर्वाह किया है।

चर्चित उपन्यास :

खुली खिड़की से : शशि महाजन; आलोक पर्व 1/6588, पूर्वी रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली 110032; 2007; 250 रुपए

नंद भारद्वाज

मानवीय संवेदना को जोड़ती कविताएँ

अपने समय के बहुआयामी यथार्थ और युगीन मुहावरे से मेल खाती ऐसी बहुत-सी कविताएँ इधर की पत्र-पत्रिकाओं और नए संकलनों के माध्यम से सामने आ रही हैं, जो आज भी पाठक को उसकी बदलती प्राथमिकताओं और अभिरुचियों के बावजूद बृहत्तर मानवीय संवेदना और कविता के लिए अपेक्षित उस बुनियादी काव्य-संस्कार से जोड़े रखने का प्रयत्न करती है, जिसके अभाव में हम किसी तरह की कविता के संप्रेषण की कल्पना भी नहीं कर सकते। इस प्रक्रिया में कविता और पाठक के बीच जो रिश्ता बनता है, वह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उस कविता को रचने वाले कवि के जीवन-अनुभव कितने अंतरंग, अनूठे और पाठक के मन-मस्तिष्क पर असर रखने वाले बन पाए हैं। ऐसी कविता के निर्माण में विषय-चयन और काव्य-कौशल की भूमिका प्राय: गौण ही हुआ करती है। कवि ठीक जीवन के बीच से अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बात शुरू करता है, उसी जीवन के बीच बना रहता है और उसी को अपनी कविता के माध्यम से जैसे बेहतर बनाने की कामना करता है। उस जीवन को उकेरते हुए वह अपने समय के बहुआयामी यथार्थ से पाठक को रूबरू कराने का प्रयत्न भी करता है। कवि विनय विश्वास के पहले कविता-संग्रह *पत्थरों का क्या है* की कविताएँ कुछ इसी तरह के सर्जनात्मक अनुभव से हमारा परिचय कराती हैं।

तरक़्क़ी, सुख-सुविधा और विकास की अंधी दौड़ में आज का मनुष्य दरअसल क्या तो हासिल कर पा रहा है और क्या कुछ उसके हाथ से निकलता जा रहा है, ऐसी बहुत-सी आशंकाओं और चिंताओं से उपजी विनय विश्वास की ये कविताएँ अपने पहले पाठ में ध्यान तो आकर्षित करती हैं, लेकिन आश्वस्त नहीं कर पातीं कि अपने समय के सच को रचने में ये कितनी कारगर साबित हो पाती हैं। पाठक के लिए यह जानना भी शायद दिलचस्प हो कि ये कविताएँ किनकी सलाह से निर्मित हुईं और कहाँ इन्होंने अपनी जगह पाई। इसी ओर इशारा करते हुए संग्रह के समर्पण में कवि विनय विश्वास ने एक ओर जहाँ 'जीवन और कविता का सारवान संबंध सिखाने वाले' अपने गुरु-युगल डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी और डॉ. नित्यानंद तिवारी के प्रति आदर प्रकट किया है, वहीं हास्य-व्यंग्य के सफल कवि सुरेंद्र शर्मा का कवि-सम्मेलनों में ऐसी कविता के लिए बार-बार जगह बनाने के लिए भी आभार प्रकट किया है। यह जानना वाक़ई दिलचस्प है कि वे आज भी कविता की सफलता काव्य-मंचों पर तलाश करते हैं, जहाँ शायद ही किसी अच्छी या सार्थक कविता के लिए कोई जगह बची हो! अजय तिवारी, अरुण जैमिनी, चारुमित्र, रमेश उपाध्याय, हेमंत कुकरेती जैसे कुछ और भी वरिष्ठ और चर्चित रचनाकारों को उन्होंने इस बात के लिए भी याद किया है कि उन्होंने इस संग्रह की कविताएँ चुनने में उनकी सहायता की। और इस प्रक्रिया से गुज़रकर जो कविताएँ इस संग्रह के रूप में सामने आई हैं, उनके भीतर उतरने पर जो बात सारा-रूप में सामने आती हैं, वह तो और भी दिलचस्प है, जो कवि की एक कविता में कुछ यों व्यंजित होती हैं : *इतने सारे मकान...इतने थोड़े घर / इतने सारे पत्थर...इतनी थोड़ी कला / इतने सारे लोग...इतने कम मनुष्य / इतने सारे शब्द...इतनी कम कविता।* ('तरक़्क़ी', पृ. 48)

और फिर इसी भावोच्छवास का समाहार करते हुए इसी कविता के अंत में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि— *इतनी सारी व्यस्तता / और इतने थोड़े काम / वाह री तरक़्क़ी / तुझे दोनों हाथ सलाम!*

इसी तरह की तरक़्क़ी पर अफ़सोस प्रकट करती कुछ और भी कविताएँ हैं, जहाँ कवि का व्यथित मन अलग-अलग ढंग से प्रकट हुआ है। संग्रह की दूसरी कविता 'माँ' में यह विडंबना कुछ यों प्रकट होती है : *माँ / आज तू उदास है / पर तेरी उदासी देखने का समय किसके पास है / बूढ़ी हड्डियाँ लिए / तू भले ही / पिसती रह चूल्हे-चक्की में / मैं तो व्यस्त हूँ / सिर्फ़ अपनी तरक़्क़ी में!* ('माँ', पृ. 16)

तरक़्क़ी या सफलता की मध्यमवर्गीय मानसिकता पर विनय विश्वास ने अपनी कविताओं में लगातार चोट की है। यह कितनी विडंबना की बात है कि इसी तरक़्क़ी और कैरियर की अंधी दौड़ में हमारी युवा पीढ़ी अपनी स्वाभाविक जीवन-शैली से दूर होती जा रही है, वह बिना बात हँसने की उम्र में गणित के उलझे फ़ॉर्मूले सुलझा रही है और नतीजा वही बेसूद। कवि जीवन की कठिन परिस्थितियों में तरक़्क़ी की बजाय मनुष्य के अस्तित्व और उसके स्वाभिमान को वरीयता देता है, वह उस जगह की तलाश ज़रूरी मानता है जहाँ तरक़्क़ी भले

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही न हो, पर बची हो दोनों वक़्त भरपेट रोटियों की उम्मीद। वह उस आदमी से भी गहरी सहानुभूति रखता है, जो अथक प्रयत्नों से अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह करने और उसे बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील है, लेकिन अपनी दीन-हीन दशा, बिगड़े हालात और सत्ता-व्यवस्था की उदासीनता और नाइंसाफ़ी के सामने वह अपने आपको निरुपाय पाता है। कवि के मन में इस बात को लेकर गहरी बेचैनी है और वह इन कविताओं में कई रूपों में व्यक्त हुई है। यही नहीं अपनी पूरी हमदर्दी के बावजूद उसे उस देहाती से गहरी शिकायत है जो 'सबके नाम के आगे जी लगाता रहा और किसी से नहीं कह सका अपने जी की'! कम-से-कम अपनों से तो कहता और उन्हें कठिन समय के साथ रहने की सलाह ही देता। एक ऐसा कठिन समय जहाँ हत्यारे 'हाथों में पवित्रता की पोथी और पाँवों में बेफ़िक्री लिए आते हैं' और ऐसे हत्यारों की 'तलाशी लेने की जो हिम्मत करता है, वह आदमी की मौत मरता है' और यहीं कवि उनकी जिजीविषा का स्मरण करते हुए यह सवाल भी करता है कि ''आदमी आदमी की तरह मरने से क्यों डरता है ?''

विनय विश्वास की कविताओं में एक ख़ास बात यह भी देखने को मिलती है कि उनकी बहुत-सी कविताएँ दो परस्पर विरोधी जीवन-स्थितियों के टकराव या उनके बीच के द्वैध पर आधारित होती हैं। उसी टकराव के मूल बिंदुओं को उजागर करते हुए वे अपना आकार ग्रहण करती हैं और उस टकराव का ख़ुलासा होते ही कविता अपने आप में सिमट जाती है—यह टकराव चाहे अँधेरे और रोशनी के बीच का हो (इस दुनिया में), चाहे मध्यवर्गीय परिवार में किसी बुज़ुर्ग की बेक़द्री और उसके दिवंगत हो जाने के बाद उसके दिखावटी गुणगान का (बूढ़ा)। यहाँ तक कि संग्रह की शीर्षक कविता 'पत्थरों का क्या है' में भी इसी तरह गली किनारे के सामान्य पत्थरों और दरबार के तराशे हुए संगमरमरी पत्थरों के साथ छेनी-हथौड़े के भेदभावपूर्ण व्यवहार को देखा जा सकता है, जो इसी तरह के नाटकीय द्वैध पर आधारित है। तसल्ली की बात यही है कि कवि की अपनी हमदर्दी हमेशा उस पीड़ित, वंचित और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करने वाले व्यक्ति के साथ रहती है और यही ख़ूबी उनकी कविता को सामयिक संदर्भों में अपेक्षाकृत प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण बना देती है।

चर्चित कविता संग्रह :
पत्थरों का क्या है : विनय विश्वास; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004; 125 रुपए

हिंदी-राजस्थानी रचनाकार नंद भारद्वाज का जन्म 1948 में हुआ। कविता, आलोचना, उपन्यास की कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। साहित्य अकादेमी तथा अन्य संस्थानों से पुरस्कृत हैं। संपर्क : 71/247, मध्यम मार्ग, मानसरोवर, जयपुर-302020; फ़ोन-0141-2782328

महेश दर्पण

देर तक बनी रहती है

ख़ास लय, तान और भाषायी पकड़ लिए चलती गीतांजलि श्री की कहानियाँ, धीरज से पढ़ने की माँग करती हुई भी अपनी ओर खींचती हैं। 'प्राइवेट लाइफ़' की नायिका को ही लीजिए! उसकी लड़ाई उन अपनों से है जो जबरन उस पर चले आ रहे मूल्य और विचार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थोपना चाहते हैं। उसके चाचा-चाची हैं और उन जैसा ही उसका मकान मालिक रस्तोगी, जिसके यहाँ रहकर वह अपनी ज़िंदगी अपने तरीक़े से जीना चाहती है। पहले कहा जाता था लड़की अपने पैरों पर खड़ी हो जाए, आर्थिक रूप से समर्थ हो तो सब ठीक हो जाता है, लेकिन यह भी सही नहीं है। नौकरी करती यह नायिका अपनी मर्ज़ी से नहीं चल सकती क्योंकि यह उसके बुजुर्गों को सह्य नहीं। उसे बने-बनाए साँचे में इज़्ज़त से जीना होगा क्योंकि यही अच्छे घरों की रीत है। कहानी बताती है कि इस समाज में उस जैसी लड़की की पसंद-नापसंद का कोई अर्थ नहीं। लेकिन यह लड़की ख़ामोश रहने वाली नहीं, प्रतिरोध करती है, ''जिसे आप इज़्ज़त समझते हैं, उसे मैं अपनी सबसे बड़ी बेइज़्ज़ती मानती हूँ।'' उसे अपने व्यक्तित्व और प्राइवेट लाइफ़ की फ़िक्र तो है ही, अपने बड़ों से यह उम्मीद भी है कि वे उसकी क़दर करें।

पारदर्शी चरित्र की यह लड़की न कुछ छिपाना चाहती है और न ख़ुद को गुनहगार समझना चाहती है बने-बनाए ढर्रे पर न चलने के लिए। वह मानती है कि उसकी दिनचर्या तय करने वाला और कोई नहीं होगा। स्त्री की स्थिति पर विचार के कई कोण खोलती है यह कहानी। किशोरी, फिर बड़ी होती, सब कुछ देर से जानती, कभी अकेले न छोड़ी जाती लड़की जब अपने विचार और सामर्थ्य के साथ खड़ी होती है तो जैसे स्त्री का एक नया समय ही शुरू हो जाता है। लेकिन चाचा के संवादों में खुलती है उनकी भड़ास और 'इज़्ज़त' की कुढ़न। भतीजी की तर्कशक्ति में उसका आत्मविश्वास भरा व्यक्तित्व जो पुरानी सोच के एकदम बाहर खड़ा है। लकीर तोड़ता हुआ। चाची सिर्फ़ रोती हैं, ''यह मैं क्या सुन रही हूँ?''

कथांत बताता है कि सोच को बदले बग़ैर नया जीवन संभव नहीं। संग्रह की कहानियाँ स्त्री-अस्मिता की पहचान का अपना ही कथा-रूप लेकर आई हैं। अच्छी बात यह है कि यहाँ कथा की मांसलता भी पुरातन रूप में नहीं। अनावश्यक ब्योरों से बचती ये कहानियाँ प्रायः परस्पर विरोधी स्वरों की रचनात्मक टकराहट सामने रखती हैं। इनकी अनुगूँज देर तक हमारे साथ बनी रहती है।

'बेल-पत्र' की कथा हमारे दिमाग़ों में बैठे उस कीड़े की पहचान करती है जो इंसानों को इंसान की जगह हिंदू-मुसलमान में तब्दील कर देता है। यहाँ फ़ातिमा और ओम तो बहाना भर हैं। दरअसल, ये वे लोग हैं जो नई लकीर खींचने के लिए जोखिम मोल लेते हैं। ऊपरी तौर पर यह सांप्रदायिकता की मानसिकता से लड़ने वाली रचना लग सकती है, लेकिन यह पूरी आवाज़ में कहना यह चाहती है कि क्यों स्त्री का अपना कोई वजूद नहीं होता? क्यों उसका वही मज़हब हो जाना चाहिए जो पति बन गए पुरुष का है? स्त्री का कोई निजत्व क्यों नहीं स्वीकारा जाता? दूसरों का सम्मान करने के बावजूद, फ़ातिमा की घुटन का कारण यही है। कहानी में छोटे-छोटे संवाद बताते हैं कि कैसे वह अपने लिए जगह खोज रही है, अपने लिए पहचान माँग रही है! सवाल उठता है कि आख़िर क्यों उससे उसका उस जैसा होना छीना जा रहा है? आख़िर क्यों एक जीता-जागता व्यक्ति ख़ुद को पूरा का पूरा बदल डाले? दो समाजों के बँधे-बँधाए ढर्रों की टकराहट की कहानी है यह, जो बताती है कि बेवजह का तनाव सांप्रदायिकता के ज़हर को और गाढ़ा ही करता है। कहानी में जगदीश काका थोड़े में होते हुए भी अहम् किरदार निभाते हैं। उनकी बात में रोशनी की झलक है। वही बताती है कि बदलाव के लिए जो कुछ देना पड़े दो।

ओम-फ़ातिमा के टकराव में फ़ातिमा के प्रति सहानुभूति उपजना ही कहानी कि ताक़त की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परख बनाता है। बग़ैर शोर मचाए कहानी कहती है कि कितनी भी विचारशील क्यों न हो जाए, पुरुष सत्तात्मक समाज में उसकी हैसियत रहेगी दलित सरीखी ही, जब तक बदलाव का चक्र पूरा नहीं हो जाता। ओम के सामने फ़ातिमा के सधे संवाद उसकी ताक़त हैं और कथांत यथार्थवादी।

कथा में कविता के उपादानों के प्रयोग की दृष्टि से गीतांजलि श्री की कहानियाँ अलग ही नज़र आती हैं। विगत जीवन की स्मृतियाँ तो साथ रहती ही हैं, 'पीला सूरज' की नायिका सोचती है कि जिनेवा की अंतर्राष्ट्रीय इमारतों पर, मेरे पुश्तैनी घर पर, उन झोपड़ों पर सूरज कब उगेगा? दृश्य और प्रकृति से मनुष्य का एक गहरा रिश्ता है, लेकिन उससे भी गहरा है विगत की स्मृतियों में बसे टुइयाँ से जो आई एल ओ की सदस्य की सोच में जिनेवा ही चला आया है। वर्तमान से अतीत में और अतीत से वर्तमान में कलात्मक हिचकोले खाती यह कहानी मंडाबाई की भूख, दादी की कहानी और काका के ख़ौफ़ में गोता भी लगाती चली है। अजनबी औरत और प्रस्तुत परिवेश तो बहाना है।

वर्तमान हवा के बीच बीते समय में स्वयं को देखना और यादों के सहारे बीते दिनों में उतरने की दृष्टि से 'सफ़ेद गुड़हल' ध्यान खींचती है। कहानी में नाज़ुक से नाज़ुक डीटेल का भी अपना महत्त्व है। अहसास हैं अंतरंग, जो लफ़्ज़ों में उतर आए हैं। बदले जीवन-समय में एक मन को पकड़ने की यह नायाब कथात्मक कोशिश है। जब हम ख़ुद को ही भूल, महज़ औपचारिकताओं भरे एटिकेट्स में खोकर रह जाते हैं। स्त्री की मनःस्थिति कुछ न कहकर भी बहुत कुछ कह जाती है। संकेतों में बात करना कथाकार का मूल मिज़ाज है। यह ख़ूबसूरती से सामने आया है अपेक्षाकृत लंबी कहानी 'तिनके' में। वे छोटी-छोटी चीज़ें केंद्र में आ खड़ी होती हैं जिनसे घर बनता है। स्त्री पक्ष की पुरज़ोर पैरवी तो है ही, नज़र हर ओर गई है। कथाकार जैसे पूछना चाहती हो कि प्रभुत्व पुरुष का ही क्यों बना रहे? पति-पत्नी और बच्चों के बीच दीदी की उपस्थिति ऊपरी तौर पर बेहद सहयोगी भले प्रतीत हो, लेकिन वह है डिस्टर्बिंग ही। इतनी कि विचारों में पीछे की तरफ़ खींचने की कोशिश बन जाती है। पीछे, जहाँ बेटा और बेटी होना ही अलग-अलग होना होता रहा है। लेकिन यही अनुभव जब आगे जाकर होता है तो नायिका बुरी तरह आहत होती है। जीवन की सहजता की तरह यहाँ प्यार भी है, मनुहार भी, तनाव भी है और लगाव भी, झिड़की भी है और दुलार भी, अधिकार भाव भी है और उसके न मिलने का क्षोभ भी। लेकिन दीदी की तरफ़ से बेवजह की हेमंत की तारीफ़ के चलते लगाव के तार कमज़ोर पड़ते नज़र आते हैं। स्थितियाँ और उलझ जाती हैं क्योंकि चंदा के घर लौटने पर किसी का घर पर होना ज़रूरी नहीं। यह फाँस ही कहानी की बुनावट का आधार है। वही कहलवाता है : ''जिसने चलना सीख लिया हो उससे यह कहना कि जब समाज बदलेगा तब चलना, क्या मायने रखता है।'' कहानी के अपने आधार तर्क हैं, लेकिन वह बग़ैर कहे भी कह जाती है कि घर तो घर है, यहाँ सब होता है। इसी में लड़ना-जीना है। बस, ख़ुद को मारकर, दबाकर क्यों जिए कोई? स्त्री हो, तब भी क्यों? प्रायः कथा में किनारे रहा बच्चा यहाँ अंत में अपनी एक सयानी आवाज़ से केंद्र में आ जाता है। यही हैं परिवार की शक्तियाँ जो एक तरफ़ व्यक्ति को तिरोहित होने से बचाती हैं और दूसरी ओर बिखरने से।

यह कहानियाँ दरअसल इंटीमेट डायरी के खुलते पन्नों-सी हैं। 'अनुगूँज' कहानी इसका बेहतरीन उदाहरण है। पति-पत्नी के बीच की चुहल, शरारत, अंतरंगता और प्राकृतिक दृश्यों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के सहारे गहराता रोमांस हिंदी कहानी में कम ही आया है। गीतांजलि श्री इसे पूरी तन्मयता से प्रस्तुत करती हैं यहाँ। पति की बाँहों में स्वयं को बेहद सुरक्षित महसूसती पत्नी यहाँ बराबर का सहयोग देती आनंद केलि में उतर ज़रूर जाती है, लेकिन उसके जीवन में यह बराबरी क्रमशः नदारद होती जाती है। वह घर में क़ैद एक चिड़िया हो जाती है। पति की सलाह के मुताबिक उसे घर में ही पढ़ना-लिखना है। यहाँ सब कुछ हस्तगत है, संघर्ष से कोसों दूर। कथानायिका को यह ठीक नहीं लगता। उसके ज़ेहन में वह दुनिया है जहाँ 'स्ट्रगल' के बाद 'पोज़िशन' पाई जाती है। हारना होता है और जीतना होता है। स्थिति विशेष ही उसके लिए असहजता का कारण बनती है। उसे यह एकरसता नहीं भाती कि बस राहुल हो और उसकी पसंद का जीवन।

स्त्री-मन की अनेक परतें यहाँ विविध उपादानों के ज़रिए खुलती जाती हैं। इनमें नेचर की बारीक डीटेल्स ही नहीं, दूध वाले पर पड़ती नज़र भी उल्लेखनीय है। नज़र ही नहीं, उसका असर भी। नायिका के ख़ालीपन का अहसास यहाँ ख़ूबसूरत ज़बान में न सिर्फ़ सामने है, बल्कि उसमें खो जाने पर होनेवाली असावधानी भी जो पति को क़तई पसंद नहीं। मनःस्थितियों के अंकन में कथाकार की बेआवाज़ भाषा प्रायः एक ही कथा-सूत्र का विस्तार अलग-अलग रचनाओं में करती है।

'कसक' में बचपन व कैशोर्य की स्मृतियों के साथ बँधी चली आई एक मित्र के सहारे, बढ़ते जीवन में अनुभूतियों से सीखते चले गए समय विशेष के असर को सूक्ष्मता से पकड़ा है कथाकार ने। इसी प्रक्रिया में मित्र विशेष और नैरेटर के संवादों में कथा विस्तार पाती है। सच सामने आता है कि ''हम 'पैटर्न्ज़' देखते हैं, अंदाज़ लगाते हैं कि किन तत्त्वों का साथ होना कैसा प्रभाव, कैसा विस्फोट पैदा कर सकता है।'' तो उसकी काट भी कि स्पष्ट अंदाज़ ग़लत भी साबित हो सकता है। कहानी ख़ुद को करेक्ट करने की सलाहियत देते हुए भी वैचारिक संघर्ष की ऊर्जा को प्रमुखता से सामने रखती है। विचार की व्यावहारिकता का प्रश्न हो या निरंतर वैचारिक संघर्ष, यह मित्र-संवाद एक रचनात्मक ऊर्जा से लैस है क्योंकि अनर्गल नहीं है। एक तरफ़ यह जीवन को जीने की वकालत करता है (रमने की नहीं) तो दूसरी तरफ़ अनुभव को देखने के लिए उससे पृथक हो जाने की भी। तर्क हैं, निष्कर्ष हैं और साथ ही असहमतियों से उपजे द्वंद्व भी।

यहाँ स्मृतियों को उतारने में ख़ास प्लेफ़ुलनेस नज़र आती है। स्टैंड लेने का माद्दा भी है और अपनी तरह से जीने की ज़िद भी। निरंतर होती एक तुलना है और व्याख्या भी जो जीवन को उसकी सार्थकता के साथ खोलती जाती है। यहाँ कहानी अपना ख़ास फ्रेम ख़ुद बनाती है। इसकी गढन भीतर की ओर ज़्यादा है। अंततः एक प्रश्न मृत्यु है जो फिर से कहानी को हमारे भीतर शुरू कर देती है। दूसरे के बहाने यह ख़ुद को भी खोलती और तोलती है। इसकी विशेषता यही है कि यह अन्य कहानियों की तरह स्त्री-पुरुष के बीच की नहीं, स्त्री और स्त्री के बीच से उपजी कथा है।

'दूसरा' के भगीरथ और नीलम की तरह नहीं, जो बहाना बने हैं दोनों के बीच तनाव को रेखांकित करने के। इलीट क्लास के ये चरित्र एक रात के विवरण में ही एक्सपोज़ हो जाते हैं। यह मैरिज एनिवर्सरी की पार्टी की रात है उन्हीं की। दृश्य हैं, दृश्यों में खुलती वर्जनाएँ हैं, कैरियरिज़्म की चाल के नीचे से झाँकते-बचते ढोंग करते चेहरे हैं और उन्मुक्तता में छूट लेते व देते लोग भी। लेकिन इन सबके बीच मेज़बान स्त्री-पुरुष के बीच एक टेंशन भी है जो महज़ इसलिए चली आई है कि वहाँ एक-दूसरे के प्रति विश्वास का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभाव है। यही रिक्तता फिर उन्हें किसी दूसरे की ओर खींचकर ले जाती है। व्यंजना भरे संवादों में खुलती कुंठा है और दोनों ओर का भ्रम भी। सहजता सिरे से नदारद है, इसीलिए सामान्य कार्य-व्यापार में भी एक-दूसरे में खोट नज़र आने लगता है। पुरुष सोच उभरती है कि क्या स्त्री को नीलम की तरह होना भी चाहिए! उधर नीलम का सीधा जवाब है, ''तुम मेरे पति हो, मुझे ख़रीद नहीं लाए हो कि जब चाहो जिरह शुरू कर दो। बात-बात पर रिपोर्ट मांगो।'' संवाद हैं, उनमें बढ़ता तनाव है और जीवन से ग़ायब हो रहे सहज लगाव के कारण शेष रह गया ढोंग है। यह संभ्रांत वर्ग के चरित्रों का पोस्टमार्टम है कहानी में।

एकमात्र कहानी 'दरार' में चीजें पुरुष पक्ष से आई हैं। अकेलेपन का भेद खुलता है। तनाव है और विलगाव का यथार्थ भी जिसमें अपने आप से जूझता कल्पेश है। मिसिंग्स की फ़ीलिंग लिए यह कहानी दरअसल कथानायक की भीतरी हलचल और कुंठा को खोलती है। सहज-संजीदा लगते इंसान की भीतरी दरारें पढ़ने की यह कोशिश कल्पेश की मन:स्थितियों के साथ-साथ सफ़र करती है। बैरा, उसकी पत्नी व उसकी चोली उन्हें सामने लाने के उपादान भर हैं।

गीतांजलि भाषा में गहरे उतरकर खेलती-इठलाती और अनायास संजीदा हो आती हैं। उनमें कृत्रिमता को तार-तार करने की सलाहियत तो मौजूद है ही, स्त्री के साइके को पूरी जगह दिलाने की सामर्थ्य भी। ग़ौर से देखें तो यहाँ एक-सी थीम में डूबने-उतराने का अहसास होगा, लेकिन हर बार एक नए अंदाज़ में कि आप उस पल उसी के होकर रह जाएँ। कथायात्रा का यह पहला पड़ाव है जहाँ व्यक्ति और उसके भीतर झाँकने की कोशिश तो गंभीर है, लेकिन एक बहुत बड़ा समाज भी है जो कहानियों में बहुत कम नज़र आता है। अतीत से वर्तमान की यह यात्रा यदि समाज के भविष्य की चिंता से भी जुड़ जाए तो कथाकार से बड़ी उम्मीद की जा सकती है।

चर्चित कहानी-संग्रह :

अनुगूँज : गीतांजलि श्री; राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली; 2006; 150 रुपए

हिंदी कथाकार-आलोचक महेश दर्पण का जन्म 1956 में हुआ। कहानी और आलोचना की कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। हिंदी अकादमी, दिल्ली और पुश्किन पुरस्कार से सम्मानित हैं। संपर्क : सी-3/51, सादतपुर, दिल्ली 110094

शंभु गुप्त

पाठक का दिल जीतता कवि

राजकुमार केसवानी बावजूद तमाम आत्मालाप और सूक्तिपरकता के अपनी कविताओं में अपनी बात को आगे बढ़ाने में सफल रहे हैं। पेशे से पत्रकार और रिपोर्टर होने के चलते संक्षिप्तता और सारगर्भितता के साथ-साथ एक संवादधर्मिता / पाठकोन्मुखता उनके काव्य-शिल्प की स्वाभाविक विशेषताएँ बनकर उभरती हैं। वे यथार्थ के प्रति तत्काल रिएक्ट करते हुए भी उसके अंदर धँसकर उसका आकलन भी करते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि विडंबना के बीच से ही एक संभावना पैदा होने लगती है, जो जीने का सहारा बनती है। मौजूदा व्यवस्था का यह आम सांघातिक चरित्र है कि वह आदमी के पर कतर देती है। आदमी के पर कतरने वाली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैंचियाँ यहाँ हर तरफ़ लगी हैं। यह आदमी रोज़ नए पंख लेकर घर से निकलता है और रोज़ ही यह व्यवस्था उन्हें कतर देती है। आज के आदमी की ज़िंदगी का यह एक सामान्य निचोड़ है। इस पूरी प्रक्रिया में एक प्रकार का जो तनाव है या संघर्षशीलता है, वह इसे एक काव्य-वस्तु बना देती है। व्यवस्था की सांघातिकता का जवाब अभी आदमी के पास है और वह समर्पण के लिए तैयार नहीं है। आदमी के अंतःस्रोत अभी सूखे नहीं हैं और वह काफ़ी आगे तक इस संघर्ष को जारी रखने की सामर्थ्य से लैस है: *हर रात / लौट आता हूँ / रेंगता-रेंगता / कटे हुए परों के साथ / उसी गली में / जहाँ मेरा घर है / और जहाँ / मुस्कुराता है एक बच्चा / हर शाम / मुझे पंख देने के लिए* (पृ.11)। यह बच्चा जीवन की अनंत संभावनाशीलता का प्रतीक है। हालाँकि यह एक प्रकार का पलायन भी है, जो चीज़ों को भविष्य के हवाले करता जाता है। केसवानी की एक कविता है 'मैं छोड़ जाऊँगा सच', जो इस संग्रह की अंतिम कविता भी है। कवि कहता है कि वह अपना सच एक बच्चे के पास छोड़ जाएगा। क्या है यह सच और एक बच्चे के पास इसे वह क्यों छोड़ जाएगा ?

निश्चय ही इधर लिखी जा रही हिंदी-कविता का एक हिस्सा इस तरह के पलायनवाद की गिरफ़्त में है। यह पलायनवाद एक विशेष प्रकार का वैचारिक रोमानवाद है जिसके तहत कवि यह भ्रम पैदा करता है कि वह भविष्य के प्रति आश्वस्त है। केसवानी एक कविता में लिखते हैं : *मैं अपना सच / छोड़ जाऊँगा / एक बच्चे के पास*। आगे वे यह अहसास तो कराते हैं कि उन्हें सच का पता है, सच के नंगे नाच का पता है, सच के अंदरूनी सच का भी पता है, इत्यादि-इत्यादि; लेकिन इस मामले में वे कोई आंदोलनात्मक पहल की नहीं सोचते, इस सत्य को निरस्त कैसे किया जाए, इस ओर उनका दिमाग़ नहीं जाता; वे केवल इतना करते हैं या करना चाहते हैं कि बच्चे को इससे आगाह कर दें। किसलिए? इसलिए कि वह इससे बचे! यानी कि सत्य से मुठभेड़ यहाँ भी नहीं है; सिर्फ़ उससे बचकर निकल जाने की सीख है : *उसे कर दूँगा सावधान / सच का सच है डरावना / उसकी संगत है ख़तरनाक / उसकी सोहबत में शामिल रहती है ग़ुरबत* (पृ. 112)। यह स्वाभाविक ही है कि लोग इससे दहशत खाएँ। कवि इस बच्चे को इस सच के पचड़े में पड़ने से बरजता है। यह मध्यवर्गीय मध्यमार्ग उस सारे तिलिस्म को तोड़ देता है जिसमें सत्य के साक्षात्कार की उम्मीद कवि से पाठक को बनी थी। इस उम्मीद के टूटते ही यह सारा उपक्रम एक रोमान में बदल जाता है जिसे भारी-भरकम शब्द-जाल के ज़रिए बुना गया होता है। कुमार अंबुज संभवतः इसीलिए मात्र इतनी प्रतिक्रिया देकर चुप हो जाते हैं कि "इन कविताओं को इस कवि-आकांक्षा से समझा जा सकता है—मैं अपना सच छोड़ जाऊँगा/एक बच्चे के पास। (पिछला कवर पेज)। निश्चय ही यह कवि-आकांक्षा ध्यान दिए जाने योग्य है। इस आकांक्षा के निहितार्थ स्पष्ट हैं। संभवतः इसीलिए कुमार अंबुज ने इस पर आगे कुछ कहना मुनासिब नहीं समझा।

इस कवि-आकांक्षा का यह निहितार्थ है, संभवतः यही कारण है कि यह कविता एक प्रकार की उस सूक्तिपरकता में तब्दील हो गई है। इस कविता में व्यंग्य की अकूत संभावनाएँ थीं, लेकिन व्यंग्य की उत्पत्ति चीज़ों से बचकर चलने से नहीं, उनसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मुठभेड़ से होती है। बचकर चलने से तो सूक्तियाँ ही सूझती हैं।

केसवानी की एक महत्त्वपूर्ण कविता है—'चरखील'। इस कविता में देशजता—अन्य शब्दों में भोपालियत—हो सकती है। लेकिन इस कविता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के अंदर घुसते हैं तो लगभग वही मध्यवर्गीय बेचारगी मुँहबाए सामने खड़ी मिलती है, जिसे ऊपर हमने देखा। एक प्रकार के शहीदाना तेवर के साथ स्वयं को ग्लोरिफ़ाई करने की काव्य-नायक की वही रोमानियत हम यहाँ भी देखते हैं। कवि जैसे एक अरण्यरोदन करता है कि मेरे हाथ में सिर्फ़ चरख़ी है, पतंग कोई और उड़ा रहा है। मेरी नियति यही है कि मैं दूसरे लोगों के उपयोग का साधन बनूँ। जैसे मैं कोई उपनिवेश होऊँ। केसवानी की अन्य अनेक कविताओं में भी निम्न मध्यवर्ग/मध्यवर्ग की इस नियति का बहुविध ख़ुलासा मिलता है। वे इस संग्रह की पहली ही कविता 'बाक़ी बचें जो' में 'बाक़ी' लोगों से अपनी संबद्धता उद्घोषित करते हैं। संजय चतुर्वेदी की प्रसिद्ध कविता 'सभी लोग और बाक़ी लोग' यहाँ याद की जा सकती है। केसवानी 'बाक़ी लोग' के इस प्रत्यय को विकसित करते हैं। लेकिन बीमारी यहाँ भी फिर वही है कि कवि इन दोनों तबकों को अपनी उसी रोमानियत से परिभाषित करता है जिसमें सतर्क अंतर्दृष्टि का घोर अभाव देखा जाता है। इसी दृष्टिहीनता का यह नतीजा है कि कवि एक रहस्यमय फ़िल्मी भावुकता की गिरफ़्त में आ जाने से स्वयं को नहीं बचा पाया : *बाक़ी बचें जो / रुक जाएँ यहीं / मोहब्बत वाले*। (पृ.9)।

सवाल दसअसल यह है कि आपके हाथों से पतंग छीनकर उनमें सिर्फ़ चरख़ी थमाई किसने? क्या सचमुच किसी ने आपसे इसे छीना था और आपको हाशिए पर धकेल दिया था? क्या ऐसा था कि आप पतंग उड़ाना, पेंच लड़ाना यानी कि इस 'कला' में माहिर थे, फिर भी षड्यंत्रपूर्वक किसी ने आपका हक़ छीन लिया? क्या सचमुच ऐसा है? कविता से सूचना मिलती है कि दरअसल वाक़या यह नहीं है। असलियत यह है कि यह शख़्स पतंग उड़ाने की ए बी सी डी नहीं जानते : *पतंग उड़ाना नहीं जानता / माँजा सूतना नहीं जानता / नहीं जानता / लड़ाना पेंच / काटना पतंग औरों की* (पृ.16)। ऐसी स्थिति में भला ऐसा कैसे संभव है कि कोई आपके हाथों में पतंग थमा दे! ध्यान दें, यहाँ स्वयं पहल की स्थिति नहीं है। कवि की आकांक्षा यह है कि कोई आकर उसके हाथ में पतंग थमा दे! आप पतंग उड़ाने की कला में माहिर नहीं हैं तो क्या हुआ आप किसी महत्त्वाकांक्षी नवाब की तरह यह तो चाहते ही हैं कि सत्ता के सूत्र आपके हाथ में हों! इस तरह की कविताओं के निहितार्थ तक इसी की मसनवी आलोचना-पद्धति से पहुँचा जा सकता है। यह कैसी अबोधता, जो एक गुणवत्ता की तरह यहाँ लायी गई है और कवि उससे एक विडंबना का तूमार खड़ा करता नज़र आता है? क्या यह अपनी निष्क्रियता, पहल करने की अक्षमता, तैयार स्थितियाँ चाहने की मंशा इत्यादि को यथार्थ पर थोपना और विचार की आड़ में इन्हें ग्लोरिफ़ाई करना नहीं है? आप अपना प्रेय तो चाहते हैं लेकिन कोई आकर उसे आपके हाथ में पकड़ा दे! आप स्थितियों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे; दूर खड़े सिर्फ़ व्यवस्था को कोसते रहेंगे! क्या यह एक विशेष क़िस्म का वैचारिक उपभोक्तावाद नहीं है, जिसमें सिर्फ़ रिएक्ट किया जाता है। इसी रिएक्ट करने की सीमा के चलते व्यंग्य की संभावनाएँ यहाँ फिर ख़त्म हो गईं!

राजकुमार केसवानी एक सहृदय कवि हैं, इसमें कोई दो राय नहीं। बतौर नागरिक भी वे एक संवेदनशील और भावप्रवण व्यक्ति हैं। 'मेरे शरीर में' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं : *मेरे शरीर में / यह क्या बहता रहता है / लगातार / जो भिगोए रखता है मुझको / भीतर से* (पृ.95)। उनकी यह संवेदनशीलता ही यथार्थ के प्रति उन्हें रि-एक्टिव बनाती है। अपनी इस सहृदयता और भावुकता की मनोवृत्ति पर उन्होंने कई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविताएँ यहाँ लिखी हैं और कई कविताओं का प्रस्थान-बिंदु ये ही हैं। इसी भावुक रिएक्शन के तहत उन्हें कल्लू नाई की याद आती है, लत्तू पागल याद आता है, और बहुत-सारे वाक़ये याद आते हैं।

जहाँ-जहाँ केसवानी इस रिएक्शनिज़्म से ऊपर उठे हैं और थोड़े आक्रामक हुए हैं, वहाँ उनमें व्यंग्य औ सतर्क आलोचना का स्वर ऊँचा हुआ है। वे स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों पर लानत भेजते हुए पाठक का दिल जीत लेते हैं। 'वहाँ देखकर', 'वे बोलते कम हैं', 'ख़ामोश आवाज़ें', 'सरकारी ग़रीब', 'अपनी गली का कुत्ता', 'आप', 'अब तो अंदर आऊँ?', 'आज की ताज़ा ख़बर', 'बच्चो देखो' आदि कविताएँ इसकी प्रमाण हैं। यहाँ वे कथित भारतीय जनतंत्र (असल में एक सामंतवादी राज), उपभोक्तावाद ('यह कमरा'), समानुकूलित मध्यवर्ग, अमेरिकी दादागिरी, साम्राज्यवादी-पूँजीवादी-नस्लवादी चालाक संदृष्टि पर सतर्क प्रहार करते हैं। केसवानी दक्षिणपंथ का विरोध करते हैं और प्रगतिशील विचारधारा के प्रति उन्मुख हैं। वे कट्टरता और तत्त्ववाद की तीखी ख़बर लेते हैं। उनकी निगाह में यह मनुष्यता का घनघोर दिशा भ्रम है। इस दृष्टि से उनकी 'मुन्ने भाई रांग साइड' कविता ध्यान खींचती है जिसमें वे धड़ल्ले से मुशर्रफ़, आडवाणी, मोदी आदि की नामज़द ख़बर लेते हैं। इस कविता का व्यंग्य श्लाघ्य है।

चर्चित कविता-संग्रह :

बाक़ी बचें जो : राजकुमार केसवानी; शिल्पायन; 10295, लेन नं.1, वैस्ट गोरखपुर, दिल्ली; 2006; 110 रुपए

शंभु गुप्त के आलोचनात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। संपर्क : 21, सुभाष नगर, एन ई बी, अलवर 301001; मो. (0) 94147-89779

विजय वर्मा

संवेदना एवं संघर्ष

शीर्षक अपने आप में भी बहुत कुछ कह जाता है क्योंकि हथेलियाँ वैसे भी जीवन का अक्स मानी जाती हैं। खुरदुरी हों तो स्पष्ट ध्वनि देती हैं कामगार की, किसी कर्मठ कर्मयोगी की ही होंगी। सच में अंत:करण से लेकर बाहरी दुनिया तक की संघर्ष यात्रा है यह। काव्य चयन के लिए छह खंडों में प्रकाशित *खुरदुरी हथेलियाँ* में कुल मिलाकर 77 कविताएँ हैं जो जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर रोशनी डालती हैं। संवेदनाओं का आंतरिक संसार इन कविताओं में अंदर से झाँकता हुआ कब सात समंदर पार तक की व्यथा का प्रतिनिधित्व करने लगता है पता ही नहीं चल पाता तब तक अनामिका, अंतर्व्यथा, विडंबना के इस अटपटे संसार के कोने-कोने से होकर आ जाती है, कई भाषाओं के मर्म और दुनिया के कई देशों के चर्चित हस्ताक्षरों से बतियाती हुई, क्योंकि भूख, रोना, हँसना, जीवन, मृत्यु, धोखा, प्यार इन सबके रूप ढंग चाहे प्रचलन अलग हों परंतु मूल रूप से समग्र सृष्टि में एक ही जैसी है इनकी उपस्थिति। यह न तो भाषाओं के मोहताज हैं, न ही शिष्टाचारों के और न ही सीमाओं के।

वैश्वीकरण और बाज़ारवाद के दौर में विश्वग्राम, अपने आप में बहुत कुछ समेटे हुए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। एक ओर लाभ है तो दूसरी ओर मूल्यों का विखंडन। मनुष्य के अंदर के सूक्ष्म तत्त्व को झकझोरता हुआ अलग व्यथा की एक इबारत लिख जाता है जिसे अनुभव करना और उसे शब्दों में उकेरना संभवतया अनामिका जैसी अति सूक्ष्म संवेदी रचनाकार का ही हौसला एवं संकल्प हो सकता है जो अपने आप में असाधारण प्रयास ही नहीं एक सफल, सशक्त एवं मार्मिक चित्रण की सृष्टि हैं। नारी प्रकृति की अद्‌भुत रचना का सार है उसमें कितना कुछ समाहित है वह स्वयं एक अनोखी परिभाषा है, संसार में उपस्थित संपूर्णता के अंश की। काव्य यात्रा में अनामिका ज़मीन से जुड़े व्यक्ति और उससे जुड़े लोकरंग से ओत-प्रोत मुहावरे लेकर सुगमता से आगे बढ़ती है और यह सब इस यात्रा को सरल ही नहीं बनाते, पथ-प्रदर्शक बनकर संप्रेषण की लालटेन लिए पाठक को उस बिंदु तक पहुँचाते हैं यहाँ वह सूक्ष्म मर्म स्वयं अनुभव कर सकता है, साफ़-साफ़ देख सकता है।

इन कविताओं की भाषा में प्रत्येक शब्द अपनी दुनिया का सच सिर पर उठाए हुए ज़ोर-ज़ोर से बोलता दिखाई पड़ता है जैसे प्रकृति के हर मौसम में आने वाला फूल अपनी सुगंध से अपना परिचय ही नहीं देता, अपनी ज़मीन, वन या उपवन को भी परिभाषित करता है। अब अनामिका की इस कविता पोटली की समग्रता को कुछ-कुछ टटोलने के प्रयास में उनकी काव्य साधना के कुछ अंशों को पढ़ने, अनुभव करने पर लगता है कि संवेदना की अभिव्यक्ति अतिसूक्ष्म तो है ही परंतु इसकी कई अंतर्शाखाएँ हैं इन्हें स्वयं अनुभव करता हुआ पाठक यहीं गुम-सा हो जाता है। यदि सहजता से ऊपरी अनुभव भी करें तो दिल को छू जाती है और मुँह से निकल जाता है वाह! ऐसी रचनाएँ हिंदी साहित्य में नए आयाम जोड़ती हुई बेमिसाल योगदान देंगी क्योंकि अनामिका आज के हिंदी लेखन का सशक्त हस्ताक्षर ही नहीं, सहजता से अंत:करण को छूने वाले काव्य की सफल कवयित्री भी हैं। उसे पुरुष प्रधान समाज से भी शिकायतें हैं और नारी की वेदना को बख़ूबी चित्रित करती हैं। इंसान होने के दावे के साथ-साथ एतराज भी जताया है 'बेजगह' कविता में : *लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्‌टी* होती हैं, / *उनका कोई घर नहीं होता / जिनका कोई घर नहीं होता / उनकी होती है भला कौन-सी जगह ?*

इस परंपरावादी सामाजिक एवं उपभोक्तावादी युग में कविमन नारी का स्थान ढूँढ़ता हुआ परंपराओं को भी कहीं कोसता है। सामाजिक व्यवस्था पर भी सवाल उठाता है जो नारी विरोधी रहे हैं और हैं भी क्योंकि कुछ नियम एवं परंपराएँ अपनी सुविधानुसार पुरुष प्रधान समाज ने चित्रित किए हुए हैं और किसी न किसी बहाने इसे चलाए व बनाए रखने पर 'सूली ऊपर सेज पिया की' कविता में जैसे : *दरबार के क़ायदे भी अजब हैं। / एक सिपाही मुझको बाँधे खड़ा है।/ एक कर रहा है तड़ीपार।/ हाँ शेक्सपीयर, समझती हूँ / होने-न-होने कि करने-न-करने का सारा घनचक्कर!*

वंचित वर्ग की व्यथा को महसूस करती नारी चिंतन की एक अलग शिकायत और भी है कि उसे जो मिल रहा है उसके किए के सरासर उलट है। नारी सब कुछ समर्पित कर देती है परिवार को, समाज को, संसार को, परंतु उसे उसके बदले में कहीं कम तो कहीं बिलकुल ही नहीं मिलता जैसे 'गृहलक्ष्मी' कविता में : *जैसे कि मज़दूरनी / तोड़ती है पत्थर / मैंने तोड़ा ख़ुद को / कूट कूटकर! / धूल-धूल कँकड़ी कँकड़ी हुई / उड़ी तो चुभी आँखों की किरकिरी-सी / गिरी धँसी तो थोड़ी नींव में पड़ी / थोड़ी सड़क वाली गिट्‌टी में / पुल के गारे में थोड़ी-सी / थोड़ी-सी घर की दीवारों में*

असल में यह केवल नारी व्यथा से जोड़ना भी ठीक नहीं होगा। संपूर्ण कामकाजी वर्ग की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यथा है इसमें। यहाँ संघर्ष बहुत है, हासिल कम है। सवाल करने तक की आज़ादी नहीं है और मेहनत को पूरी तरह सम्मानित नहीं किया जाता है जबकि काम करने वाले के वजूद के हर रूप को तोड़-निचोड़ दिया जाता है, चूर-चूर कर दिया जाता है और फिर जाकर निर्माण की गाथा सामने आती है जिसकी हर दीवार में मिला होता है कामगार का ख़ून-पसीना। वह अनथक अपने कर्मपथ पर आगे बढ़ता जाता है जबकि सारा यश, शक्ति और सत्ता में समाहित हो जाता है और उसकी पहचान चंद सिक्कों, कमतर उजरत, लाचारी एवं विवशता में सिमटकर रह जाती है। यही क्रम पहिए की तरह घूम रहा है।

अनामिका 'फ़र्नीचर' कविता में जीवन के जुड़ाव को अभिव्यक्ति देती है। निस्वार्थ भाव से सेवा भावना रखते हुए नाउम्मीदी से उम्मीद की तार को पकड़ते हुए निर्जीव से भी इतने सजीव ढंग से पेश आने का मार्मिक संवेदन कविमन ही अनुभव कर सकता है शायद कभी यह सजीव रहे होंगे जो अब शापित अवस्था में हैं : *किसी जन्म में मेरे प्रेमी रहे होंगे फ़र्नीचर / कठुआ गए होंगे किसी छाप से ये / मैं झाड़ने के बहाने जो छूती हूँ इनको / आँसुओं से पसीने से लथपथ / इनकी गोदी में छुपाती हूँ सर...*

आधुनिक युग प्रतिस्पर्धा का युग है। हर क्षेत्र में मनुष्य ने अपने आगे-पीछे प्रतिस्पर्धा का जाल-सा बुन रखा है। बेचो और खाओ संस्कृति में व्यापार का संसार समझ में आ सकता है परंतु संसार का व्यापार समझ से परे है। जैसे हर चीज़ बिकाऊ हो और हर चीज़ का ख़रीदार हो। ठेकेदारी ज़ोरों पर हो चाहे धर्म के माध्यम से हो, युद्ध की हो, विनाश की हो या फिर महाविनाश की। कवयित्री के मन में अजीब-सी हलचल एवं भय है कि आख़िर हम जा कहाँ रहे हैं 'गणतंत्र' कविता में : *सोचती हूँ... बचपन में मैंने तो इसको / खिलौने की भी बंदूक़ नहीं दी, / डरती रही कि हो नहीं जाए यह भी अतिवादी। / है हवा में ही इतनी हिंसा / 'आतंक' 'अगवा' 'आगजनी' 'लूट' 'हत्या'... हाईजैकिंग / ये हिंसक शब्द अबाबीलों से मँडरा रहे हैं सिर पर।*

रचनाकार भविष्य को लेकर चिंतित हैं कि नन्ही सोच में भी कहाँ से नफ़रत की चिनगारियों को शामिल करके क्यूँ विषैला बनाया जा रहा है जिसे वाल्मीकि, बुद्ध, गांधी के क़िस्सों की लोरियों में पाला गया। स्वदेशी चिंतन के साथ-साथ समस्त मानव जाति के सिर पर अभिशाप-सा मँडराता आतंकवाद चिंता के मूल में है और कुछ आस बेहतरी की मनोकामनाओं की उधेड़बुन में।

'पूछताछ कार्यालय', 'घुमंतू टेलीफ़ोन', 'कैलेंडर' जैसी कविताओं के माध्यम से कवयित्री इन शीर्षकों के भीतर की दुनिया एवं उस वातावरण को जीवन के किसी हिस्से से जोड़कर देखने के प्रयास में निर्जीव वस्तुओं में भी जीवन की छटाएँ, बतियाती घटनाएँ एवं मुँह बोलता चित्रण अनायास बहुत कुछ कह जाता है। कहीं-कहीं अपनी भाषा के गौरव और सांस्कृतिक धरोहर से उठाती सोच कहीं एतराज़ के साथ लिखती हैं : *अब तो दुनियाभर में अंग्रेज़ी / पैगंबर सी घूमती है, / मुस्कुराकर हौले से चूमती है / दूसरे भाषा-घरों के / छोटे-छोटे बच्चों का / उत्तप्त माथा*

दुनिया के इस महासमर में जहाँ बाज़ार लड़ रहे हों, शक्तियाँ भिड़ रही हों और देश क्षेत्र प्रयोगशालाओं में तब्दील हो रहे हों, विचारधाराएँ ध्वस्त हो रही हों, नई संस्कृति का सृजन प्राचीन संस्कृतियों से ठस्से से टक्कर ले रहा हो या उन्हें झुठला रहा हो; शक्तियाँ, बाज़ार चाहे जीतें भी, मनुष्य एवं मानवता कहीं-न-कहीं हारती दिख रही हों, विवशता अपने को अभिव्यक्ति देने के माध्यम ढूँढ़ रही हो, हथियारों से भी अधिक ख़तरनाक कुछ बातें हों तो कविमन इन सबसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनभिज्ञ कैसे रह सकता है। इन सब बातों के समावेश पर अनामिका बड़े अधिकार के साथ व्यक्त करती हैं और व्यक्ति, वर्ग या क्षेत्र विशेष की अवधारणा पर सीमित नहीं रहती।

इस कविता-संग्रह में संकलित प्रेम कविताओं की गहराई और सहज प्राकृतिक अभिव्यक्ति दिल की गहन अनुभूतियों की सूक्ष्म पीड़ा के साथ-साथ कलेजे को शीतलता की फुहार में नहला देती है और दिल के रिश्तों को संसार के सभी रिश्तों के ताने-बाने से ऊपर लाकर खड़ा कर देती है। डाक टिकट कविता में अटूट रिश्ते की सच्चाई कितनी सहजता से परिभाषित की है : *बच्चे उखाड़ते हैं / डाक टिकट / पुराने लिफ़ाफ़ों से जैसे / वैसे ही आहिस्ता-आहिस्ता / कौशल से मैं ख़ुद को/हर बार करती हूँ तुमसे अलग! / मेरे किनारे फट जाते हैं कभी-कभी / कुछ न कुछ मेरा तो / निश्चित ही / सटा हुआ रह जाता है/तुमसे!*

दिल, दिमाग़, मन में बहुत कुछ ऐसा होता है जिसे शब्द बयान नहीं कर पाते। भावनाओं की महीन-सी लरजती तार शायद इनकी परिधि में भी नहीं आ पाती, ऐसी सूक्ष्मता के दर्शन इन कविताओं में अवश्य होते हैं।

यह सच है कि परिस्थितियाँ ऐसे क्षण सामने लाकर खड़े कर देती है कि क़लम छटपटाती है अभिव्यक्ति को तब उसका कर्मक्षेत्र एवं उड़ान, गहराई तय करती है। अनामिका की कविताएँ बारीकी से कुछ ऐसा कह जाती हैं मानो दुनिया की हर पीड़ा, कष्ट, कुंठा, विडंबना को शब्द मिल गए हों और सुलगते सवाल पूछ रहे हों व्यवस्था से। अपना नाता कर्मशील खुरदुरी हथेलियों से जोड़ते हुए पूछती हों हथेली की लकीरों से कई यक्षप्रश्न।

यह कविताएँ किसी वाद में पड़े बिना ध्वस्त करती हैं कई पारंपरिक दीवारों को, दुनिया के खोखलेपन पर पैना कटाक्ष करती हुई अपनी बात कहती हैं। बेज़ुबान की ज़ुबान बनकर एक जुझारू जीवन शैली की पक्षधर हैं यह, जिन्हें विश्व साहित्य की खिड़की से आती ताज़ा हवा का सान्निध्य प्राप्त है, अपने आप में एक ऊँचाई साथ लिए हुए हैं परंतु ज़मीन से लोकजीवन की महकती बगिया से मुहावरे, कहावतें आम आदमी से निकटता की बातें, इनकी कल्पना सृष्टि को रंगारंग बनाए हुए हैं। यही कारण है कविता-संग्रह सतरंगी इंद्रधनुषी व्यापकता के साथ हर विषय को अपने आप में समेटे हुए है। जिस विलक्षण काव्य प्रतिभा से कविताओं को सहेजा गया है वह अपने उद्देश्य में सफल रही है। संप्रेषण की सहजता कही गई हर बात को दिल में उतार देती है जो स्मरण रहती है। मेरे ख़याल में रचनाकार के रचना भाव एवं शिल्प की यही श्रेष्ठ सफलता कही जाती है। अतः यह कविता-संग्रह हिंदी साहित्य में अपना अलग स्थान रखेगा।

चर्चित कविता-संग्रह :

खुरदुरी हथेलियाँ : अनामिका; राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली; 2005; 195 रुपए

1962 में जन्मे विजय वर्मा के एक कविता-संग्रह सहित चार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। संपर्क : डोगरी एकांश, समाचार सेवा प्रभाग, आकाशवाणी, संसद मार्ग, नई दिल्ली; फ़ोन-23714012

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजाराम भादू

वृत्तांत का नया वितान

उपन्यास सृजन का समकालीन परिदृश्य एक नज़र में तो काफ़ी समृद्ध नज़र आता है। इस लिहाज़ से कि वृहद्काय और काफ़ी संख्या में उपन्यास लिखे जा रहे हैं। ये कितने पढ़े जा रहे हैं और पाठकों की इनके बारे में क्या राय है, इस पर कोई अध्ययन हमारे पास नहीं है। साहित्यिक पत्रिकाएँ अधिकांशतः कहानी-केंद्रित हैं। इनके उपन्यासों का धारावाहिक प्रकाशन प्रायः नहीं होता। यदि ऐसा होता तो इधर के उपन्यासों को लेकर पाठकों की प्रतिक्रियाएँ जानी जा सकती थीं। उपन्यासों को लेकर प्रकाशकों के बिक्री के आँकड़े संदिग्ध रहे हैं। ऐसी स्थिति में कुछ चर्चित उपन्यासों को छोड़कर हिंदी का मौजूदा उपन्यास सृजन किसी गुणात्मक परिवर्तन की ख़बर नहीं देता है।

अंतर्वस्तु के लिहाज़ से अधिकतर उपन्यास अतीत कथाओं पर आधारित हैं। इनमें से कई उपन्यासों के सर्जक गहरे और दीर्घकालिक शोध का दावा करते हैं। लेकिन ऐसे उपन्यासों का कथानक इस क़दर विवरणात्मक और सूचनाएँ देने वाला होता है कि उसे पूरा पढ़ना श्रमसाध्य लगने लगता है। दरअसल, किसी भी क्षेत्र में अनुसंधान करना एक मूल्यवान और सार्थक काम है। किंतु लगता है, हिंदी साहित्य से जुड़े अध्येता यह मान लेते हैं कि उन्हें अपना अनुसंधान उपन्यास के ज़रिए ही प्रस्तुत करना है। जबकि अनुसंधान को एक बेहतर रिपोर्ट के माध्यम से भी प्रस्तुत किया जा सकता है और इससे आपके काम का महत्त्व क़तई कमतर नहीं होता। अंततः उपन्यास एक कला भी है और इसमें सृजन की कलात्मक परिणति एक अनिवार्यता है।

इधर दलित, स्त्रियाँ और आदिवासी केंद्रित कथानकों वाले उपन्यासों की बहुलता रही है। इनमें मुख्य स्वर काफ़ी समान रहता है और संरचनागत एकरूपता खटकती है। यथार्थ के इन्हीं पहलुओं को देखने और प्रस्तुत करने के कई भिन्न कोण, और संश्लिष्ट तरीक़े हो सकते हैं। इनसे इतर लिखे जा रहे उपन्यासों में मौजूदा सत्ता तंत्र की निर्ममता और भ्रष्टाचार व्यक्त होता है। इनमें भी प्रायः नयापन नहीं देखता। यहाँ तक कि इनसे बेहतर वृत्तांत तो सामान्य लोगों की बातचीत में सुने जा सकते हैं।

ऊपर कही गई बातों को सपाट किंतु ख़तरनाक सरलीकरण कहकर ख़ारिज किया जा सकता है। इसके बावजूद ये बातें शायद ही ख़ारिज करने वाले के ज़ेहन से छूट सकें। यह भी सही है कि इस तरह कही बातों को प्रामाणिक माना जाए, ऐसा दावा पूर्वाग्रह और हठधर्मिता दोनों ही है। बहरहाल, इनसे असहमति को सम्मान देते हुए मैं यशवंत व्यास के नए उपन्यास *कॉमरेड गोडसे* की चर्चा शुरू करना चाहूँगा। असल में इस चर्चा की पूर्व-पीठिका के तैयार करने के लिए ही पहले वाली चर्चा की गई है। इस उपन्यास में भी तंत्र के और अधिक भ्रष्ट और मूल्यहीन होते जाने को कथानक बनाया गया है। लेकिन इसमें नयापन और ज़रूरी आक्रामकता है। पहली मर्तबा उपन्यास का शीर्षक आपको चौंकाने वाला लग सकता है, लेकिन उपन्यास में उतरते ही आप पाएँगे कि यह मौजूदा समय की विडंबना और विपथगामिता को द्योतित करता है। इसके वृत्तांत का विन्यास और शैली की तिर्यकता महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं।

सांप्रदायिकता पर दर्जनों उपन्यास लिखे गए हैं। *कॉमरेड गोडसे* एक आयरनिकल आख्यान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। कथानक के अनुसार, उस जगह पर जहाँ हिंदू और मुसलमान मुहल्ले मिलते हैं, प्यारे मियाँ की लाश मिली। लाश पर एक जानवर (सूअर) की पेंटिंग पड़ी हुई थी। पेंटिंग भी क्या थी, प्रदर्शनी में बँटने वाला ब्रोशर था। किसी ज़माने में दंगे के लिए कटा हुआ जानवर फेंकना पड़ता था, आज सिर्फ़ ब्रोशर ही काफ़ी है। प्यारे मियाँ का ख़ून दो अख़बार वालों के लिए, दो दंगे वालों के लिए, दो कलाकारों के लिए, दो धर्मनिरपेक्ष सौदागरों के लिए बेहद काम की चीज़ साबित हुआ। कर्फ़्यू की सर्द रात में चिनगारियों से जेब भर चुके इन सौदागरों में अलग-अलग आस्थाएँ रखने वाले दो लोग जब एक चौराहे पर मिले तो ख़ुसरो को रंग लाल हो गया। इस कथावस्तु के सहारे मात्र क़रीब डेढ़ सौ पृष्ठों में मीडिया, राजनीति और दंगों की साज़िशों को पारदर्शिता के साथ उजागर किया गया है। उपन्यास का कथानक सरलरेखीय तरीक़े से आगे नहीं बढ़ता, अपनी वक्रता से यह कथाक्रम के फ़ॉर्मूले को तोड़ता है। कथा-वर्णन एकायामी नहीं है, इसमें निरंतर, फ़ंतासी और एलीगरी की तरह कोई और अर्थ भी खुलता चलता है। इसमें प्रयुक्त व्यंग्य-शैली रोचकता को ही नहीं बढ़ाती बल्कि लेखकीय मंतव्य की ओर भी पाठक को कलात्मक तरीक़े से इंगित करती रहती है। यह मंतव्य कहीं भी प्रकट नहीं है बल्कि समूची कृति में गहरे समाहित है। उपन्यास के चरित्र व्यंग्यात्मक अतिरंजना (कैरीकेचर) के बावजूद यथार्थ और जीवंत हैं और वे चरित्र-चित्रण के प्रचलित रूढ़ियों का विखंडन करते हैं। यह दिलचस्प है कि राजनीति भी उपन्यास के कथानक में शामिल है, लेकिन एक भी राजनेता का चरित्र प्रस्तुत नहीं किया गया है। जबकि इसके घिनौनेपन को इनकी अनुपस्थिति में ही दर्शाया गया है।

उत्तर आधुनिकता के हो-हल्ले के बावजूद वास्तव में इधर लेखन में प्रयोगशीलता क्षरित हुई है। सृजन के इतिहास में देखा गया है कि तीव्र संक्रमण के समय विधाओं और शिल्प में प्रयोगशीलता बढ़ती रही है। यह विडंबना ही है

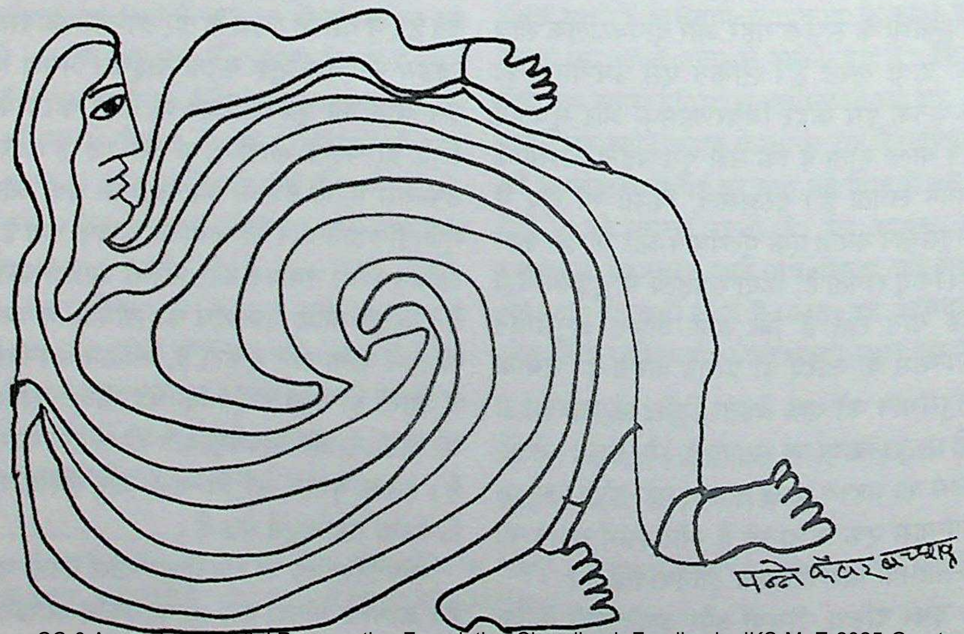

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि हमारे यहाँ संगीत, सिनेमा और पेंटिंग जैसी कला विधाओं में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं किंतु साहित्य में इसके लिए कोई विशेष तड़प और ललक परिलक्षित नहीं हो रही। क्या इसके पीछे लेखकीय कैजुअलनेस और साहस की कमी जैसे कारण तो नहीं हैं। *कॉमरेड गोडेस* की प्रयोग-धर्मिता उल्लेखनीय है और इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। कथा की वर्णन शैली में फ़िल्मों की कट-शॉट्स जैसी डिवाइस प्रयुक्त की गई है। यह वृत्तांत को कहीं बोझिल नहीं होने देती। इसके भाषा और संवादों में ताज़गी और नयापन है जो भाषा में आ रहे स्वाभाविक प्रवाह को समझे बिना आता नहीं है। वर्णन की शैली एक सर्वथा नया विन्यास रचती है। यह कैसे विन्यस्त हुई है, लेखक के आभार ज्ञापन से हमें इसे समझने में कुछ मदद मिल सकती है : फ़िल्मकार राम गोपाल वर्मा, मोबाइल कंपनियों की रिंगटोन प्रणाली और आलोचक सुधीश पचौरी के 'पोमो' बिंबात्मक उत्प्रेरण के लिए और उनके साथ मीडिया, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा कम्युनिस्ट पार्टी के मेरे उन तीन निष्ठावान मित्रों के लिए जो सचमुच, प्राणों से प्यारे भारत के लिए अपने-अपने तरीक़े से, पूरे ईमान के साथ, दिल से सपने सच करना चाहते थे, चाहते हैं।

संवादों की सेटिरिकल एप्रोच के लिए यह उदाहरण देखें : ''अच्छा होता, वह औरत सीरीज़ का ब्रोशर मिलता। कोई लफड़ा तो नहीं होता। शौचालय स्टाइल के कोयला-चित्रों की औरत से शौचालय के आस-पास घूमने वाले सूअरों के चित्र ज़्यादा ख़तरनाक होते हैं।'' सांप्रदायिकता की विवेचना में यह विडंबनात्मक तथ्य उभरता है कि प्यारे मियाँ (उपन्यास में जिनकी हत्या होती है, वे वर्तमान में जीते हैं और लिबरल हैं जबकि उनका कट्टर बेटा अपनी प्रेरणाएँ अतीत से ले रहा है। लेखक उनके ज़रिए तर्क रखता है : प्यारे मियाँ का कहना था, वे 1947 का क्या अचार डालें जब जी ही 2005 में रहे हैं। यानी मज़े की बात यह थी कि प्यारे मियाँ 2005 में जीना चाहते थे और उनकी अगली पीढ़ी, उनकी नूरे-नज़र 1947 में घूमने को मचल रही थी।...प्यारे मियाँ का मानना था कि मज़हब व्यक्तिगत मामला है, मुल्क बिलकुल अलग चीज़ है। हिस्से की भाषा में बात करोगे तो 'एंटीनेशनल' होगा। जाकर लाहौर में ही मकान लेकर देख लो, पता चल जाएगा कि 'ब्रदरहुड' की असलियत क्या है।

मीडिया की भूतपूर्व शक्ति-वृद्धि और सत्ता से उसकी दुरभिसंधि को उपन्यास इसी अंदाज़ में प्रस्तुत करता है। पत्रकार काँचवाला को पत्रकारिता धर्म निभाने पर उसके मालिक ने उसे सज़ा के तौर पर स्टोरकीपर बना दिया। यह प्रसंग इस उद्धरण के ज़रिए देखिए : बाबू धुन्नेशाह रंगीले ने उसे उस दिन गले से लगाते हुए कहा था, ''तुमने पत्रकारिता का इतिहास रच दिया है। ऐसा 'कैप्शन' मैंने कभी इंडियन एक्सप्रेस में नहीं देखा। वर्गीज और मुलगांवकर देख लेते तो तुम्हें आँखों का हीरा बना लेते। क्या लाइन लिखी है—एक घाट पर! समाजवादी, शिवसेनावादी, मनुवादी, अंबेडकरवादी, धर्मनिरपेक्षतावादी, समतावादी, जातिवादी, पैसावादी, ग्लैमरवादी—सब एक घाट पर! क्या ग़ज़ब का एक्सप्रेशन—सिर्फ़ एक कैप्शन! और सज़ा? स्टोर कीपरी!''

पत्रकारिता-धर्म को दंडित करने वाले अख़बार मालिक की बढ़ती ताक़त का नज़ारा भी देखें : अब वे कलेक्टर की गाड़ी में कर्फ़्यू देख सकते थे और होम मिनिस्टर के साथ दंगा प्रभावित बस्तियों की समस्याएँ सुन सकते थे। उनकी भी एक विचारधारा थी। उनके भी एक लाख पाठक थे। वे धारा पलट सकते थे। उन्होंने धारा पलट ही दी थी।

उपन्यास के आख़िर में तीन निम्नवर्गीय जन (इन्हें सबाल्टर्न कह सकते हैं), जो भिन्न विचार-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सरणियों से ताल्लुक़ रखते हैं, मिलकर तथाकथित धारा पलटने वाले और दंगाई अख़बार मालिक की हत्या कर देते हैं। एकबारगी ऐसा लगता है कि अंततः यह भी आक्रोश, अर्धसत्य और प्रतिघात की परंपरा का ही कथांत हुआ। पर यह अहसास बहुत देर तारी नहीं रहता और यही इस कृति की ख़ूबी है। जल्दी ही लग जाता है कि यह सिर्फ़ कथा है, ब्रेख़्तियन थिएटर के एलियनेशन प्रभाव की तरह। यह कोई क्रांति-कारिता नहीं है, पतन से उपजी हिंसा है, जो पतन से उपजे अपराध के पीछे-पीछे आती है, स्वतः स्फूर्त प्रतिकार है। लेखक वर्णन के तरीक़े से ही अनुभूत कराता है कि यह अंत नहीं, अभी तो एक अनवरत् सिलसिला है।

इसका एक परिणाम यह भी होता है कि उपन्यास हताशा पैदा नहीं करता। सामूहिक पतनशीलता, मूल्य-ह्रास और अमानवीयता के प्रति गहरी वितृष्णा उत्पन्न करता है। साथ ही एक ऐसा सेंस ऑफ़ रियलाइज़ेशन भी जिसमें हम अपने 'सेल्फ़' का भी मुआयना कर सकते हैं। और एक कृति यही तो करती है। स्वप्न पूरे होने के लिए नहीं बल्कि आगे बढ़ने के लिए होते हैं, शुरू में लेखक ने पाओलो कोएलो को 'अल्केमिस्ट' से उद्धरित किया है : मुझे डर है...अगर मेरा सपना सच हो गया, तो जीने के लिए मेरे पास बचेगा ही क्या ?

चर्चित उपन्यास :

कॉमरेड गोडसे : यशवंत व्यास; फ़ुल सर्कल पब्लिशिंग प्रा. लि., जे-40, ज़ोर बाग़ लेन, नई दिल्ली; 2006; 95 रुपए

राजाराम भादू की कविताएँ एवं समीक्षात्मक आलेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। संपर्क : समांतर, 43, हिम्मत नगर, टोंक रोड, जयपुर-302018

महेश कटारे

लोकतांत्रिक अराजकता के विरोध का साहस

बात जाने कहाँ जाए पर कहने को जी हो जाता है कि कुछ लोग शायद किसी अलग ही माटी के बने होते हैं जिन्हें यदि लगता है कि यह राह गहना ज़रूरी और सही है तो गह लेते हैं, फिर गही तो गही। हिंदी पट्टी के उपेक्षित ग्राम यथार्थ का उद्घाटन मिथिलेश्वर की प्रतिज्ञा में शामिल हो गया है। *माटी कहे कुम्हार से* इसी प्रतिज्ञा की उपज है। बौद्धिकता का बाईपास लोक को या तो बिना छुए गुज़र जाता है, या उसे सेवकीय उपयोग की दृष्टि से देखते हुए रोमांटिक बना देता है। दुनिया को मुट्ठी में कर लेने का समृद्ध-स्वप्न देखनेवाली नागरी पीढ़ी की एक विडंबना यह है कि प्रकृति को केबल के पर्दे से पहचानती हैं। मौसमों, त्योहारों का पता उसे मीडिया से ही मिलता है। उसकी बसाहट में न नीचे ज़मीन है, न ऊपर आसमान। नीचे कांक्रीट का फ़र्श ऊपर कांक्रीट की छत। 'इंडिया' नाम से पहचानी जाती इस बस्ती का मिट्टी से परिचय गमले भर ही होता है और कुम्हार ऐसी जाति जो कुल्हड़ बनाती है। उसे पाँच सौ से अधिक पृष्ठों वाली बात सुनने का अवकाश भी नहीं है।

उपन्यास को बुर्जुआ समाज का महाकाव्य कहा जाता है। यह मानव जीवन की विविधता को देश, काल और दृष्टि के संगुफन में आकार देता है। कभी-कभार अपनी गढ़न में कोई-कोई चरित्र अपनी ही स्वाभाविकता में इतना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दृढ़ व तीक्ष्ण हो जाता है कि वह यथास्थिति के परकोटे में छेद कर दरका देता है। वह लेखक की पकड़ से छूट किसी उद्दाम प्रवाह की भाँति अपना रास्ता पकड़ने लगता है। मुनिला एक ऐसा ही चरित्र है जिसकी मिट्टी शोधकर लेखक ने चाकपर तो चढ़ा दी, फिर वह सर्जक से स्वतंत्र हो अपनी आकृति में स्वयमेव ढलती गई। गूँगी ब्राह्मणी कलावती की कोख और यदुवंशी बिसुनदेव से पैदा मुन्नी की आँखें उस झोंपड़पट्टी में खुली; जहाँ अपना जाति समाज और क्षेत्र छोड़कर आए/भागे लोगों का बसेरा था। माँ भाड़े के हत्यारों का शिकार हुई तो पिता अपनी पत्नी के क़ातिलों से जूझता हुआ मारा गया। मातृ-पितृहीन मुन्नी को पाला एक नाम गोत्रहीन वृद्धा ने। किशोरी मुन्नी को यह दादी भी अकेला कर गई। मेहनत-मजूरी के आसरे पलती-बढ़ती मुन्नी की देह कौंध मारने लगी। देखने वाला हर नौजवान मुन्नी को बाँहों में भरने को आतुर। फिर आ टकराया मुनीलाल ज़ो पारिवारिक शत्रुता में भभकता भटक रहा था। मुन्नी मुनीलाल पासवान से जुड़कर मुनिला बन गई। झोंपड़पट्टी छोड़ वे झाबुआ गाँव में पहुँचे जहाँ जातिवादी राजनीति की पौध रोपी जा रही थी और लुच्चे, लफ़ंगे, रंगबाज़ों को झंडे की छाँव दी जा रही थी। मुनीलाल भी राजनैतिक गुंडई की भेंट चढ़ गया। वह गाँव छूटा तो मुनिला बजरंगपुर के प्रतिष्ठित, अधेड़ राजपूत सुमेर सिंह के आसरे लगी। यहाँ भूमि संघर्ष की चौपड़ सजी हुई थी। अधेड़ अकेलेपन को बाँटने में गर्भवती हुई मुनिला कायर का गर्भ गिराने की चेष्टा में अधमरी हो शहर के 'रजिया रेहान मुहम्मदी क्लीनिक' के हवाले होती है...। यहाँ चिकित्सा व्यवसाय के रूप में है और इसी के साथ समुदाय विशेष की सरपरस्ती जताते हुए राजनैतिक बिचौलिए की भूमिका भी निभाई जाती है। मुनिला जब असली चेहरा देखती है तो मुहम्मदी क्लीनिक के दाई कार्य को तिलांजलि दे जिस संपन्न घर में घरेलू नौकरानी बनती है वह भ्रष्ट उच्चाधिकारी एस.के.सिंह का है। सत्ताधारी दल का मुँहलगा होने से यहाँ बस पैसा ही सच है। भ्रष्टाचार के ख़ज़ाने हैं इस रहस्यमय घर में। यहाँ हुई एक हत्या को सह न पाने के चलते मुनिला जनहित सेवादल के दफ़्तर में पहुँच सिंह के काले कारनामों का भंडाफोड़ कर रातों-रात प्रसिद्ध हो जाती है। अब पहले तो स्त्री, ऊपर से दलित का ठप्पा लगी और तीसरे... ? छोड़िए इसे; समझना भर पर्याप्त है। पार्टी अध्यक्ष गगन बिहारी अपनी पार्टी के लिए उसे दिखाऊ चेहरा बनाना चाहते हैं...मुनिला माटी की उपज है, माटी की धड़कन जानती है, भाषा बोलती है। उसमें अदम्य साहस, साफ़गोई और जीवन को दाँव पर लगा देने का जज़्बा है। राजनीति उसे मोहरा बनाना चाहती है तो स्वयं ही नंगी होने लगती है।...तब? राजनैतिक षड्यंत्र के तहत अपनी ही पार्टी के मंच पर अपनी ही पार्टी की गोलियों से छलनी हो गई मुनिला।

दरअसल 'भारत दैट इज इंडिया' वाला विधान लागू होने के बाद जन्मी गाँव की औरत की समर कथा है— *माटी कहे कुम्हार से*। इसमें घटती हर घटना उस स्त्री को जीने के लिए लड़ा जाने वाला युद्ध है। युद्धरत स्त्री के भोगे और आँखन देखे का घटित होना है। लेखक शिल्प के स्तर पर कोई चमत्कार या प्रयोग नहीं करता। हाँ मुहावरे हैं, दृश्यबंध हैं जो बहुत दिनों बाद दूर देश के बीच किसी अपने से मिलने जैसा सुख देते हैं। कहन, कौशल, सूचना, समाहार सब इतना सहज है कि आसानी से पारंपरिकता के कोने में सरकाया जा सकता है—पर यह शायद जीवन की सच्चाई का उत्स ही है जो ज़मीन की परतें तोड़कर मुनिला की शक्ल में सिर उठाने लगता है। इसकी गतिशीलता विश्वसनीय ढंग से विस्मित करती है।

नरही की झोंपडपट्टी का जीवन बिलकुल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पारदर्शी है:''सचमुच उस झोंपड़पट्टी में कमाना-खाना और हँसना-गाना ही था, रोना-पछताना नहीं। अतीत और भविष्य की याद और उसमें विश्वास बनाए रखने की फ़ुर्सत वहाँ किसी को नहीं थी। उनके लिए वर्तमान ही सबकुछ था।'' इस झोंपड़पट्टी में न जाति थी न धर्म न परंपरा की व्यवस्था। मिट्टी के पुतले हैं सबके सब। एक पुतली शिशु से लड़की, लड़की से औरत...पत्नी...विधवा...रखैल...दाई...लौंडी के नरक और लोक पार करती राजनीति की ज़रूरत बन जाती है। राजनीति उसे जाति बनाना चाहती है और मीडिया एक विक्रय योग्य वस्तु।...किंतु माटी तो विक्रय के सारे अनुबंधों को नकार अपनी नश्वर अजेयता में जीती जाती है। वह लोकतंत्र, जनतंत्र, सामाजिक न्याय वग़ैरह-वग़ैरह की परिभाषा नहीं जानती, पर समझती है कि इंडिया वाली राजनीति इस मुक़ाम पर पहुँच चुकी है कि जिस पार्टी में दबंग जाति, लठैत नेता व ख़ूँख़्वार कार्यकर्ता होंगे वही लोकतंत्र की मुखिया होगी। पंचायत, विधानसभा, लोकसभा...सारे चुनाव जाति ही जीतती है : ''असल में नेताओं ने यह आजमाकर देख लिया है कि भारतीय लोकतंत्र के संचालन में जातिवादी नुसख़ा बेहद उपयोगी साबित हुआ है। भारतीय लोकतंत्र के नेताओं की यह विशिष्ट खोज है।'' (पृ.183)

उपन्यास क्रमशः आगे बढ़ते हुए लोकतांत्रिक अराजकता के विरुद्ध साहसिक वक्तव्य बनता जाता है। साहसिक इसलिए कि इस अराजक लोकतंत्र के लठैती न्याय के प्रतिकूल कुछ भी कहने वाले पर प्रतिक्रियावादी, ब्राह्मणवादी की गाली फेंक दी जाती है। इसलिए अनेक बड़बोले क्रांतिकारी सार्वजनिक रूप से कुछ कहने से डरते हैं और अपने बचाव में किंतु-परंतु तर्क गढ़ लेते हैं। लोग इससे बेख़बर नहीं कि तानाशाही बहुधा जनहित, समानता, न्याय जैसे पवित्र शब्दों की पालकी पर चढ़कर आती है। शासन सूत्र किसी जाति, क़बीले के हाथों में पहुँच, व्यक्ति में निहित होते जाते हैं। रेहान मुहम्मदी क्लीनिक मज़हब के नाम पर मतों का ही कारोबारी है। चूँकि परिवेश बिहार का है अतः वहाँ की पूरी उथल-पुथल, बदबू—एक गहरी पड़ताल के साथ उपन्यास में उपस्थित है।

कुछ विवरण उपन्यास में झोल पैदा करते हुए कमज़ोर भी बनाते हैं। लगता है कि लेखक के पास इतना होमवर्क है कि उसे संक्षेप करने में कुछ छूटने का भय खड़ा हो जाता है पर यह भी है कि अधिक पुष्टता गठन को थुलथुला भी करती है। हाँ स्थूलता के बीच भी कुछ अछूते प्रसंग जुड़े हैं। यथा—संसर्ग के बाद स्वयं को औचित्य प्रदान करते हुए व मुनिला की अकबकाहट को आश्वस्त करते बूढ़े सुमेर सिंह का कहना : ''नदी में जब बाढ़ आती है मुनिला, तो वह किसी के रोके नहीं रुकती।'' यद्यपि वह अपनी मर्दानगी के प्रति शंकित भी है : ''पता नहीं मैं तुझे जँचता हूँ या नहीं?'' (पृ. 250)

खाते-पीते घरों से मट्ठा माँगकर ले जाना गाँव का सदियों पुराना चलन है, जिसके अवशेष जहाँ-तहाँ अब भी बचे हैं। लेखक ने इन प्रसंगों के माध्यम से अनेक पाठकों की स्मृतियों को कुरेदा है। सच है कि गाँव अब भोला नहीं रहा। अपने टुच्चेपन में कहीं-कहीं तो वह शहर को पीछे छोड़ देता है। जातिवादी वैमनस्य और पर-अकाज की वृत्ति ने आपस का उठना-बैठना और सहज व्यवहार समाप्त कर दिया है। मेधा अब गाँव से शहर तथा शहर से विदेश की ओर भाग रही, भगाई जा रही है। काठी, तमंचे का वर्चस्व बिहार से गुजरात और हिमालय से सागर तक हो गया है।

नायक विहीन समय राजनैतिक नेतृत्व से निराश हो, एक्टरों, क्रिकेटरों में नायकत्व रोप रहा है। ये लालसाओं के वाहक हैं आस्था के नहीं। इस समय माटी कहे भी तो क्या? वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुनिला को रच देती है। मुनिला मोहरा बन जाएगी किसी जनहित सेवादल की। मारी जाएगी मुनिला और बचे रहेंगे कोई अध्यक्ष जी...गगन बिहारी जी।...पर आदर्शों के अकाल में मुनिला लड़ने का संकल्प तो जगाती ही है।

चर्चित उपन्यास :

माटी कहे कुम्हार से : मिथिलेश्वर ; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; 2006; 385 रुपए

महेश कटारे का जन्म 1948 में हुआ। कहानी और नाटक की चार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् से पुरस्कृत हैं। संपर्क : निराला नगर, सिंहपुर रोड, मुरार, ग्वालियर-474006 (म.प्र.)

कुमुद शर्मा

कवि का निजी अनुभव

अपनी रचनाशीलता को *तीसरा सप्तक* में प्रमाणित करनेवाले मदन वात्स्यायन के ताज़ा प्रकाशित कविता-संग्रह *शुक्रतारा* को पढ़ना एक सुखद अनुभव है। सन् 1950 से 1962 के बीच लिखी गई छोटी-लंबी अड़सठ कविताओं का यह संकलन मृत्यु के उपरांत कवि के अध्ययन कक्ष में उपलब्ध और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं से तैयार किया गया है। सप्तक परिवार के कवियों से अलग अपने ही भूमिचित्र पर अपने विशिष्ट संस्कारों, जीवन के प्रति गहरी संवेदनशीलता और एक इंजीनियर कवि की अनुभव संपन्नता से निःसृत ये कविताएँ अपना रूप स्वयं लेकर उपजी हैं। ये किसी विशेष विचारधारा या किसी जीवन दर्शन की सूक्ष्म व्याख्याओं के फेर में पड़कर रची गई कविताएँ नहीं बल्कि जीवन में गहरे अंतःप्रवेश कर अनुभवों को टटोलने और जीवन के अभिप्रायों को जानने-समझने की प्रक्रिया में बनी है। अज्ञेय के शब्दों को उधार लें तो इनमें कवि का 'निजी अनुभव बोलता है'।

शुक्रतारा संग्रह में कवि के काव्यानुभव की परिधि में जीवन की कठोरता और मधुरता दोनों ही समाविष्ट हैं। इनमें कल-कारख़ाने का निर्मम कोलाहल है, पूँजीवाद के विरुद्ध तनी आवाज़ है। नौकरशाही मानसिकता से टकराहट की गूँज है, सरकारी तंत्र की चीड़-फाड़ है। अपने समय के दबावों को कविता ने अपनी आँखों से देखा है। लेकिन ख़ासियत यह है मदन वात्स्यायन सामयिकता के प्रति आग्रह अथवा बौद्धिक उत्तेजना के तहत वस्तुगत सत्य के ही दर्शन नहीं कराते बल्कि रागात्मक तरलता से भी उनका गहरा नाता है। दरअसल सामयिक दबावों के भीतर से व्यक्ति और अभिव्यक्ति के लिए रास्ता तलाशती कविताएँ हैं।

संग्रह के एक बड़े हिस्से में प्रकृति, प्रेम और सौंद्रर्य की कविताएँ हैं। प्रकृति के प्रति मोहग्रस्तता मदन वात्स्यायन की कविताओं में भरपूर है। इसलिए उनके यहाँ 'चंपई रेशमी वस्त्र पहने', 'उँगली में नग भर पहने', 'रोशनी की बेटी', 'आसमान की हरिणी किरणों के केशवाली' उषा का स्तवन है। वहाँ दूज का चाँद है। हरसिंगार और पलास के फूल हैं। सेमर और गुलमोहर हैं। बसंती बयार है, फागुनी सुगंध है। होली की आतुर उमंग हैं। इन कविताओं में प्रेम और सौंदर्य की बारीकियाँ कहीं-कहीं छायावादी रोमांस के संस्पर्श का आभास देती हैं। लेकिन ग़ौर से देखें तो इन कविताओं का अपना अलग मिज़ाज है। प्रेम और रोमांस के कई अन्य कवियों की तरह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन कविताओं को देखकर मदन वात्स्यायन को महज़ देह, रूप, रस, गंध का कवि घोषित नहीं किया जा सकता। इस तरह की कविताएँ व्यक्तिवादी दर्शन की प्रभाव संपन्नता में क़ैद नहीं हैं बल्कि सामाजिक भावभूमि पर वस्तुस्थिति को पकड़ने की कोशिश उनमें बहुत स्पष्ट है। नई कविता के पुरोधा जगदीश गुप्त की तरह कवि विसंगतियों और विकृतियों से मुक्ति पाने के लिए प्रकृति की गोद में नहीं गया है बल्कि इस इंजीनियर कवि ने राक्षसी मशीनों के अनवरत कर्कश कोलाहल में मनुष्यता का दम घुटते देखा है। इसलिए पूर्णिमा के उजाले की जगह उसकी आँखें पूर्णिमा के अंधकार को कल-कारख़ाने की संस्कृति के साथ देखती हैं उसे लगता है चाँदनी का तेज़ दूषित हो रहा है। 'यंत्र की कुदृष्टि' में उसे महसूस होता है : *करुणा घट रही है...कालिमा बढ़ रही है; घट रही है चाँदनी; हम खो गए हैं दिशा।*

इसी तरह 'आओ वसंत', 'बयार' जैसी कविताओं में वसंत की शीतल बयार कवि के कोमल कुसुम मन में प्रेम और सौंदर्य के अनगिनत भाव जगाती है तो 'असुर वसंत' में कवि वसंत के आगमन को तूफ़ान का आना समझता है। वसंत के उल्लास और हुलास को वह औद्योगिक पूँजीवाद की भेंट चढ़ गए देखता है। कल-कारख़ाने के भोंपू मशीनों की चीख़ में उसे लगता है : *धुआँधार अग्निवाणों की वर्षा से काल-सा वसंत दिशाओं को, चिथड़ी-चिथड़ी किए दे रहा है।* इस तरह मदन वात्स्यायन औद्योगिक पूँजीवाद की आक्रामकता को प्रकृति के विविध संदर्भों में निरूपित कर उसके विरुद्ध वातावरण रचने की कोशिश करते हैं।

प्रणय व्यंजना और स्त्री-चिंतन के विविध पक्षों की गहरी समझ संग्रह की कविताओं में दिखाई पड़ती है। प्रणय संबंधी कविताएँ सतही या छिछले रोमांस की अतिरंजना से दूर निश्चल दांपत्य प्रेम की झाँसी प्रस्तुत करती हैं। पत्नी और बेटी पर लिखी कविताएँ एक साथ केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की कविताओं की याद दिलाती है। 'झउआ के फूल' कविता स्त्री विमर्श का जैसे आईना है। *पीठ बने धोबिया का पाट मालिक यदि देख ले अभी* जैसी पंक्तियाँ स्त्री के प्रति गहरी चिंता और मर्म से ही निकल सकती हैं।

इसके अतिरिक्त संग्रह की 'मौर्य दर्शन', 'शिफ़्ट फ़ोर मैन', 'रोज़ शाम को' तथा 'नया मेघदूत' कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'मौर्य दर्शन' में वर्तमान की समस्याओं के लिए इतिहास से मूल्यों के मोती चुनने का भाव है। 'शिफ़्ट फ़ोर मैन' में औद्योगिक पूँजीवाद से कवि की टकराहट है। 'रोज़ शाम को' कविता में कवि ने सामाजिक विसंगतियों के दर्शन को काव्यानुभव में ढाला है। 'नया मेघदूत' में कालिदासीय ज़मीन पर अंबर की जगह धरती की बात है। अपने समय की विडंबनाओं और विसंगतियों के तमाम दस्तावेज़ इस कविता में नत्थी है; कुछ इस तरह : *यहाँ एक ओर देखोगे / मदासेठों की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ / ओहदा शाहों के बड़े-बड़े बँगले / उनकी चमचमाती लंबी-लंबी मोटरें। / और दूसरी ओर / खानों से कारख़ानों से, टूटी झोंपड़ियों से निकलते / सूअर-जैसे नंगे, सूअर-जैसे गंदे और सूअर जैसे विकृत शरीर वाले / पाँव घसीटते मेरे सूबे के लोग। / इतिहास यह वैभवशाली क्षेत्र मेरे सूबे की क़िस्मत पर नियति / के व्यंग्य अट्टहास हैं।*

इस संग्रह में सत्रह छंदोबद्ध सॉनेट हैं। इनमें केमिकल इंजीनियर की शब्दावली में मशीनी युग में विकासवाद के सिद्धांतों से गुज़रकर सिद्धि और संभावना के अनंत द्वार खोलने वाले वैज्ञानिक युग के बीच मनुष्यत्व को बचा पाने की चिंता और संकल्प दिखाई देता है।

कविताओं में निहित विषय-वस्तु चाहे कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी हो स्वतंत्र भारत में औद्योगिक पूँजीवाद की भयावहता, विसंगतियों के फैलाव की चिंता प्राय: हर जगह दिखाई देती है। कवि को आज़ादी के बाद जीवन के विविध क्षेत्रों में उभरी असमंजस की मानसिकता का बोध हैं। व्यापक होती जा रही विसंगतियों की पहचान है। वह इस बात से बेख़बर नहीं है कि—'प्रांतीयता, जातीयता, भ्रष्टता', 'ख़ून से अरजी स्वदेश-स्वतंत्रता' को 'दानवी-सी' रौंदने को खड़ी है। व्यवस्था विरोध में उपमा स्वर तनता है : *हाय नेहरू! तेरे दीमक / तेरी पूँजी चाट रहे / रामराज्य की जगह लग रहा / रावण का दरबार।*

मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं, विसंगतियों और मशीनी संस्कृति की यातना झेलते और उससे मुठभेड़ करते मनुष्य का मनुष्य चित्र इन कविताओं में मौजूद है। मगर इस मनुष्य की ख़ास बात यह है कि यह संघर्ष और यातना की प्रक्रिया में जीवन के कठोर यथार्थ से टकराते हुए टूटता नहीं। नेहरू के प्रति, नेहरू युग के प्रति और मनुष्यता के प्रति वह पूर्ण आस्थावान है। उसमें अँधेरे से उजाले की तरफ़ जाने की आकांक्षा बलवती है। इसलिए चिंता में, अँधेरे के वह स्वयं से प्रश्न करता है : *किसी क्षितिज के पार कहीं पर / है कोई सशक्त पोत क्या / उषा-किरण के पालों वाला?* प्रश्न का उत्तर उसके भीतर मौजूद संकल्प शक्ति में ही निहित है। वह आश्वस्ति के भाव से भरा-पूरा है। उसे विश्वास है कि कुछ मानवीय सरोकार बचे हुए हैं जो मनुष्य के विरुद्ध विनाश की कार्यवाही से हमें बचा लेंगे।

इस संग्रह की कविताएँ केवल जीवन के यथार्थ या अपने समय के सवालों से टकराने के कारण ही असरकारक नहीं हैं बल्कि इसे व्यक्त करनेवाली आवेगमयी भाषा और लय को साधने में भी ये कामयाब हैं। कई कविताओं में गेयता का गुण इतना प्रभावी है कि ये समवेत स्वरों में कुशलतापूर्वक अलापी जा सकती हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इस संग्रह की कविताओं में जीवन के विभिन्न शेड्स हैं। जहाँ सपने हैं, चिंता है, समय के सवाल हैं, धूप है, अँधेरा है, कड़वाहट है, मिठास है। अपने रूप-विधान और अंतर्वस्तु दोनों में एक ख़ास अंदाज़ के कारण ये कविताएँ पाठक की चेतना में आसानी से प्रवेश पा सकने की क्षमता से भरपूर हैं।

चर्चित कविता-संग्रह :

शुक्रतारा : मदन वात्स्यायन; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; 2006; 150 रुपए

कुमुद शर्मा के आलोचनात्मक आलेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। संपर्क : एफ़-9/जी, मुनीरका डी.डी.ए. फ़्लैट्स, नई दिल्ली; फ़ोन : 26168421, मो. 9811719898

अजय कुमार मिश्र

एक ओझल साझा साहित्य

डॉ. परमानंद पांचाल की पुस्तक *दक्खिनी हिंदी : इतिहास और शब्द-संपदा* दक्खिनी हिंदी के क्रमिक विकास के लेखा-जोखा के साथ-साथ उसकी भाषिक ऐतिहासिक और धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, साहित्यिक तथा अन्य शब्द वैविध्य स्तबक के फ़ारसी, अरबी तथा संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं तथा साहित्य को आठ ऑपरेशन थिएटरों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में विभाजित किया गया है। इसके अलावा उपसंहार और तीन परिशिष्टों–दक्खिनी हिंदी के सामान्य तथा संख्यावाची शब्द गुच्छ के साथ-साथ इस भाषा साहित्य के कुछ काव्य रूढ़ियों तथा अंत: कथाओं की सामग्री को भी समेटने का भरसक प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की पुष्कल सामग्री इस मायने में भी बड़ी अभ्यर्हरणीय लगती है कि हिंदी भाषा तथा साहित्य की ऐतिहासिक शाखाओं, प्रशाखाओं के नज़रिए से एक अहम कड़ी; जो अनुसंधानकर्ताओं की उपेक्षा तथा भाषा और साहित्य की राजनीति के कारण ओझल-सी हो गई है, उसे डॉ. पांचाल ने बड़े ठोस ढंग से उजागर करने का सार्थक प्रयास किया है। ख़ासकर दक्खिनी हिंदी की धार्मिक, दार्शनिक, प्रशासनिक तथा साहित्यिक शब्दावली के बीच जो अरबी, फ़ारसी तथा संस्कृत की दृष्टि से इसके शब्द इतिहास-सौंदर्य की भाषिक सामुदायिकता, सद्भाव तथा संप्रेषणीयता की ओजस्विता और वैविध्यता है। वह निश्चित रूप से भाषा की जीवंतता तथा ग्राह्यता का बोधक है। ज़ाहिर-सी बात है कि इस भाषा में आम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े उनका सार्थक संप्रेषण दक्खिनी हिंदी की सुदीर्घ परंपरा का सूचक है।

पुस्तक से गुज़रने से महसूस होता है कि आज की हिंदी भाषा तथा उसके साहित्य की परंपरा में दक्खिनी हिंदी की ऊर्जस्विता को नकारा जाना न केवल प्रस्तुत उम्दा साहित्य के साथ अन्याय है अपितु कहीं न कहीं समसामयिक हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण कड़ी से अपने आपको ही ओझल करना भी है क्योंकि साहित्य तथा भाषा अपने समकालीन संस्कृति के ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक मूल्यांकन का अंत:साक्ष्य के रूप में बड़ा अहम दस्तावेज़ भी होता है। और यदि दक्खिनी हिंदी को हम आज की हिंदी के उत्तरोत्तर विकास क्रम से विच्छिन्न करके पठन-पाठन की बात पर बल दें तो इसका मतलब साफ़ है कि हम अपनी तब्सरा की मूल धारा से ख़ुद-ब-ख़ुद स्खलित होकर एकांग मुखी पगडंडी की ओर भटकना चाहते हैं। इतिहास की क्रमबद्धता से हटकर चिंतन का सिलसिला अपनी परंपरा से सर्वथा विमुख होना होता है। यह विमुखता इनोवेटिव सोच की संभावना के दरवाज़े को भी निमीलित कर देता है। इसका भी ध्यान रहे कि आज के इस ख़तरनाक भूमंडलीकरण के दौर में भाषा तथा साहित्य के तड़ित चालक के माध्यम से अपनी संस्कृति की हिफ़ाज़त करनी ही होगी क्योंकि भाषा शास्त्री एंड्रयू डेली ने भी अपनी पुस्तक *लौंग्वेज इन डेंजर* में अपनी मौलिकता बचाने के लिए अपनी भाषा को बचाने की बात पर काफ़ी बल दिया है। डॉ. पांचाल ने भी इसी आशय को उठाते हुए लिखा है कि ''हिंदी-साहित्य के अध्येता जहाँ मैथिली के 'विद्यापति' ब्रज के 'सूर' और बिहारी, अवधी के 'जायसी' और 'तुलसी', राजस्थानी के 'पेलि किसन रूक्मणिरी' के रचयिता राठौर राज पृथ्वीराज का अध्ययन आवश्यक समझते हैं, वहीं दक्खिनी के 'मुल्ला वजही गवासी' और 'इबनेनिशाती' को उनका अपेक्षित स्थान क्यों नहीं देते''। (पृ. 299)। लेकिन साथ ही साथ इसका भी ध्यान रहे कि उत्तर आधुनिकता के फ़लसफ़े ने जहाँ शब्दार्थ चिंतन की दुनिया में कहीं न कहीं अराजकता भी गुंजाइश बना दी है। लेकिन इसकी क्षेत्रीयता परक समीक्षा का महत्त्व मलहम का काम करता नज़र आता है।

दक्खिनी हिंदी की अधिकांश रचनाएँ मूलत: फ़ारसी लिपि में होने के कारण हिंदी विद्वानों द्वारा इसकी पाठ सुगमता की कमी के कारण इसे पढ़ने की असमर्थता कोई ख़ास जायज़ कारण नहीं माना जा सकता। हमें इसका ध्यान रहे कि अंग्रेज़ जब भारतवर्ष पर हुकूमत करने आए तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहाँ के बहुत सारे ग्रंथों, धर्मग्रंथों का संस्कृत भाषा से अंग्रेज़ी में तर्जुमा भी करवाया ताकि हिंदुस्तानी पर अपने प्रशासन के सिक्के को जमाने के लिए इन ग्रंथों के माध्यम से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का कुछ अंदाज़ लगाया जा सके। इसी सिलसिले में मनुस्मृति का ''ए कोड ऑफ़ जेन्टू लॉज'' (1776 ई.) नाम से अंग्रेज़ी अनुवाद किया गया और संस्कृत के परंपरागत विद्वान को विश्व के कालजयी गीतिकाव्य *मेघदूत* (कालिदास) के अंग्रेज़ी तर्जुमा को लेकर इस तथ्य पर ध्यान संभवत: नहीं गया हो कि भारतीय भूगोल तथा संस्कृति की सम्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए भी फ़िरंगियों ने ऐसा किया। अत: डॉ. पांचाल ने भी सही लिखा है कि ''यदि दक्खिनी के साहित्य का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण हो जाए तो हिंदी के पाठकों को उसे समझने और इसका अध्ययन करने में बड़ी सहायता मिलेगी इससे मध्यकालीन हिंदी साहित्य का निश्चय ही व्यापक विस्तार हो जाएगा और दक्खिनी का यह लुप्तप्राय साहित्य हिंदी को एक अमूल्य धरोहर के रूप में प्राप्त होगा।'' (पृ. 51)। हमें 'हिंदी-उर्दू' के नाम पर उठे बवाल को भी नहीं भूलना चाहिए। लेकिन दक्खिनी हिंदी में मलयाली तथा तमिल शब्दों को अपनाया जाना तथा सूफ़ी फ़लसफ़े को फलने-फूलने की कहानी को भी नहीं भूलना चाहिए। अत: आज भाषा तथा भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से भी उत्तर-दक्षिण भारत की सांस्कृतिक एकता की धरोहर की तलाश की भी आवश्यकता जान पड़ती है। समीक्ष्य पुस्तक के लेखक ने यह बड़ा जायज़ प्रश्न उठाया है कि निजामशाही शासन और उसके बाद दक्खिनी हिंदी केवल बोलचाल की भाषा इसलिए रह गई क्योंकि उर्दू ने अपना स्थान शासन की भाषा के रूप में ले लिया और इस प्रतिद्वंद्विता का परिणाम यह निकला कि आर्य समाज के सक्रिय पहल के बाद यहाँ हिंदी भाषा ने भी अपना महत्त्व खोजने का सार्थक प्रयास शुरू कर दिया। और इसी का परिणाम था कि आज़ादी के बाद दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना भी की गई। ऐसी स्थिति में दक्खिनी हिंदी के साहित्य का ओझल होना स्वाभाविक है। लेकिन प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने यह जो ख़ुलासा किया है कि आज भी यह भाषा वहाँ के लोक गीतों में विद्यमान है। वह तथ्य अपने आप में बड़ा अन्वेषण युक्त जान पड़ता है। इससे दक्खिनी हिंदी की ख़ासियत भी उभरकर सामने आती है साथ ही साथ इनका लोक संस्कृति परक अध्ययन तथा विस्तृत भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षा की ज़रूरत जान पड़ती है। यहाँ इसका भी ख़याल रहे कि आज विलुप्त हो रही जन-जाति,प्रजाति और उनकी सभ्यता एवं संस्कृति को बचाने तथा जानने के लिए बड़े व्यापक स्तर पर गवेषणा हो रही है। संस्कृति के अंत:साक्ष्य के रूप में दक्खिनी हिंदी की दिशा में ऐसी पहल बड़ी मायने रख सकती है। ग्रंथकार का यह भी मानना है कि दक्खिनी हिंदी पर अरबी-फ़ारसी के प्रभाव के कई कारणों में एक यह भी सबब जान पड़ता है कि इस भाषा के अधिकांश अनुयायी इस्लाम मत को मानने वाले थे। ज़ाहिर-सी बात है, इस चिंतन के गर्भ से *मेराजुल आशकीन, हिदायतनामा* (बंदा नवाज), *ख़ुशनामा* (शाह मीरान जी शम्शुल उश्शाक) तथा *नौसरहार* (शाह अशरफ) जैसी रचनाओं का सृजन स्वाभाविक था। साथ ही साथ फ़ारसी को राजभाषा का ओहदा मिलने से इसकी पहचान में चार चाँद लग गए। उस प्रसंग में यह चर्चा भी उचित लगती है कि ''दारा शिकोह संपादित उपनिषदों का एक फ़ारसी अनुवाद बेर्निए जब यूरोप ले गया और उसके आधार पर ही दू पेंर ने 1801 ई. में इसका लैटिन, ग्रीक और फ़ारसी मिश्रित अनुवाद प्रस्तुत किया तो सारे यूरोप द्वारा संस्कृत भाषा तथा इसके साहित्य पर फिर से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवायद शुरू कर दी गई।'' उसी प्रकार ईरान, अरब तथा तुर्की आदि के व्यापारियों द्वारा भारतीय व्यापार वाणिज्य के प्रति आकर्षण और यहाँ की सभ्यता तथा संस्कृति में घुलने-मिलने ने भी इसे प्रभावित किया होगा। इसी सिलसिले में दक्खिनी हिंदी के लेखकों द्वारा विदेशी शब्दों का अपने उच्चारण, भावाभिव्यक्ति, मनोविज्ञान की सहूलियत की दृष्टि से पौंलाद, खसालत, खज़ाने, नजीक तथा जागा जैसे नूतन शब्दों को क्वायन किया जाना भी मायने रखता है जिसका अर्थ क्रमश: फ़ौलाद, खसालत, ख़ज़ाने, नज़दीक तथा जगह होता है। विद्वान लेखक ने अरबी-फ़ारसी शब्दों का दक्खिनी हिंदी पर प्रभाव के सांस्कृतिक, धार्मिक कारणों को तो बड़ा स्पष्ट रूप से उठाया है। लेकिन इन विदेशी शब्दों में जो ध्वन्यात्मक शब्द परिवर्तन के सबब की छानबीन भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी अपेक्षित जान पड़ता है! लेकिन इससे इतना तो ज़रूर साफ़ है कि दक्खिनी हिंदी में नए शब्दों का गढ़ा जाना जहाँ उसकी भाषिक प्रवाह और अपने समसामयिक भाषाओं के प्रति आपसी मेल-जोल की दिशा में बढ़ते क़दम लगते हैं वहीं अपने शब्द-संपदा की मौलिक श्रीवृद्धि के प्रति रुझान भी। भाषा विज्ञान की दृष्टि से किसी भी भाषा के क्रमिक विकास की यही जीवंतता भी होती है।

लेखक ने यह भी स्पष्ट किया है कि दक्खिनी हिंदी में अनेक ऐसे शब्द हैं जिनका वैदिक संस्कृत से संबंध है। मिसाल के तौर पर 'स्तंभ' को ही लिया जाए, हिंदी से संबंधित बोलियों में 'थंब' की अपेक्षा 'खंभा' ही अधिक प्रचलित है और दक्खिनी हिंदी में 'खंभ' शब्द पचा लिया गया है। यह भी ग़ौर करने की बात है कि हरियाणवी बोली के अनेक ग्रामीण शब्द दक्खिनी हिंदी की साहित्यिक रचनाओं में समाहित हैं। लेखक के हिसाब से दक्खिनी हिंदी के अधिकांश कवि हरियाणा या उसके आस-पास से जुड़े रहने के कारण इन शब्दों को भी अपने मनोनुकूल अधिक नज़दीक समझा। इस हिंदी के कवि ने संस्कृत के अनेक तद्भव शब्दों का भी अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है जिसका मूल कारण संस्कृत का भारतवर्ष की संस्कृति भाषा के साथ-साथ भारतीय साहित्य के लिए थिंक टैंक भी होना है। इसके अलावा द्रविड़ कुल की भाषाओं से भी कुछ शब्द दक्खिनी हिंदी में तद्भव के रूप में समा लिए गए हैं। यथा-खोंपा का अर्थ बालों का समूह होता है जो तमिल शब्द 'कुप्पु' से सृजित है। इस प्रकार दार्शनिक तथा धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक, प्रशासनिक तथा सामरिक चित्रण संबंधी शब्दों की प्रचुरता और अरबी तथा फ़ारसी भाषाओं से आयातित कवित्त, दोहा तथा दोहरा आदि शास्त्रीय विधा के साहित्य का सृजन भी पुष्कल तथा अभ्यर्हरणीय दक्खिनी हिंदी का द्योतक माना जा सकता है। उसी प्रकार ग़ज़ल, मसनवी, रुबाई, क़सीदा आदि भी महत्त्व के हैं।

डॉ. परमानंद पांचाल ने अपनी इस पुस्तक में माना है क़ुतुबशाही शासन काल के समय औरंगज़ेब के आक्रमण के बाद जो ढीली हालत हुई उससे वहाँ के सुल्तानों और रचनाकारों की स्वतंत्रता को बड़ा धक्का लगा और दक्खिनी हिंदी रचनाओं की विविध धाराएँ मर्सिया निगारी (शोक गीत लेखन) में ही सिमटकर रह गईं। साहित्य सत्ता और स्वतंत्रता को लेकर डॉ. देवेंद्र इस्सर ने जो किताब (*साहित्य और स्वतंत्रता : प्रश्न-प्रतिप्रश्न* 05) लिखी है वह सामग्री भी विश्व अदब की दृष्टि से बड़ी पुख़्ता तथा अद्यतन मानी जा सकती है। लेकिन ऊपर में डॉ. पांचाल ने जो अपना अभिमत उद्बोधित किया है उसे आज के कुछ प्रगतिशील इतिहासज्ञ के नज़रिए से उचित नहीं ठहराया जा सकता है। उनके हिसाब से औरंगज़ेब कदापि कट्टर नहीं था (क्योंकि उसके द्वारा कई मंदिरों के जीर्णोद्धार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करवाए गए थे) और न ही संगीत-कला आदि पर अंकुश लगाया। हाँ, यह बात ज़रूर है कि उसके आक्रमण के तत्कालीन स्वाभाविक प्रभाव ने निश्चित तौर पर परेशानियाँ खड़ी की होंगी। अतः डॉ. पांचाल के इस मत की पुनर्वीक्षण की आवश्यकता पड़ सकती है। समीक्षक के ज़िक्र से साफ़ है कि उस समय भी सलमान रुश्दी तथा तस्लीमा नसरीन सरीके लेखक की तरह दक्खिन को तिलांजलि देकर अन्यत्र चले गए। लेकिन कुछ ऐसे भी निर्भीक तथा निष्ठावान रचनाकार थे जिन्होंने दक्खिनी माटी की सुगंध में ही रचना-बसना बेहतर समझा। गवासी तथा वजही की आपसी साहित्यिक प्रतिस्पर्धा, प्रतिद्वंद्विता भी दक्खिनी हिंदी की जीवंतता का ही बोधक मानी जा सकती है। लेखक द्वारा मर्सिया लेखन के आधिक्य के कारण को जो उठाया है उसे एक सिरे से ख़ारिज नहीं किया जा सकता। मनोवैज्ञानिक फ्रायड आदि विद्वानों ने भी ऐसे मामले को दमित इच्छा का प्रतिफलन माना है।

बुरहानुद्दीन 'जानम' (1544-1583 ई.) ने अपनी छोटी-सी रचना *सुख सुहेला* में आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक प्रेम की प्रशंसा के साथ-साथ कबीर की तरह ही बड़े मारक तथा कटाक्षपूर्ण भावों को उठाया है। उनके हिसाब से हठ योग या इंद्रिय दमन से भगवान नहीं मिलते क्योंकि हठयोगी श्वास खींचता है और रिश्वत भी साँस खींचती है तो क्या उसे परमात्मा मिल जाते हैं? इस प्रकार कवि ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास और काला बाज़ारी, घूसख़ोरी की समस्याओं को भी उठाया है। इससे भान होता है कि दक्खिनी हिंदी अपने सामाजिक धरातल की खोज में जुटी हुई थी। कबीर की तरह ही पाखंडी प्रचलन के ख़िलाफ़ कवि जानम लिखता है : *मसि कागद थे क्यों होवे ग्यान, पकड़ेगे कुछ ल्या ईमान/कोई बेस खिल्वत भूक मरे, कोई देसंतर लेय फिरे*। इसके अलावा ये पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं : *पढ़ पढ़ पंडित जनम गँवाया रहे सुन रीज/पुरान पुस्तक देख ढंढोले बसे निराजा नीज*।

डॉ. पांचाल ने कवि जानवी की रचना धर्मिता के विषय में स्पष्ट किया है कि इनकी कृतियों में अरबी, फ़ारसी शब्दगुच्छ सुगंध के साथ-साथ जनमानस में उच्चारित अर्थात् तद्भव परक प्रयोग का भी महत्त्व है। इसके अलावा संस्कृत निष्ठ शब्दावली से भरे 'नवरस' का दोहरा तथा गीत भी ध्यातव्य है। दोहरा का मिसाल-दर मुक़ाम भैरवी पोरस, भैरव कर्पूर गौरा भाल तिलक चंद्रा, त्रिनेत्रा जटा मुकुट गंगा धरा, दक्खिनी हिंदी और अवधी भाषा के प्रेम आख्यानों का ज़िक्र इस मायने में भी ग़ौरतलब है कि दोनों आख्यानों में काफ़ी समानता भी है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि अवधी के भक्ति कवि जहाँ प्रेम के ज़रिए अलौकिक प्रियतमा तक पहुँचने के लिए लिखते थे वहीं दक्खिनी कवियों के चिंतन में इहलौकिक प्रेम को अधिक तरजीह दी गई है। 'अछड़ी' जैसे अनेक अवधी शब्दों को हूबहू दक्खिनी हिंदी में पचाया जाना भी ग़ौरतलब है। लेकिन तेलुगु भाषा में 'कट्टा' शब्द क्रिया के रूप में प्रयोग किया जाता है वहीं दक्खिनी हिंदी में यह बँधी चीज़ के लिए प्रयोग में लाया जाता है। आज भी दिल्ली तथा इसके आस-पास के क्षेत्रों में एक मुस्त अनाज आदि, क्रय-विक्रय के लिए 'कट्टा' शब्द का ही प्रचलन है। इसी प्रकार अर्थ विस्तार तथा अर्थ संकोच की दृष्टि से दक्खिनी हिंदी के शब्द 'खोंपा' (बालों का जूड़ा) शब्द आज भी बिहार, झारखंड, ओड़िशा में भी सद्यः आर्यातित कर लिया गया है।

इस्लाम धर्म में अवतारवाद की अमान्यता के बावजूद दक्खिनी हिंदी के मुसलमान कवियों द्वारा अपनी रचनाओं में हिंदू देवी-देवताओं, पौराणिक कथानकों, आस्थाओं तथा सगुण भक्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परक शब्दावली का प्रयोग, इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के *नवरस* संस्कृत साहित्य के नांदी, प्रोचना की तरह ही सरस्वती देवी की अर्चना तथा परमात्मा के लिए इलाही, अल्लाह, ख़ुदा, रब, राम, परमेश्वर, हरि तथा गुसाईं आदि शब्दों का इस्तेमाल भी उसकी साँझी संस्कृति की सूझबूझ को सुस्पष्ट करता है। ध्यान देने का यह भी तथ्य है कि दक्खिनी कवि शब्दार्थ के अंतिम तह को भली-भाँति समझते थे जो उनके भारतीय संस्कृति और विश्वास के प्रति ज़बरदस्त रुझान को बताता है। वे जहाँ भगवान इंद्र के पौराणिक कामुक अर्थ वाले नाम (गौतम ऋषि के शाप वश) सहस्रनेत्र, सहस्राक्ष के मर्म को समझते थे वहीं 'पुंडरीक' नामक कमल प्रकार के मनोविज्ञान को भी समझते थे जो पुष्प सूर्य किरणों के स्पर्श से ही पुलकित हो पाता है। उसी प्रकार चातक के बारिश की बूँद के रिश्ते के महत्त्व को भी समझते थे। इन सारे तथ्यों का प्रमाण उनकी रचनाओं में साफ़ तौर से पढ़ा जा सकता है। दक्खिनी हिंदी के रचनाकार शिव, पार्वती, राम, सीता आदि के नाम उल्लेख करने में कहीं कोई कोताही बरतते नज़र नहीं आते, वहीं उर्दू अदब में इससे परहेज़ ही दिखता है। उसी प्रकार इन रचनाकारों द्वारा विविध सांस्कृतिक पर्वों, उत्सवों, विवाहों, वर्षगाँठों तथा जीवन-मृत्यु के भावाभिव्यक्ति से जुड़े शब्दों का प्रचलन उभरकर सामने आना इस भाषा की सामाजिक तथा सांस्कृतिक आधार को पुख़्ता करता मालूम पड़ता है। कवियों ने आम जीवन के आसपास के रूपकों, उपमाओं आदि को अपनी संप्रेषणीयता का औज़ार बनाया है यथा : *जबां ल्हड़ की प्यासी सड़क की अपार/निकल आई ज्यूं म्यान के लब ते भार।* मतलब यह हुआ कि तलवारें खिंच गईं, जैसे काल की जीभ लपलपाने लगी। 'भाग्यान्वेषण' (पृ. 48) तथा भाग्यान्वेषी' (पृ. 50) सरीके इक्के-दुक्के संस्कृतनिष्ठ तत्सम परक शब्दों को पुस्तक में जगह मिली है। अतः भाषा सर्वग्राह्य तथा सरल मानी जा सकती है।

लेकिन यह ध्यान रहे कि भाषाविद् डॉ. परमानंद पांचाल की इस पुस्तक में दक्खिनी हिंदी की यह समन्वित तथा बहुविश्लेषित दुर्लभ सामग्री पाठक समाज के हाथ इकट्ठी लग जाती है। दूसरा कि डॉ. पांचाल की समन्वित चिंतन के ज़रिए दक्खिनी हिंदी के बहुत सारे अनालोचित पक्षों से पाठक अवगत हो जाता है जिससे न केवल अरबी, फ़ारसी, संस्कृत या अन्य भारतीय भाषाओं के साथ बल्कि आज की हिंदी भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में भी अन्वेषण के अनेक आयाम उन्मीलित हो सकते हैं। इसके बावजूद मुमकिन हो कि भाषा की राजनीति, व्यवसायी शिक्षा की आड़ में आज भी *दक्खिनी हिंदी : इतिहास और शब्द-संपदा* को कोई ख़ास तरजीह न दी गए।

चर्चित पुस्तक :

दक्खिनी हिंदी : इतिहास और शब्द-संपदा : परमानंद पांचाल; डॉ. परमानंद पांचाल, 232 ए, मयूर विहार, पॉकेट-1, दिल्ली; 2005; 108 रुपए

महर्षि बादरायण सम्मान से पुरस्कृत अजय कुमार मिश्र का जन्म 1968 में हुआ। इनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। संपर्क : राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 56/57, इंस्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली 110058; फ़ोन : 22719247, मो. 9968303243

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाठांतर

समकालीन भारतीय साहित्य के मई-जून 2007 अंक के आमुख में आपने एक बहुत महत्त्वपूर्ण मुद्दे की ओर ध्यान खींचा है : हिंदीभाषी प्रांतों की लोक भाषाओं के कोश चाहिए। स्वयं हिंदी के कोशों के साथ-साथ लोकभाषाओं के कोश जोड़ दें तभी हिंदी का मुक़म्मल कोश बन पाएगा। इसके अभाव में फणीश्वरनाथ रेणु के *मैला आंचल* या रुद्र काशिकेय की *बहती गंगा* को केरल में कैसे पढ़ाया जाएगा... ?

हिंदी कोशों के मुक़म्मल होने की समस्या केवल इतनी नहीं है। हर साल हिंदी में ढेरों नए शब्द जुड़ रहे हैं। वे किस कोश में मिलते हैं... ! हज़ारों-लाखों तकनीकी शब्द बनाए गए। बहुत सारे बेकार थे, मज़ाक़ थे; लेकिन ऐसा नहीं है कि सभी बेकार थे। हिंदी कोशों में जगह न मिल पाने के कारण पाठक उनके संदर्भ और अर्थ न समझ पाए। अनुपयोग के कारण उन शब्दों का मर जाना स्वाभाविक था। कितने सारे क़ानून व्यवस्था और न्याय प्रक्रिया से जुड़े शब्द हैं, जो हर रोज़ न्यायालयों में काम में लाए जा रहे हैं, अख़बारों में मिलते हैं...वे भी हमारे कोशों में नदारद होते हैं...पाठक करे तो क्या करे... ? सच तो यह है कि कहीं कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिससे नए चालू होनेवाले शब्दों की सूची तक उपलब्ध हो। वैसे भी हमारे यहाँ कोशकारिता आजकल निजी प्रयास मात्र का परिणाम बनकर रह गई है। नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन और ज्ञान मंडल ने कोश निर्माण में जो संस्थागत काम किया, उसके बाद वह कहाँ हुआ, किसने किया ? उसके चलते कोशों का नवीकरण संभव नहीं है। अब यह हालत भी बदलने के मोड़ पर है।

लोकभाषाओं के शब्दों की बात आंचलिक उपन्यासों की शब्दावली समझने की समस्या से कहीं बड़ी है। लोकभाषाओं के अपने कोश ही कहाँ हैं, कितने हैं, कितने अच्छे या कितने विस्तृत हैं...जो कोश हैं वे साहित्यिक भाषा के कोश ही हैं, जैसे रामचरितमानस के शब्दों के कोश या साहित्यिक ब्रजभाषा के कोश...उनमें वे शब्द कहाँ हैं, जो गाँव-गाँव घर-घर बोले जाते हैं। बोले जाने वाले शब्दों की बात करें, तो हिंदी में ही बोलचाल के वे शब्दकोशों में कहाँ मिलते हैं जो कारीगरों, मैकेनिकों, दुकानदारों ने बनाए हैं, जो बहुत बड़ी हद तक निर्मित तकनीकी शब्दावली से कहीं बेहतर हैं।

ख़ैर, मैं यहाँ स्वयं को लोकभाषाओं के कोशों तक ही सीमित रखता हूँ। आपने जिस कमी की ओर ध्यान खींचा, वह मिटाने का, और उससे भी कहीं आगे बढ़कर पूरा करने का बीड़ा निदेशक प्रोफ़ेसर शंभुनाथ की प्रेरणा से केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने उठा लिया है। यह काम हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना के अंतर्गत किया जा रहा है। हाल ही में मुझे (आपने इसी 'आमुख' में मेरे और कुसुम जी के समांतर कोश का ज़िक्र किया, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ) इस परियोजना का मानद प्रधान संपादक मनोनीत किया गया है। यह नियुक्ति, जहाँ तक मेरा सवाल है, इससे अधिक अच्छे समय में नहीं हो सकती थी...हमारा इंग्लिश-हिंदी/हिंदी-इंग्लिश थिसॉरस एंड डिक्शनरी का काम पूरा हो चुका था। हम प्रकाशकों को कोश के फ़ाइनल कैमरारेडी प्रिंटआउट तैयार करने की प्रक्रिया में थे। मेरे सामने चुनौती थी अब कौन-सा काम हाथ में लूँ। तभी यह प्रस्ताव आया, और मैंने तत्काल स्वीकार कर लिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब स्वयं परियोजना के बारे में और केंद्रीय हिंदी संस्थान में नए शब्दों के संकलन की प्रक्रिया के बारे में...'

1991 की जनगणना के आधार पर हिंदीभाषी क्षेत्रों में लोगों ने अपनी जो मातृभाषाएँ दर्ज कराई थीं, उन 48 की सूची को आधार बनाकर संस्थान हर भाषा का स्वतंत्र कोश बना रहा है। इसके लिए सुविचारित नीति अपनाई गई है। साहित्यिक कोशों से कहीं आगे बढ़कर ये कोश सही मायनों में लोक शब्दकोश होंगे। उच्च शिक्षा प्राप्त भाषाकर्मी फ़ील्ड में जाकर लोगों से एक क्रमबद्ध विधि से शब्दों का संकलन करेंगे। उनके मार्गदर्शन के लिए संबद्ध भाषाओं के मर्मज्ञों से न केवल जानकारी पता की जा रही है, किस स्थान पर किन लोगों की सहायता से फ़ील्ड में जाना चाहिए, यह सब सुनिश्चित किया जा रहा है। पहले चरण में (अकारादि क्रम में) अवधी, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, ब्रज, भोजपुरी और राजस्थानी भाषाएँ ली जा रही हैं। इसके बाद हर चौथे महीने दो और भाषाएँ ली जाएँगी...परियोजना का कार्यकाल 15 वर्ष है, लेकिन हम लोग यह काम दस साल में ही पूरा करने की कोशिश करेंगे।

नए-नए विचार आते रहते हैं। हम लोग जो डाटा इकट्ठा करेंगे, उससे हर भाषा के स्वतंत्र कोश तो बनेंगे ही (और उन्हें इंटरनेट पर संसार भर के भाषाप्रेमियों को उपलब्ध भी कराया जाएगा।) इसके आगे बढ़कर कंप्यूटरों की क्षमताओं के सहारे एकाधिक भाषाओं के शब्दों में समानताएँ दिखाने के लिए संयुक्त कोश भी बनाए जा सकेंगे, और सभी भाषाओं का इकट्ठा कोश भी, और संभव हुआ तो थिसॉरस भी।

परियोजना बड़ी है, उसकी दूरगामी संभावनाएँ मानव स्वप्नों से भी बड़ी हैं...पहले कोश बन जाएँ तो बाक़ी के जो साल बचेंगे, उनमें यह सब करने की कोशिश की जाएगी। लेकिन यह काम भाषाप्रेमियों की शुभकामनाओं के बग़ैर पूरा नहीं किया जा सकता। मेरा अनुभव है कि हमने जितने भी लोगों से बात की, सहायता माँगी, वे नि:स्वार्थ भाव से, पूरे उत्साह के साथ आगे आए, बढ़िया से बढ़िया सुझाव दिए, हम लोग जब चाहें, जिस तरह चाहें, हर तरह के सहयोग का आश्वासन दिया। आपकी महत्त्वपूर्ण पत्रिका के द्वारा, जो साहित्यकारों भाषाविदों की प्रिय पत्रिका है, मैं सबसे अपील करना चाहता हूँ कि केंद्रीय हिंदी संस्थान के पते (हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा 285005) पर प्रधान संपादक के नाम पत्र द्वारा अपने सुझाव अवश्य दें। हर सुझाव का, सहायता का, स्वागत है...

अब नए शब्दों की बात...

इससे पहले मुझे संस्थान के कार्यालय जाकर उनकी गतिविधि देखने का अवसर कभी नहीं मिला था। उनकी डिजिटल लैब देखकर मैं दंग रह गया...उनके पास हिंदी शब्दों का अथाह सागर है, केवल साहित्य से ही नहीं, और इंटरनेट पर उपलब्ध हिंदी दैनिक पत्रों के एक-एक शब्द को बाँचकर उनका संकलन लगातार किया जा रहा है। मुझे बताया गया कि संस्थान शीघ्र ही, शायद अगले वर्ष से, ये सभी शब्द सबको प्राप्त कराने की संभावना प्रविधि पर विचार कर रहा है।

निजी तौर पर मुझे गर्व है कि जीवन के अंतिम वर्षों में मुझे इतने बड़े काम से जुड़ने का मौक़ा मिला। आपने मेरे अध्यवसाय की प्रशंसा में कुछ शब्द लिखे हैं। मैं वादा करता हूँ कि शेष वर्ष उतनी ही लगन और मेहनत से इसमें लगाऊँगा। यही मेरे जीवन को सार्थकता देगा।

अंत में—

कमलेश्वर संबंधी जानकारी के लिए बधाई। आपने कमलेश्वर की शायद सबसे मारक कहानी छापी 'इतने अच्छे दिन' कितनी ही बार पढ़ो, हर बार शूल की तरह गड़ती है।

अरविंद कुमार, गाज़ियाबाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Gram

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जनवरी-फ़रवरी अंक मिला। भारतीय लोक लावण्य के कवि गीतकार कैलाश गौतम का निधन नागर कविता के कवि की रिक्तता है। 'प्रेमचंद और बिहार' आलेख में अलभ्य बातें पढ़ीं। तमिल कविता का जन्म भारतीय साहित्य की गैलरी से ही हुआ है। 'भारतेंदु हरिश्चंद्र : इतिहास चिंता' आलेख विषय के केंद्रीकरण को कम समेट रहा है। तरसेम गुजराल की कविता 'बयान' गतिशील है। मनाली चक्रवर्ती की कहानी 'सफ़रनामा' क्रिएटिव है। हर्षद त्रिवेदी की कहानी 'नियति' झकझोरती है। कविताओं की संवेदना स्कैच देने से उभरेगी। पत्रिका संपादकीय श्रम और सूझ को दर्शाती है।

प्रो. रामगोपाल परिहार, मुरैना, मध्य प्रदेश

जनवरी-फ़रवरी अंक में प्रकाशित मैनेजर पांडेय का लेख 'प्रेमचंद और बिहार' में प्रेमचंद की बिहार की पृष्ठभूमि पर केंद्रित सामग्री का बहुत बारीक निगाह से विवेचन किया है। प्रेमचंद के उपन्यास एवं कहानियों पर आलोचना-दृष्टि, जो उनके समकालीन आलोचकों की रही है, को भी प्रस्तुत कर प्रेमचंद की गंभीरता को उजागर किया है।

श्री एन. श्रीधरन के लेख 'अभिव्यक्ति की जटिलता और तमिल की नई कविता' में तमिल कविता की वैज्ञानिक दृष्टि सृष्टि की पड़ताल सूक्ष्म दृष्टि से की है।

रामबक्ष के आलेख 'भारतेंदु हरिश्चंद्र : इतिहास चिंता' भी वैचारिक है। राजकुमार सैनी की समीक्षा 'ऐतिहासिकता और औपन्यासिकता' अच्छी है। उदय सहाय की 'तीर्थमय यात्रा', वंदना देवेंद्र की 'छाया भय', मनाली चक्रवर्ती की 'सफ़रनामा' कहानियों में जीते मनुष्य की संवेदनाओं की यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुति है।

राधेलाल बिजघावने, भोपाल, मध्यप्रदेश

अंक 130 में एक रचना 'ललक एक झलक की' पढ़ी। इसे आपने हास्य-व्यंग्य के नाम पर छापा है। लेकिन इसमें क़तई भी न हास्य है, न व्यंग्य। उर्दू के खाते में लिखे और छापे जाने वाले व्यंग्य ज़्यादातर इसी तरह निष्प्रभावी रहते हैं। इनमें हिंदी व्यंग्य की तरह न तो अपने समय की पकड़ होती है और न समकालीन व्यवस्था की समीक्षा होती है। केवल मस्ती में लिखा गया एक वृत्तांत होता है जो भाषायी तौर पर उतना लज़्ज़तदार भी नहीं होता। आपकी पत्रिका अच्छी है, कलेवर और भी अच्छा है, कमी है तो बेहतर व्यंग्य रचना छापे जाने की। आप उसे पूरा करेंगे।

आर.के. राव, भिलाई नगर

मार्च-अप्रैल अंक बहुत ही बेहतरीन बन पड़ा है। अंग्रेज़ी के महान लेखक व वृहत्त्रयी (राजाराव, मुल्कराज आनंद एवं आर.के. नारायण) के एक प्रमुख स्तंभ राजाराव के बारे में इतनी सारी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ देने के लिए हार्दिक बधाई स्वीकारें। राजाराव के लेखन ने भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य को निश्चित रूप से नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

कहानियों के अनुवाद अच्छे लगे। मुझे ऐसा लगता है कि विभूतिनारायण वंद्योपाध्याय की कहानी का शीर्षक Drought है, हो सकता है मैं सही हूँ। 'सैलानी', 'दूसरी औरत' व 'राग शहनाई का' भाषा शिल्प व प्रस्तुतीकरण के लिहाज़ से बहुत अच्छी रचनाएँ हैं।

कृष्ण बिहारी की कहानी 'मरदानी' सरल भाषा में लिखी गई आकर्षक व सारगर्भित कहानी है। राजेंद्र चंद्रकांत राय की रचना 'ठगी' समकालीन स्थितियों का बेजोड़ चित्रण है।

सुदर्शन वशिष्ठ, हरेप्रकाश उपाध्याय व सी.वी. सुब्बाराव की कविताएँ बहुत कुछ कहती प्रतीत होती हैं। देवर्षि कलानाथ शास्त्री रामसरूप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अणखी के आलेख पठनीय व ज्ञानवर्धक हैं। मूल्यांकन में प्रभात त्रिपाठी, मनीषा कुलश्रेष्ठ व माधव कौशिक ने संदर्भित पुस्तकों/रचनाओं का बख़ूबी आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है।

समकालीन भारतीय साहित्य के उत्कृष्ट संपादन के लिए मेरी हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ स्वीकारने की कृपा करें।

संजय मिश्रा, जबलपुर, मध्यप्रदेश

इस बार *समकालीन भारतीय साहित्य,* जनवरी-फ़रवरी 07 अंक में प्रकाशित कहानियाँ काफ़ी अलग तरह की हैं, इसलिए पढ़कर पत्र लिखने का मन हो आया। इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ऐसे विषयों को कथ्य बनाया गया है जो प्राय: कहानियों में दिखाई नहीं देते। उदाहरणार्थ, 'तीर्थमय यात्रा' के माध्यम से उदय सहाय ने मानसरोवर की कठिन यात्रा तो कराई ही, उसके माध्यम से भाँति-भाँति के लोगों, उनके विचारों और उनकी परेशानियों से भी अवगत कराया। इसी क्रम में मनाली चक्रवर्ती की सफ़रनामा में कोलकाता तक की यात्रा में तरह-तरह के यात्रियों की परेशानियों से साक्षात्कार हुआ ही, रेलवे के कर्मचारियों के विविध स्तरों और यात्रियों के स्तरों के अनुसार उनके व्यवहार की भी जानकारी मिली। और वंदना देवेंद्र की कहानी 'छाया भय' भी एक प्रकार से ज़िंदगी का 'सफ़रनामा' ही है—एक ऐसी ज़िंदगी का सफ़रनामा जो सारी सुविधाओं के बीच हर प्रकार से उपेक्षित रहने को विवश थी। हिंदीतर भाषाओं की कहानियों में हर्षद त्रिवेदी की 'नियति' (गुजराती) और नागपति हेगड़े की 'त्रिशंकु' (कन्नड़) भी कुछ अलग तरह की कहानियाँ हैं, इसलिए ध्यान खींचती हैं और जीवन की कुछ अन्य विषम स्थितियों को प्रभावी ढंग से उद्घाटित कर पाती हैं। इन सबके लिए संपादकीय दायित्व-निर्वाह के लिए आपको भी बधाई। पर इसी संदर्भ में मैं यह भी कहना चाहूँगा कि केशव रेड्डी का 'भू देवता' (उपन्यास) भी एक लंबी कहानी ही है और उसे अगर 'उपन्यास' बनाने की बजाय लंबी कहानी के रूप में ही लिखा जाता तो ज़्यादा प्रभावी होता। तब उसमें इतने ज़्यादा विवरण देने की भी ज़रूरत नहीं होती, जो कुछ ज़्यादा ही बिखर गए हैं और 'कथ्य' के समग्र प्रभाव को कम कर देते हैं।

और अंत में आपके 'आमुख' के बारे में भी मैं यह कहना चाहूँगा कि आप हर अंक में किसी न किसी नए मुद्दे को उठाते हैं, इसलिए विशेष बधाई के पात्र हैं।

डॉ. वीरेंद्र सक्सेना, वसंत कुंज, नई दिल्ली

मार्च-अप्रैल 2007 की पत्रिका जयपुर में एक मित्र के घर में देखी। 'ज्ञानपीठ' द्वारा पुरस्कृत असमिया उपन्यास स्व. बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य की कहानी का श्री किशोर कुमार जैन द्वारा 'शोंति' नाम से किया हुआ हिंदी अनुवाद पढ़कर लगा कि शायद ही हिंदीभाषी पाठकों को मूल कहानी का स्वाद परखने को मिलेगा।

मूल कहानी के कई असमिया शब्द के अनुरूप हिंदी शब्द खोजने में अनुवादक विफल रहे हैं। उदाहरणार्थ—

1. सत्र—भागवतीय वैष्णव धर्म प्रचार हेतु बड़े-बड़े संत विद्वान के अधीन 16वीं शताब्दी से अनेक जगहों में धर्म, कला, संस्कृति के संरक्षण के लिए अनुष्ठान हैं। श्रीमंत शंकरदेव तथा माधवदेव के मार्ग का प्रचार और प्रसाद इन अनुष्ठान से किए जाते हैं। 'सत्र' इन्हीं का नाम है। उक्त व्याख्या दिए बिना 'सत्र' शब्द का प्रयोग करने से भट्टाचार्य जी का मूल लेखन से अनुवाद दूर रह जाएगा।

2. भकत—संस्कृत भक्त शब्द का तद्भव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भकत असमिया शब्द हैं। जैन जी ने असमिया 'भकत' शब्द को 'भगत' बना दिया। यह सरासर ग़लत है। वैष्णव 'सत्र' (ऊपर दिया हुआ सत्र) में कुछ समर्पित लोग अपना घर परिवार त्याग कर सत्र के चौहद् में सेवारत रहते हैं। ये लोग समाज में 'भकत' नाम से परिचित रहते हैं। किसी भी हालत में इन 'भकत' को 'भगत' कहना ग़लत होगा।

3. मुझे लगता है कि कहानी का नायक 'सोनटी' रहा होगा। इसे 'शोंति' जैसी हिंदीकरण की ज़रूरत नहीं थी। 'सोनटी पाने ई' असम के मिसिङ जनजातियों में युवक-युवती का नाम पाया जाता है। मिसिङ लोग हिंदू धर्मावलंबी होते हैं।

4. अनुवाद में और भी ,ख़ामियाँ रही होंगी। भट्टाचार्य जी का मूल असमिया पढ़कर पता लगा सकूँगा। अभी राजस्थान से ही पत्र भेज रहा हूँ।

मित्रदेव शर्मा, जयपुर, राजस्थान

नवंबर-दिसंबर 2006 के अंक में मैथिली रचनाकार महाप्रकाश, रामलोचन ठाकुर, अग्निपुरुष, विद्यानंद झा और शेफालिका वर्मा की कविताओं ने बाँधा। विशेष रूप से केदार कानन द्वारा किए गए अनुवादों ने आत्मिक तोष दिया। इस ताज़ा अंक में कहानियों का चयन भी ताज़ा है और प्रस्तुतीकरण तथा अनुवाद की गुणवत्ता भी। ख़ास तौर पर कहानी—'दो बहनें'। हिंदी कविताओं में रेखा जी की कविताओं ने प्रभावित किया। रचनाओं के चयन के लिए संपादकीय विभाग को साधुवाद।

दिव्याभा, लखनऊ, उ.प्र.

पत्रिका का लगातार सफल और लोकप्रिय संपादन हेतु साधुवाद। मार्च-अप्रैल के अंक का संपादकीय बहुत ही सराहनीय प्रतीत हुआ। आपने अमर कथाकार श्री कमलेश्वर पर केंद्रित कर बहुत ही समीचीन और यथार्थ संवाद से पाठकों को संतृप्त किया है।

सच में लेखक या रचनाकार कदाचित् स्वर्गीय हो नहीं सकता है, रचनाकार तो दिन-प्रतिदिन प्रतिबिंबित होता है पृष्ठों में अपनी लेखनी की अजस्र धार से। कमलेश्वर आज हमारे बीच सशरीर नहीं हैं, किंतु उनके शब्द-संपदा और सादगी भरी धारदार ओजस्वी लेखनी साहित्य संसार को यदा आध्यातित करती रहेगी।

प्रस्तुत अंक में प्रकाशित विभिन्न भाषाओं की कविताओं का इस बार अधिक रसास्वादन करने की इच्छा हुई। मलयालम कविता, ए. अय्यपन की 'कपोत', कोंकणी कविता, नूतन साखरदांडे की 'चूल्हे पर पकते हैं चावल', सिंधी कविता में प्रेम प्रकाश की 'आदमी' ने काफ़ी प्रभावित किया। हिंदी कविता में श्री रामकुमार आत्रेय की कविता 'खुला दरवाज़ा', 'मिट्टी की गंध' जनवादी कविता के अमिट हस्ताक्षर श्री नचिकेता जी की कविता 'यह गली', 'आँख में सपने नहीं' और 'छली निर्गुण' समय से संवाद करतीं और वर्तमान सोच और व्यवस्था पर व्यंग्यात्मक और प्रभावोत्पादक कविताएँ हैं।

डॉ. अरुण कुमार 'सज्जन', मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार

130वाँ अंक बहुत अच्छा बन पड़ा है। संपादकीय और विषय सामग्री स्तरीय है। भारतीय साहित्य के अनमोल रत्न राजाराव पर एस. रामास्वामी, यू.आर. अनंतमूर्ति और अलका त्यागी के आलेख उच्चकोटि के हैं। लिली रे की 'सैलानी' (मैथिली), सी. श्याम की 'राग शहनाई का' (तेलुगु) और राजेंद्र सिंह गहलौत की 'ख़ाली' (हिंदी) शीर्षक कहानियाँ मन को छूती हैं। हर्षदेव माधव (संस्कृत), नूतन साखरदांडे (कोंकणी),

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अरुण साखरदांडे (कोंकणी), प्रेम प्रकाश (सिंधी) और नचिकेता (हिंदी) की कविताएँ विशेष रूप से प्रभावित करती हैं।

'प्रयोगवाद और हिंदी आलोचना का विकास' शीर्षक आलेख में रामवचन राय का यह कहना तो ठीक है कि "प्रयोगवादी कविता का सबसे बड़ा योगदान लेखक और आलोचक के बीच की खाई को पाटने में है। अधिकांश प्रयोगवादी कवियों ने स्वयं आलोचक की भूमिका निभाई।" लेकिन उनका यह कहना कि "यह सुअवसर न तो छायावाद को मिला और न प्रगतिवाद को।" तथ्यों की अनदेखी करता, जल्दबाज़ी और लापरवाही में कहा गया कथन है। लेखक और आलोचक को क़रीब लाने का जो प्रयास छायावादी कवियों द्वारा किया गया, उसी दिशा में प्रयोगवादी कवि भी बढ़े। पंत की 'पल्लव' की भूमिका, प्रसाद की 'काव्यकला तथा अन्य निबंध' महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा की भूमिका', 'चिंतन के कुछ क्षण' डॉ. नगेंद्र की 'आधुनिक कवि की भूमिका' तथा 'रूपराशि की भूमिका' और निराला द्वारा 'परिमल' और अन्य संग्रहों की भूमिकाएँ हिंदी आलोचना के विकास में मील का पत्थर की तरह हैं। छायावादी कवियों ने वक़्त की माँग के अनुरूप न केवल अपने काव्य की व्याख्या कर अपना पक्ष-पोषण किया अपितु वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर नए काव्यबोध की आवश्यकता अनुभव कर उसके निर्माण का प्रयास भी किया।

कमलेश कुमार गुप्त, गोरखपुर, उ.प्र.

भूल सुधार :

भूलवश अंक 131 (मई-जून 2007) में रूप-चित्रण में कलाकार विज्ञान व्रत का नाम छपने से रह गया, इसका हमें खेद है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

हमारे नए प्रकाशन

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

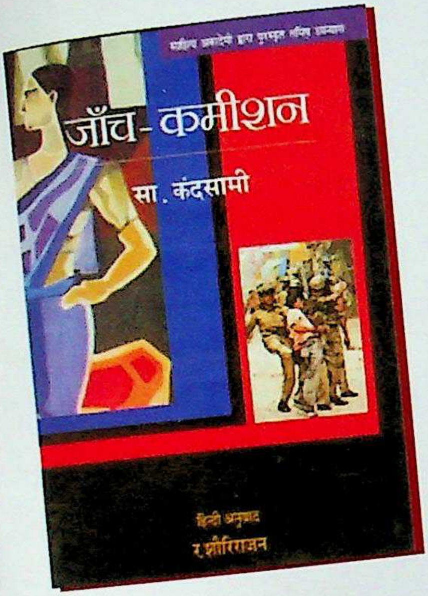

जाँच कमीशन (पुरस्कृत तमिष उपन्यास)

लेखक: सा. कंदसामी; *हिंदी अनुवाद*: र. शौरिराजन

प्रस्तुत उपन्यास में सूक्ष्मता, व्यापकता और कलात्मकता के साथ इस बात का अंकन है कि कैसे समकालीन भारतीय समाज में व्यवस्था एक तरह की सुरक्षा और स्थिरता प्रदान करते हुए, साधारण घरेलू दायित्वों को पूरा करने के लिए अति सामान्य आकांक्षाओं का गला घोंट देती है।

डिमाई ऑक्टेवो पृष्ठ 174 पेपरबैक

मूल्य : 100 रुपए

महाजनी महात्म्य (पुरस्कृत राजस्थानी उपन्यास)

(मैनें रा रूंख)

ले. एवं अनुवाद अन्नाराम सुदामा

राजस्थान की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखित यह कृति ग्रामीण जन-जीवन के महाकाव्यात्मक चित्रण, सशक्त चरित्र-चित्रण और अपनी गहरी मानवीय संवेदना के नाते भारतीय कथा साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण धरोहर है।

डिमाई ऑक्टेवो पृष्ठ 156 पेपरबैक

मूल्य : 80 रुपए

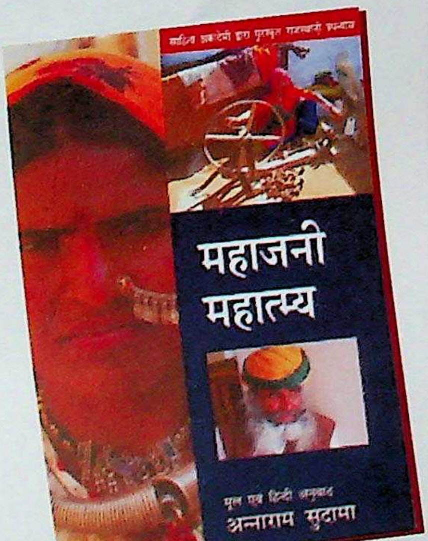

सचिव

साहित्य अकादेमी

विक्रय विभाग, स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110001

दूरभाष : 23745297, 23364207 फ़ैक्स : 091-11-23364207

ई-मेल : secy@ndb.vsnl.in वेबसाइट : http://www.sahitya-akademi.gov.in

sahityaakademisales@vsnl.net

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh,Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य अकादेमी द्वारा नौ खंडों में प्रकाशित

सूर्यमल्ल मीसण प्रणीत

ऐतिहासिक महाकाव्य

वंश भास्कर

विशेष छूट डाक दर साहित मात्र 4000 रुपए प्रति सेट

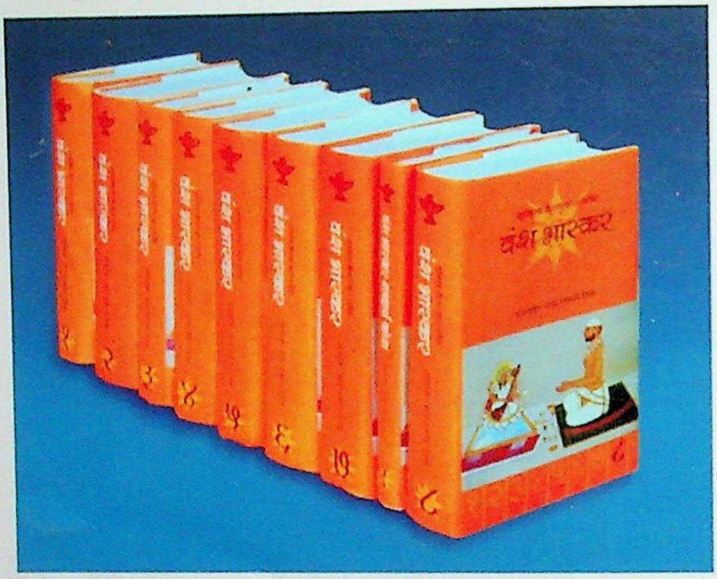

वंश भास्कर जिसके पारायण से राजाओं ने राजत्व समझा, पंडित-शास्त्रियों ने नीति और शास्त्र गुना, कलावंतों ने कलााएँ जार्नी, कवि-आचार्य साहित्य की परख करने में समर्थ बने और राजस्थान के इतिहास प्रणेताओं ने इसे आधार बनाकर चलने में ही अपनी सिद्धि देखी। युवा मरुवीरों ने इसमें अपने रक्त का रंग देखा, बालवृंद ने केसरिया रंग का जादू समझा तो वृद्धजनों ने इसे पढ़कर मूँछों पर अपने हाथ धरे। इस प्रकार *वंश भास्कर* काव्य और इतिहास के रूप में ही नहीं, अपितु भारतीय ज्ञान परंपरा के समृद्ध कोष और राजस्थानी सभ्यता-संस्कृति के स्मारक के रूप में प्रख्यात हुआ।

—*प्रो. आलमशाह ख़ान*

अर्थ प्रबोधनी टीका एवं संपादन

चंद्रप्रकाश देवल

ISBN : 81-260-2490-9

मूल्य प्रति सेट : 5000 रुपए

ए. कृष्णमूर्ति, सचिव द्वारा साहित्य अकादेमी के लिए प्रकाशित तथा विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, 1/10753, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032 से मुद्रित।
संपादक : अरुण प्रकाश

साहित्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant